

४५

मेरी - सृजन - यात्रा

मेरी - सृजन - यात्रा

लेखक
श्रीकृष्ण सराव

प्रकाशक
आनंददास - भारती
नं. ७२, लक्ष्मी नंदन

प्रकाशक
कालिदान-भारती
१८. दशहरा मैदान
उज्जैन मध्य प्रदेश

सर्वोदयकार भोवकाधीन

प्रथम संस्करण
१९८० ई०

मुद्रण : ~~वीरेश्वर~~
~~पञ्जीश्वर~~

मुद्रण : ~~वीरेश्वर~~

मेरी सृजन-यात्रा

संजन-

मेरी ~~सुख-सागर~~ 'मेरी साहित्यिक-अभियान' का
 लेख-जोड़ा है, मेरी जीवनी नहीं। इस पुस्तक में मैंने केवल
 उन्हीं अनुभवों और प्रयोगों को लिखित किया है, जिनका
 सम्बन्ध मेरे जीवन से रहा है। अपने जीवन की विविध घटनाओं
 का सम्बन्ध इस दृष्टि से मैंने इसमें नहीं किया है, क्योंकि
 मेरा उद्देश्य अपनी जीव-रूपन जीवन-वृत्त लिखना नहीं था। उदाहरण
 के लिए मैं उल्लेख करूँ कि मैं बहुत ही बालों का बहुत अच्छा
 लिखाड़ी और पशु-पक्ष का बहुत अच्छा निशानेबाज रहा हूँ और
 इन क्षेत्रों में मेरी उपलब्धियाँ भी हैं, पर साहित्यिक क्षेत्र की दृष्टि से
 वे जाने के कारण, मैं उन पर नहीं लिख रहा। मैं अपने आप को
 बहुत बड़ा साहित्यकार भी नहीं मानता और अपनी साहित्य-यात्रा के
 विषय में भी लिखने का मेरा कोई विचार नहीं था, जब तक कि एक
 घटना-वश लिखने के लिए मुझे बाध्य होता पड़ा है।
 मैंने अपने जीवन का यही ^{उद्देश्य} बताया है कि मैं केवल उन्हीं लोगों
 पर लिखूँ जिन्होंने देश के लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर
 डाला और वे ही साहित्यिक उपलब्ध रहे। मेरे जीवन का हर
 क्षण उनकी चिन्तन में बीता है, इसलिए अपने विषय में
 लिखने के ^{और लिखने के} मुझे अवसर ही नहीं मिला। मुझे इस बात का
 संकोच है कि अपने लिए जो उपलब्धियाँ मैंने लिखी हैं वे भी,
 वह मैंने प्राप्त कर ली हैं और उसे प्राप्त करने के पश्चात् ही एक
 व्यवधान मेरे जीवन में उत्पन्न हुआ है, जिसने नए जीवन की
 दिशा में मेरी लगेवनी को आगे बढ़ने से रोक दिया है।
 मैं इस बात की सम्पूर्ण स्पष्टता के लिए बताना चाहूँ कि यह
 प्रकार लिखूँगा कि 22 नवम्बर 1947 को बहुत ही
 हृदयव्याध से पीड़ित हुआ और लिखने के भी शर विरहित नहीं
 था कि मैं उस आघात को भूलने लूँगा। बहुत संक्षेप में
 ही मैं उस घटना के विषय में लिखूँगा।
 शहीदों और शत्रुकारियों पर लिखी अपनी पुस्तकों को

मुझे ख़ियं ही प्रकाशित करना पड़ा रहा है और शीघ्र ही उन्हें
 मुझे ख़ियं को ही देखना पड़ा था। २३ नवंबर १९४७ को मुझ
 को तीस-तीस दिनों के दो बंडल जैसा मैं देखा जिसे (समय के
 दो जोनकचर लग गया हुआ था। वही मुझे दिल का दौरा
 पड़ा गया। वहाँ उपचार की अच्छी सुविधा न होने के कारण
 मुझे उज्जैन पहुँचना आवश्यक हो गया। उज्जैन जाने वाली
 बस तो मिल गई, पर अगले बहुत पीड़ा होने के कारण मुझे
 बैठने में लिए स्थान नहीं मिला। मेरे सीने में दर्द की
 बिजलियाँ बौंध रही थीं और हाथों में बस में
 ढाई घण्टे तक खड़े-खड़े मुझे जोनकचर से उज्जैन तक
 की यात्रा करनी पड़ी। हर स्थान पर खड़े और उतरते
 समय भी-भी दिनों के दोनों बंडल मुझको ही
 उठाने पड़े। जब मैं अस्पताल पहुँचा तो मैं सभी ची-
 नों के आश्चर्य बना हुआ था। बाह्य संक्षेप में यह कि अब
 मैं बिस्तर पर शय्या-भार होकर प्रसृत प्रबन्ध मेरी-
~~सुख~~ ^{सुख} ~~सुख~~ ^{सुख} यात्रा लिए रहूँ। यदि यह विवशता न होती, तो
 शायद मैं यह सभी निपटता ही नहीं।
मेरी चार भूमेकाएँ

मुझे लगता है कि जीवन के लिए जितना संघर्ष मुझसे
 करना पड़ा है, उतना संघर्ष किसी भी जोखक को नहीं करना
 पड़ा होगा। यह संघर्ष केवल शान्ति का पड़ा है,
 क्योंकि मैंने शरीरों और आनन्दकारियों पर मिलने का
 संकल्प लिया। यदि मैंने पुरस्कार प्राप्त करने वाले
 विषयों पर लिखा होता तो मुझे यह संघर्ष नहीं करना
 पड़ा। जीवन भर चारों दिशाओं की मुझे तरफ पड़ा
 है और जमाने से तो मैंने कभी हार मानी नहीं है। अब
 मैं अकेले करूँगा उन चार भूमेकाओं का, जिनका निर्वहण
 मुझे अकेले ही करना पड़ा है -

(१) मेरी पहली भूमेका रही है तबलों के संकलन की।

हैं। हालांकि महापुरुषों पर जीवन के कारण जीवन में
प्रभावितता पाने के लिए मुझे अपने देश के कोने-कोने में
और विदेशों में भी भ्रमण करना पड़ा है। जो लोग शोष-
कार्य के लिए अपने ही देश में भ्रमण करते हैं, उन्हें विद्य-विद्वानों
से अनुमान प्राप्त होता है, पर मैंने तो भारतीय क्रांतिकारियों
का शोष करने के लिए दुनिया के दस देशों को घूमा है और
मुझे एक ही बात का भी अनुमान नहीं मिलता है। आप इसे
सैलानीपन कहेंगे या दीवानगी। आप जानें कुछ भी नहीं, लेकिन
यह सत्य है कि अपने-पारिवारिकों के सम्बन्ध में तबलों
के संकलन के लिए मैंने इतना कुछ किया है।

(२) मेरी दूसरी भूमिका, जो पत्र की रही है - मौलिक जीवन
की। मेरा दर्द बही सच कहेंगे, जो जीवन है। किसी-
पत्रिका के लिए एक जीवन जीने में पसीना आ जाता है।
कितने संदर्भ-गुण्य पढ़ते पड़ते हैं, कितना चिन्ता करना
पड़ता है और विचारों को आकार देने के लिए कितना खपना
पड़ता है। और फिर काल्पनिक कीजिए कि जो व्यक्ति को
साठ मौलिक-कृतियों का भरण करना पड़ा है, उसे कितना
खपना पड़ा होगा।

काल के क्षेत्र में मैं देश की पाँच महाकाव्य देख चुका
हूँ। गद्य के क्षेत्र में मेरी दो कृतियाँ उल्लेखनीय हैं (१)
कालजयी-सुभाष, और (२) क्रांति-कथाएँ। यह दूसरी कृतिका
को तो साठों में ५ भारतीय क्रांतिकारियों का एनसाइक्लोपीडिया
कह कर पुकारा है। हिन्दी के दिग्गज विद्वान, उद्दिष्टा को
सम्मान राज्यपाल महोदय श्री विश्वभोजन पाण्डेय ने
इसे 'वास्तविक-महाग्रंथ' कह कर सम्मानित किया है। मैं
स्वायं ही आपको बताऊँ कि इस एक कृति के तबल-संकलन
और जीवन में सत्ताष्टा वर्ष का समय आया है। यह है
मेरी दूसरी भूमिका - जीवन की।

मेरी सारी भूमिका रही है प्रकाशन की। इस भूमिका के अन्तर्गत 'सुलभ' के प्रकाशन के लिए आवश्यक धन राशि पुराना प्रकाशन समिति जैसे दलों की मदद से निर्माण करना और पुस्तक को प्रेस में देकर प्रकाशित करवाना सम्मिलित है। ये सारे काम मैंने कभी नहीं किए हैं। चतुर्थाश्व की तो हमेशा ही आवश्यकता है, इस कारण चतुर्थाश्व की सारी उधारी मैं ही चुकाई हूँ। अपने व्ययों के बारे में -

१. दास प्रिंटिंग प्रेस, पल्लार रोड, उज्जैन, मध्य प्रदेश,
२. कोठारी-प्रिन्टर्स, धीरानगर, उज्जैन, मध्य प्रदेश,
३. नागरी प्रेस, १८७, कलपीबाग, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, और
४. प्रियंवदा प्रेस, ३५/१५१, गौवता, आगरा, उत्तर प्रदेश

- ये प्रेस आप व्यक्त करना अपना कर्त्तव्य समझत हूँ जो हमेशा मेरा काम उधारी पर करते रहे की कभी पैसों का तकाजा नहीं किया। अपनी पुस्तकों की चतुर्थाश्व के सन्दर्भ में मैं इस व्ययों के जो व्ययों अपने को भुगतान कर चुका हूँ, लेकिन लाभ या कलह के नाम पर भी लाभ कभी एक रुपया की पूँजी भी नहीं रही है। यदि भी लाभ पूँजी रही है, तो कर्ज भी और शायद यही पूँजी मैं अपने बच्चों को दे सकूँगा।

(६) मेरी चौथी और आखिरी भूमिका रही है पुस्तक-विक्री की। इस कार्य में भी मैंने कीर्तिमान स्थापित किए हैं। क्या आप विश्वास करेंगे कि इतनी सारी भूमिकाओं का निर्वहण करने के साथ-साथ मैं अपनी कुछ प्रकाशित पाठ पुस्तकों में से पॉन्च लाभ प्रक्रिया बन्द-चुका हूँ। जी हाँ, यह सच है और शीघ्र ही मैं स्वीकार करूँगा, जितने मेरी पुस्तकों की बिक्री देवा है। ये पुस्तकें फिर तब बिकती थीं, वह भी आपकी बताई -

- मैं अपने धन में निकलने की किसी दुरस्थ स्थान पर पहुँच कर उस तब मैं लगभग बंही रहता था और संपूर्ण क्षेत्र के प्रत्येक विद्यालय में पहुँचता, घण्टों तक बिना एक पैसा पारिश्रमिक लिए राष्ट्रीय कविताएं सुनाता था। मैं अपनी पुस्तकें लगभग मूल्य में या कभी-कभी लागत मूल्य में वसूल करके दे दिया करता था। नजारा यह होता था कि उपस्थित अध्यापकों और विद्यार्थियों में से जो जेबों में जितना भी पैसा होता था, वह मेरे पास आ जाता था। यहाँ तक कि मेरी पुस्तकें खरीदने के लिए प्राचार्य और अध्यापक-गण अपनी जेबों के सारे पैसों दे दिया करते थे। इस हदों के लिए मैं प्राचार्य-गण और अध्यापक गण को हमेशा आभारी रहूँगा। इस प्रकार एक दिन मैं तीन या चार विद्यालयों में कविता पाठ करता था और अपनी पुस्तकें निकालता था। मध्यराह का भोजन करने का समय कभी

अवकाश ही नहीं मिलता। मेरा भोजन दिन में एक बार ही शास्त्रिके समय होता था। कभी कभी मेरी गलती होती। मुझे भोजन-व्यवस्था में बड़े गम्भीरता से तो मेरी हाँस्यकामीय भोजनका तरीका यह होता कि मैं लुंगी लपेट कर कहीं कहीं पर कुर्सी डाल कर निकलता और फुटपाथ पर बैठता भोजन करता, जहाँ सिखेवालों के लिए भोजन-व्यवस्था होती थी। उन लोगों के साथ भोजन करते हुए मैं उनके विभिन्न अनुभव भी सुना करता था। इसी भयंकर महँगाई के दिनों में भी मैंने अपनी एक बार के भोजन के लिए कभी ढाई रुपए से आधे के व्यय नहीं किया। जो पैसा बचता, उसे मैं शहीदों या सैनिकों के लिए सुरक्षित रखता था।

पुस्तक-विक्रय के हंदन में मुझे हमाली भी कहनी पड़ी है। एक अनुभव मिल रहा है -

मध्य प्रदेश की मनेन्द्रगढ़ नगर से मैं हरद्वार जिले के मुख्यालय आम्बिकापुर पहुँचा। रास्ते में बस के द्वारा ही जाने का कारण है - रात को बस वज्र आम्बिकापुर पहुँचा। बस-स्टैंड पर एक भी सिखेवाला नहीं था। कुछ दिनों पहले ही वहाँ एक सात्री का कत्ल हो चुका था और रात को वहाँ बसे के बाद सिखे नहीं चले गये। मेरे पास पुस्तकों के चार बगडल थे और प्रत्येक बगडल में नालीस दिनों के व्यय, अर्थात् कुल मिलकर एक ही तिह्र दिनों के व्यय भी प्राप्त था। न तो कोई सिखा मिलता और न हवा-ठेला। मैंने यह किया। दोनों हाथों में दो बगडल लेंग कर मैं उन्हें उतनी दूर रख आता, जहाँ से सिखे पीछे धोड़ें हुए बगडल दिखाई देते रहते। फिलॉस्फ का पीछे धोड़ें हुए बगडलों को उठाता और उन्हें आगे अपनी दूर रख आता। इस प्रकार एक पाछे तक हमाली कर्ते के बाद मैं ठहरने के स्थान पर पहुँच गया। भोजन में मैं जो सामान कभी भी लेकर ते उपर नहीं पहुँचाया क्योंकि कोई जवान आदमी भी मेरा एक बगडल नहीं उठा पाता था, जबकि मैं दो बगडल हाथों में लटकाकर पीना-पढ़ जाना मेरा नियम-नियम था और मैं पैंसठ वर्ष की आयु तक।

मैंने अपनी-कई मुश्किलें आपकी बता दीं। अब यह आपकी भविष्य है कि आप मुझे शेर-कर्ता, लेखक, प्रकाशक, पूज-रीडर, पुस्तक-विक्रेता, कुली या हमाला या भी सामान्य चारों काम में। यह सब मैंने उपेक्षित शहीदों के लिए किया है।

प्रसूत प्रवन्ध-लेखन लेखन में -

१. मैं सिखियाँ लिखने के चक्कर में नहीं पड़ा हूँ और वह इसलिये कि तो बीस वर्ष की आठुआँ बीमारि का असर। (सिखियाँ लिखने में मूल्य हो सकती थी, इसी कारण मैंने काम से काम सिखियों का उल्लेख किया है।)

२. कोई भी नाम इस पटना कालिप्त नहीं है। जहाँ आवश्यक समझा गया है, वहाँ नाम व्योड दिया गया है।

अपने परिवार के विषय में भी कुछ लिखना आवश्यक समझूँगा। मेरी पत्नी की बच्चों का मुझे हमेशा सहयोग मिलता है। अभाव-ग्रस्त जीवन व्यतीत करने की उन्होंने मुझसे कभी कोई शिक्षा प्राप्त नहीं की। एक वर्ष के बरह महीने में ही दस महीने तो अपने परिवार को छोड़ कर बाहर ही रहता रहूँ रहा हूँ। मैं जो लिखता हूँ कि मैंने अपने परिवार को बाहर ही रखा है, झूठ नहीं।

मैं प्रारम्भ में ही लिख चुका हूँ कि प्रसूत प्रवन्ध में दिव्य की बीमारि में शय्या-गत होकर लिख रहा हूँ। इस बीमारि में दवाइयाँ भी नींद लाने वाली दी जाती हैं। यदि तबलों की लेखन लिखनी मूल्य आप को मिले तो आप उन्हें परिचित-जन्य विवशता ही समझिए।

मेरे इस लेखन में यदि किसीने दिशा-निर्देश मिले तो इसे मैं अपना सौभाग्य ही समझूँगा।

श्रीकृष्ण सरल

१. प्रथम-संचालन

- १ काव्य-स्फुरण
 - २ ओ-स्वागत वसन्त
 - ३ पट्टर एक : धुँसे अनेक
 - ४ काव्य का निखार
 - ५ काव्य लेखन में चामका
 - ६ क्यों डाली तुमने विनगरी ?
 - ७ ईद सुवारके
 - ८ मेरे आदर्श कवि
 - ९ करना हर कुर्बानी है
 - १० एक साहित्यिक जगर के चार-चार संस्मरण
 - ११ काव्य-लेखन का पुरस्कार
 - १२ कवि में 'करने' आया फुकार
- ## २. द्वितीय-संचालन

- १३ प्रकाशन-पत्र
- १४ पॉपकप के गांधी-चार-चार आने में
- १५ काव्य-तीव्रतिन
- १६ मान-दर्शन

३. तृतीय-संचालन

- १७ महाकवि की भूमिका
- १८ महाकाव्य-लेखन का संकल्प
- १९ गोली मार दूँगा
- २० शहीदी मेला
- २१ जोखिम भरा पाकिस्तान-प्रवेश
- २२ विचित्र और दुखद परेशानी
- २३ शहीद-माता के सामक्ष में
- २४ भगत सिंह महाकाव्य का लेखन
- २५ एक महान क्रांतिकारी के सामक्ष में

- २६ महाकाव्य का यन्त्र
- २७ पारिवर्त का सङ्ग
- २८ विराट् ने हनु की रीतिमान डूटे
- २९ पगलाया हुआ वातावरण
- ३० दत्तजी से भेंट; पहला साग्रत फटका क्षण
- ३१ दत्त जी ने बलबल
- ३२ महाकाव्य भाष्य के पदचिह्नों पर
- ३३ रहस्य कवि ने रास्ता दिखाया
- ३४ कविता का जादू
- ३५ मैं आगर महीनों का चरण
- ३६ खून की ज्वाला
- ३७ काव्य का सुपरिणाम या सुपरिणाम ?
- ३८ चन्द्रशेखर का ज्ञान भी मैं का आत्मवक्तव्य
- ३९ डाकू का काव्य-प्रेम
- ४० मुझे मैं पाकिस्तानी जलून लाना गया
- ४१ ग्रामीणों की काव्य-राज्य
- ४२ मैं बैठा अभी कुँफागू हूँ
- ४३ कुनिया में वत तुम्हें गवने लें
- ४४ न रहेंगे वहाँ, न बजेगी बाँसुरी
- ४५ कुछ बात प्रेम-गीतों की भी
- ४६ तुम्हारे प्यारे-प्यारे नयन
- ४७ तुम्हारी कनक-मता-सी देह
- ४८ मेरा मूल सा क्रान्ति का विद्रोह का है
- ४९ कलम की चुनौती
- ५० जीवन विवेकांजलि का

मेरी सृजन-यात्रा

Handwritten signature or scribble at the bottom center of the page.

प्रपञ्च-संचलन : काव्य-स्फुरण



काव्य-सुख

वसन्तोत्सव का आयोजन था। माहौल मदमत्त हुआ था। वैसे ही
आम्र-कुंजों की ओर से आती हुई मंद वक्त्र ने लोगों को मन में
सुखा की छिछोरी उत्पन्न कर दी थी। एक विशाल प्रांगण में बैठे
हुए जन-समूह को किसी के आगमन की प्रतीक्षा थी। वह जन-समूह
एकत्र हुआ था गुना नगर के हाईस्कूल प्रांगण में। उसमें
भाग लेने वालों में धरावर्ण, बुरुज्जन और नागरिक सम्मिलित
थे। उत्सव के मनोनीत अध्यक्ष की प्रतीक्षा की जा रही थी।
एक दिन पूर्व ही गुरुवर्ग ने धात्रों से निर्देशित कर दिया
था —

“काल वासंत-पंचमी है। हर विद्यार्थी अपने परिधान में कोई
वासंती वासन्त-धारण करे। जिन लोगों को वासंत-कटु पर
स्व-रचित कवितारें सुनानी हैं, वे हीमांगी के साथ आएँ।”

इस निर्देश का पालन हुआ था। कुछ छात्रों ने वासंती रंग की
कुर्ते पहने हुए थे, तो कुछ ने कोट या जैकेट की जेबों में वासंती
रंग की रुमान लीं। कुछ छात्र कोट के कॉलर में
आम्र-मंजरीयाँ संभूत करके आए थे। जिन धात्रों ने कुर्ते और पायजामे
दोनों ही वासंती रंग में रंगकर पहने थे, वे हीमांगी जीके नाम से पुकारे
जा रहे थे। सैकड़ों विद्यार्थियों को बीच में केवल चार लड़कियाँ थीं
जो वासंती रंग की साड़ियों में बड़ी भाजी लग रही थीं।

उत्सव के मनोनीत अध्यक्ष ने आगमन से ही और उद्गार
की लहर दौड़ गई। अध्यक्षता गुना नगर के प्रसिद्ध एडवोकेट श्री-
नाथूलाल भार्गव। उनके आते ही लोगों की बाँटें खिल गईं। लोगों
की बाँटें खिलने का एक कारण था। उस समय श्री नाथूलाल भार्गव
कदाचित् भारत के सर्वोच्च सम्मान व्यक्ती थे। उनके कई संस्मरणों
ने कश्मियों का रूप धारण कर लिया है। उत्सव का वर्णन प्रारम्भ
करने के पूर्व श्री भार्गव ने कुछ संस्मरणों का सार्वभौम लिया जाम।

एक बार श्री नाथूलाल भार्गव क्वालिया को प्रसिद्ध मैला देहांत
गए। मैला की जिह लड़क से न गुजरते, लोगों की ऊपर अपार लड़
उनके पीछे हो लेती थी। लोगों का वाक्यन था कि उन्होंने अपने

जीवन में सौजन्य स्त्रुल व्यक्तियों को देखें। इन्होंने स्त्रुल होने पर भी श्री मार्गव बहुत तेज-दाल-दालते में और सामान्य व्यक्तियों को उनके स्त्रुल-दालने के लिए दौड़-दाल का ही हल्ला मने पड़ता था। जेल की सारी दुकानों में दोजने पर भी श्री मार्गव को अपने नाम से न तो मोजे ही मिले और न बनेमान। उनमें लिए ये वस्तुएँ विशेष ऑर्डर पर ही सैजिबरी कंपनियों बनाती थीं।

मैं तो श्री गायुलाल मार्गव सामान्य रूप से पायजामा ही पहनते थे, पर कभी-कभी वे पतलून पहनने का शौक भी प्रस-नरते थे। उनकी लेंद पर पतलून बिना बेल्ट के तो टिक ही-नहीं सकता था और कहिनाई यह था कि हिन्दुस्तान की किसी बाजार में उनके नाम का बेल्ट उपलब्ध नहीं होता था। उनकी यह समस्या हल कर दी मुना कैन्टर के कर्मज कोकाटे ने। उन्हें भेंट में एक बेल्ट देते हुए कर्मज साहब ने कहा -

“वकील साहब, आपको लिए एक बेल्ट मैंने (यात ऑर्डर देकर बनवाया है। मुझे उम्मीद है कि यह बेल्ट आपको फिर होगा।”

वकील साहब ने उस बेल्ट को अपनी कमर से लपेट कर देखा। वह नास्तव में उनके नाम को सिद्ध हुआ। वकील साहब ने कर्मज साहब को बहुत आभा माना।

वकील साहब से निदा लेकर कर्मज कोकाटे ने अपने मित्रों को बताया कि जो बेल्ट ने वकील साहब को देकर आए थे, वह तो मिलिट्री को ~~मुझे~~ एक छोड़े का तंग था।

किसी ने श्री गायुलाल मार्गव का मोटका दूर करने के लिए उन्हें एक औषधी की और निर्देश दिया कि एक महीने तक वे अन्न को ~~कोहार~~ न करके दूध और फलों का ही सेवन करें। अपना मोटका दूर करने के लिए वकील साहब ने औषधी सेवन को साज ही साज निर्देशित आहू लेने की भी साधना की। एक महीने पश्चात् पाँच अंकों अपना वजन लिया तो कम होने के जाग पर उनका वजन दस किगो बढ़ गया था। उनका वजन उस समय सौंप विवेकल था।

हम लोग अपने छोड़े हुए प्रसंग पर पुनः आते हैं। मुना लड्डिकन को मनोनीत आस्था श्री गायुलाल मार्गव को पहचानने पर लोगों में

हर्ष और उल्लास की लहर सँड़ गई। उनका अदम्य शक्ति का नाम
विना हलके की दो कुर्सीयों को सटाकर बनाया गया था और
उस पर तब करके एक दरी बिछा दी गई थी। एक बार भूल
से उन्हें हलके वाली एक कुर्सी पर बिठा दिया गया था तो वह
कुर्सी उनके शरीर में फँस कर रह गई थी। कुर्सी को हलके सँड़
कर ही उन्हें कुर्सी-मुक्त किया जा सका था।

हमारे निवासलय में भाई-बहन की एक जोड़ी थी। बहन का नाम था
कुँव लक्ष्मी लालेकार और भाई का नाम श्री प्रेमचंद केशव लालेकार।
दोनों का कण्ठ बहुत ही सुरीला था और जिन्होंने विप्लव संगीत का
प्रशिक्षण भी प्राप्त किया था। सरस्वती-वन्दना बहन-भाई की एक
जोड़ी ने ही गाई थी।

कार्यक्रम के प्रारम्भ में कुछ गीत और भजन गाए गए और
उसके पश्चात् काव्य-पद प्रारम्भ हुआ। कविता पढ़ने वाले छात्रों को
नाम पहले ही लिखे लिए गए थे। कविता पढ़ने वालों में मैंने
अपना नाम भी लिखा दिया था। इस अवसर पर पढ़ने को लिए
मैंने जीपन की पहली कविता 'अ-स्वागत वसंत', शीर्षक ही
लिखी थी। उस समय मैं ग्वानियर राज्य के गुन्ना नगर के हर्षिस्त्रिय
की कक्षा ६ का छात्र था। जब कविता-पाठ को लिए मेरा नाम पुकारा
गया तो मुझे खबरालू की अनुमति हुई, लेकिन उस स्थिति पर मैंने
शीघ्र ही काबू पाल लिया। हाँ, लोगों को मेरे विषय एक समिति बड़ी
विचित्र लग रही थी और वह यह कि न तो मैंने वास्तविक रंग का
कोई परिधान धारण किया था और न कॉलर पर आम्र-मंजरी लगाई
थी और जब मैंने अपनी कविता का शीर्षक 'अ-स्वागत वसंत'
प्रोक्षित किया तो एक को बहाना का तात्पर्य उत्पन्न हो गया और
लोगों की प्रश्नवाचक नज़रें मेरे चेहरे पर पड़ गई। मैंने कविता
अच्छी तरह कण्ठस्थ कर ली थी। गाना तो मुझे आता नहीं था,
बहुत हाव-भाव के साथ मैंने वह कविता पढ़ी।

कविता थी:—

अ-स्वागत वसंत

(१)

स्वागत पुष्पा हम जैसे वासंत करें
देश पराधीन, हम सब पराधीन हैं,
बन्दिनी हैं मातृभूमि, बन्दी हम लोग सब
साधन-विहीन, सब भौंते हम दीन हैं ।
कैली बिडम्बना है, शासक फिरंगी यहाँ
शोषण हमारा करने में हुए लीन हैं,
अपना ही प्यार है परावा हमें हुआ आज
दीन हम मानीं आज हुए श्री-हीन हैं ।

(२)

आए हो तो आओ, पर छुड़ावना स्वरूप हमें
भूल कर भी आज ऋतुराज न दियाओ तुम,
पूजा, काली, किसानों का सौरभकी-वाह हमें
काँवित है, वृत्तों पर शोले दहवाओ तुम ।
-वाह नहीं' कुशमित-समोरण की आज हमें
अजब यही-वाह, कान्ति-अँधी आओ तुम
माँसात, कसो कासात कै इस जीवनको
स्वागत करेंगे, इस भौंते यदि आओ तुम ।

मेरे काव्य-पाठ के बीच वाह-वाह की हर्ष-ध्वनियों से उठ ही रही
थी, काव्य-पाठ समाप्त होने पर तालियों की तुमुल गड़गड़ाहट प्रारम्भ
होगई और वह बहुत देर तक चलती रही । विद्यालय के प्रधानाचार्य
श्री डी० एन० खन्नाजी सहज जो सब नहीं हुआ । वे अपने आप
ले उठे और मुझे अपने हृदय से लगा लिया । विलम्ब मात्र ही मैंने
उनके-परण धुरा । मेरे गुरुजनों में हैं श्री भानुप्रकाश सिंह,
श्री रञ्जनलाल प्रधान और श्री गोकुलकिशोर भटनागर नभ
मुझे आशीर्वाद प्रदान किया । इस घटना से मेरे काव्य-जीवन का
प्रारम्भ होगया ।

अपने काव्य-पाठ के सम्बन्ध में मैं दो बातों का स्पष्टीकरण
करना चाहूँगा । एक तो यह कि काव्य-लेखन की लिए मैंने पन्द्रह

दरवाजे के सामने पर पानाशरी धरन्द-कर्मों चुना। इसी बात यह कि
मैंने क्रान्ति की आँधी को आह्वान क्यों किया।

महान् सिद्धि का सुखीकरण यह है कि अपने सचचमन से ही मैं
पानाशरी धरन्द की स्वतन्त्र पढ़ता-सुनता आया था। मैं वर्तमान समयप्रदेश
के गुनाजिले के अशोकनगर स्थान का निवासी हूँ। हमारे मोहन
में श्री रामनाथपण मायुर नाम के एक सज्जनको कविता-सर्वे में बहुत
सादर है। वे मोहन के बच्चों को एकत्र कर उनकी सादराशु की
पर्यक्षा लिया करते थे। किसी कविता को वे - चोरे - चोरे - चोर-चोर
बोलाते थे और फिर हम लोगों से पूछते थे कि पूरा कविता किन्हीं
सादर हुआ है। बिना अटके हुए पूरा कविता सुना देने वालों में
मैं हमेशा ही प्रथम रहा करता था और उसी इज्जत पायाकारण
था। कभी-कभी यदि भूलने की स्थिति आती तो मैं अपनी तरफ
से कोई सब्द जोड़ दिया करता था, जो अर्थ और भावों की दृष्टि में
बिलकुल सही बैठता था। श्री मायुर कभी-कभी पहले सुनाए गए
कविता भी पूछ बैठते थे। इस प्रकार कथा सात तक पहुँचते-पहुँचते
मुझे लगभग दो ही कविता सादर हो चुके थे। उनमें से बहुत ही से
अभी तक सादर हैं।

क्रान्ति की आँधी के प्रसंग में मैं यह कहना चाहूँगा कि एकबार
एक क्रान्तिकारी के दर्शन करने के लिए मेरी कुरी तरह पिराई हुई थी।
शा. मरणा को मैं एक शर्षिका दूँगा : —

पत्थर एक न्यून से अनेक

उस समय मैं प्राथमिक विद्यालय में पढ़ता था। अपने आताजा के
वातावरण से मैंने भारतीय क्रान्तिकारियों के श्री जिज्ञासा और प्रशंसा
शुना ली थी। सरदार भगतसिंह केन्द्रीय-असेम्बली में बस का सड़का
करके अपनी गिरफ्तारी दे चुके थे। उनके साथी क्रान्तिकारी श्री
शिवराम राजगुरु को महाराष्ट्र से गिरफ्तार करके लाहौर पहुँचाया
जा रहा था। स्वतन्त्रों का अनुभव था कि जिस मार्ग से क्रान्तिकारियों
को ले जाया जाता था, बीच में पड़ने वाले सभी स्टेशनों पर दर्शकों
की अपार भीड़ एकत्र हो जाती और क्रांति के प्रबन्ध करने में

बहुत कठिनाईयें होती थीं। इन कठिनाईयों से बचने का आगम नै यह
उपाय निकाला कि क्रान्तिकारियों को रेलवे में प्रसिद्ध मार्गों से न
जाने जाकर, छोटे-छोटे और महत्वहीन मार्गों से गंतव्य तथा
पहुँचाया जाता था। क्रान्तिकारी राजगुरु महाशय में गिरफ्तार
हुए थे और उन्हें दिक्की होकर लाहौर पहुँचाया था। उन्हें लाहौर-
पड़यंत्र-कोस में सम्मिलित किया जाता था। उन्हें संभवतः
मुसलमान मार्ग से सेन्द्रण रेलवे के बीना जंक्शन तक लाया गया
और वहाँ से सीधे दिक्की न जाने जाकर बीना-कोटा मार्ग से दिक्की
पहुँचाने की गोपनीय योजना शत्रुपक्ष ने बनाई थी। इसी बीना-कोटा
मार्ग पर मेरा जन्म-स्थान अशोकनगर स्थित है। उस समय रेलवे-स्टेशन
का नाम टकालेरी और नगर का नाम पदमार था। सन् १९४७ में स्वाधीनता-
प्राप्ति के पश्चात् नगर और रेलवे-स्टेशन, दोनों का ही नाम अशोकनगर
हो गया।

उस समय बीना के एक तारवाबू अशोकनगर के रहने वाले थे।
किसी प्रकार उन्होंने अशोकनगर के तारवाबू को तार-संदेश दे दिया
कि दोपहर की ट्रेन से ब्रिटिश-प्रभुत्व किसी प्रसिद्ध क्रान्तिकारी को
गिरफ्तार करने कोटा पहुँचा रही है। सन्तानी फैलाते देर नहीं
भागी। जिस समय ट्रेन प्लेटफार्म पर आकर रुकी, प्लेटफार्म
दर्शनार्थियों से खन्नाखन्ना भरा हुआ था। गाड़ी रुकते ही लोगों
ने 'भारत-माता की जय' के नारे लगाना प्रारम्भ कर दिया। ट्रेन
के आन्दर बैठे क्रान्तिकारी ने भी अपना चेहरा छिड़की के बाहर
निकाला और स्वयं भी 'भारत-माता की जय' का नारा लगाकर
जाना का स्वागत किया। उस समय छिड़कियों पर लोहे की बड़ें नहीं
लुका करती थीं। डिब्बे के आन्दर बैठे ब्रिटिश-प्रभुत्व को जवानों
ने क्रान्तिकारी को छिड़की के पास से हटा दिया और कुछ गोरे
सैनिक प्लेटफार्म पर खूद पड़े और उन्होंने रेलवे के डिब्बे के चोरों से
जो किया, जिससे अन्य लोग वहाँ न पहुँच सकें। मुझे अच्छी-
तरह याद है कि गोरे सैनिक नेकार और शर्ट पहने हुए थे। उनके
मोजे पिंडलियों तक पहुँचते थे और उनके पुराने जूते हुए थे।
उनके पैरों में भारी-भारी बूट थे।

सभी लोगों को इस स्थिति के प्रति आक्रोश था कि गोरे सैनिक
निकट से आगिकारी को नहीं देखने दे रहे। धान-बर्ग में एक विशेष
धान को नाम मोमलप्रसाद गाई था। उनका विचार हुआ -
“कहीं से कोई लवोदर (पहली दहड़ी) मिल जाय तो किसी गोरे
को खुले फुटन में गोरे से मार कर भाग जाऊँ।” वे दहड़ी को जने
में फुट गए। बाल-मंडली को किसी सदस्य ने विचार रखा कि
जब तक दहड़ी मिलती है, तब तक क्यों न किसी गोरे को
पट्टार मार कर मारा जाय। चुनौती में ले ली। लोटेपार्क
से एक पट्टार उठा कर मैंने एक गोरे सैनिक की लोपड़ी को
निशाना बना दिया। पट्टार की मार से गोरा सैनिक तिलमिला
उठा। सैनिकों की ओर से ‘पकार-पकार’ की आवाजें उठने लगीं।
आगिकारी को धोड़ कर गोरे सैनिक स्वयं नहीं भाग सकते थे। आखिर
स्थान के पोर्टर लोगों ने घेरा डाल कर मुझको पकड़ लिया
और मेरा दुर्भाग्य देखिए कि उन लोगों ने मुझे पकड़ कर गोरे
सैनिकों को ही हथके कर दिया। अब तो आप कामना कर
सकते हैं कि मुझ पर क्या कीती होगी। मुझ पर बेहिसाब
मार पड़ी। मुझ पर बूँसों की वर्षा हुई और मेरे पैरों में भारी-
भरकाम बुरों की लकड़ें लगाई गईं। यह मेरा सौभाग्य था कि गाड़ी ने
चलने की सीढ़ी दे दी और मेरे प्राण बच गए।

उस समय तक हम लोगों को यह मान्य नहीं था कि वह
आगिकारी कौन था। बाद में जब भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु
को जेलों पर लटकाया गया और उनके चित्र ‘समाचार-पत्रों’ में छपे
तो चित्र देख कर हमने पहचाना कि वह आगिकारी शिवराम
राजगुरु था। इस घटना ने मेरे मन में अंग्रेजों के प्रति विद्वेष
और आगिकारियों के प्रति अनुशान-भावना उत्पन्न कर दी। यदि
उस समय मैं बड़ा होता तो निश्चित रूप से आगिकारी-बल में
जा मिलता। जब मैं बड़ा हुआ, उस समय तक आगिकारी आन्दोलन
लगभग समाप्त हो चुका था। अभी से मेरे मन में आगिकारी भाव
बाता है। आगिकारी मेरे चिन्तन का विषय बन गया। जब

में लोखना प्रारम्भ किया तो मोटे मोहन ने क्रान्ति में प्रभाव स्थान प्राप्त किया।

मेरी पिछड़ी की घटना आई-गई होगई पर वह समूचे नगर में क्रान्ति की लहर उत्पन्न कर गई। नगर में क्रान्तिकारियों को चर्चे होने लगे और क्रान्तिकारियों का विषय में बढ़-बढ़ कर अप्रवाह फैलाई जाने लगी। एक अप्रवाह इस प्रकार का था:—

“ गांधीजी को विश्वास नहीं हो रहा कि मुझे भारतीयों का भोग विद्यालय अँग्रेजी साम्राज्य को उवाड़ सकेंगे। क्रान्तिकारी लोग उन्हें विश्वास दिलाया करते थे। एक बार गांधीजी जब कामकाज गए तो कुछ क्रान्तिकारी लोग गांधीजी को एक स्थान पर ले गए। उनकी आँखों पर पड़ी बाँध का उन्हें किसी तरहाने में ले जाया गया और वहाँ उनकी आँखों की पड़ी खोल दी गई। गांधीजी ने देखा कि कई कमरों में बम खे बम भरे हुए हैं। उन्हें बताया गया कि भारत के कई प्रमुख नगरों में इसी प्रकार हमारे बमों के कारखाने हैं। उस समय ही गांधीजी को विश्वास हो गया कि क्रान्तिकारी लोग भारत को सितन कर सकते हैं। ”

इस अप्रवाह में गांधीजी का उल्लेख तो भग गढ़त है पर सच्चाई इतनी अवश्य है कि छोटे-मोटे पैमाने पर ही सही, भारत के कई नगरों में क्रान्तिकारियों द्वारा बम-निर्माण के कारखाने प्रारम्भ किए जा चुके थे।

उस समय में भारत का विद्यार्थी जो आँख बम बनाने की बात सोचने लगा था। धन-वश में कबड्डी या हॉकी-फुटबाल की स्पर्धाओं को स्थान पर बमों की लड़ाई की स्पर्धा होने लगी। मेरे एक सहपाठी थे श्री गजेन्द्र सिंह चौहान। एक दल को नेतृत्व वे करते थे और दूसरे का मैं। हम लोग अपने-अपने दल से बमों को निर्माण करते थे। इन बमों में हम लोग पटाखों का मसाला, बारूद, कीर्न और गान्ध के दुकड़े भरकर उन्हें टेबिल की मेंद के अकार को बना लेते थे और गाँव के बाहर पहुँचकर उनकी आजमाइश करते थे। एक दल दूसरे दल को ऊपर उन बमों का संधान करता था। बम का संधान होते समय हम लोग आपात से बचने की लिए भूमि

पर नोट जाया करते थे। कभी-कभी कोई जायज भी हो जाया करता था। बड़े लोगों को जब हमारे इस खतरनाक खेल का पता चला तो हमारी पिढई काटके यह स्पर्धा बन्द करा दी गई। मेरे वंशजिकी मित्र श्री गजेन्द्रासिंह चौहान इस समय तक (जिन्ना एवं सन्यासियों) को पद से अवकाश ग्रहण कर चुके हैं।

महान प्राणिकी रज्जुगुरु का उद्घोष ऊपर किया जा चुका है। उन्हीं के दल के नेता और महान प्राणिकी चन्द्रशेखर आजाद भी तीन दिन तक अशोकनगर के एक हनुमान-मन्दिर में छहरकर पले गए थे। वे साधु-वेश में आए थे और नगर के बाहर पछाड़ीखेड़ा के हनुमान-मन्दिर में तीन दिन रुके थे। इस तथ्य की जानकारी हम लोगों को उन्हीं के प्राणिकी साथी डॉ० भगवानदास माहोत्र ने दी थी, जिन्हें हम लोगों ने स्वाधीन भारत में अग्निनन्दगार्ग्य आमंत्रित किया था। एक तेजावी साधु के रूप में आजाद की मर्मांग नगर में पैल-चुकी थी और सैकड़ों लोगों ने उनके दर्शन किए थे। अपने मोहमे के लोगों के साथ उनके दर्शन मिलने भी किए थे। उस समय मैं कश्मिर के ध्यान में।

बहुत मोड़ा-सु सोगदाग प्राणिकी-आन्दोलन में मेरे गृहनगर अशोकनगर ने भी दिया है। पंजाब से आए हुए एक सज्जनभी मामिकराज उस समय अशोकनगर में रहे का सड़क-निर्माण कार्य में ठेकेदारी का काम करते थे। उन्हें जंगल में रहना पड़ता था और इसका पता वे कंधे पर हमेशा एक राइफल लंग रहते थे। कभी-कभी वे अपनी कमर में कारतूसों की मात्रा और रिवोल्वर खोल कर भी पल्लते थे। प्राणिकी भगतसिंह के परिवार से उनका परिचय था। वे भगतसिंह के दल को कारतूसों का प्रदाय किया करते थे। इस तथ्य का पता चानने पर उन्हें कष्ट भी भोगने पड़े थे।

बात को प्रारम्भ यहाँ से हुआ था कि साहित्यिक गीतविदियों के प्रेरण कुल के जन गृहनगर से ही मिली। उस समय वहाँ साहित्यकारों का अच्छा खास दल था और किसी न किसी रूप में सभी लोग आपस में मिलते-जुलते रहते थे। आन्तरिकीय हत्याएं प्राप्त सुकाने श्री

गिरिजाकुमार मानपुर अशोकनगर में ही रहने लगे थे। उस समय न
 आँखों में विद्याभ्यन कर रहे थे। जब कभी वे अशोकनगर जाते थे,
 तो कवि-गोष्ठी आयोजित की जाती थी। हमारे नगर में श्री सम्प्रदायमान्य
 गुरुजी हंससा साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र रहा करते थे।
 उस समय उनके सन्निवेशी वंशीधर श्रीवास्तव थे। इस प्रकार के
 आयोजनों में वे बहुत रुचि लेते थे। एक बार तो श्री वंशीधरजी
 ने राज्य-स्तर पर भी साहित्य-सम्मेलन का आयोजन किया था।
 मेरे काव्य-गुरु श्री मानु प्रकाश सिंह चौहान उन दिनों
 अशोकनगर में माध्यमिक विद्यालय में ही अध्यापक थे। बाद
 में मेरे पिताजी उनका स्थानान्तरण जिन्हें श्री मुख्यालय गुन्ना नगर
 में हाईस्कूल में हो गया। मेरे नगर में अन्य साहित्यकारों में
 श्री रामप्रसाद शर्मा 'श्री' जगदीशकिशोर त्रिपाठी, श्री रघुवीरसिंह
 'मस्त', श्री प्रेमनारायण श्रीवास्तव, श्री लोकारे श्री मानकचन्द
 जैन के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। श्री मानकचन्द जैन हास्य रस
 के कवि थे। जब वे कविता पढ़ते थे तो कविता की अपेक्षा उनके
 हास्य-भाव से हास्य की छवि आती होती थी। जिस कागज़ पर
 वे कविता लिखते थे, वे जन्म कुंडली की भाँती उनकी पोंगली
 बना कर लाते थे और कविता पढ़ते-पढ़ते कागज़ का एक सिरा
 जमीन को छूने लगता था। कविता समाप्त होने के पहले उन्हें
 बिहाना बहुत मुश्किल होता था। उन पर हुरिग का कोई प्रभाव
 नहीं होता था।

काव्य का निरवार

एक बार ऐसा हुआ कि श्री गिरिजाकुमार मानपुर बीमार पड़े और
 वे अपने घर अशोकनगर पहुँचे। उन्हें लाइफाइड हो गया था।
 लाइफाइड तो अपना समय लेकर हीक हो गया, पर कमजोरी का कारण
 उन्हें कई दिनों तक चारपाई पर रहना पड़ा। उनका कोई काव्य-निकलन
 प्रकाशित होने वाला था और उनकी पारबुद्धि पैदा करने की उन्हें
 चिन्ता थी। उन दिनों में भी गुन्ना से कुछ दिन के लिए अशोकनगर
 पहुँचा था। श्री मानपुर साहब को मालूम हो गया था कि मैं भी
 कविता लिखने लगा हूँ। हम लोग एक ही मोहक में रहते थे।
 उन्होंने काव्य-संकलन की प्रत कापी लेया करने का वायदा मुझे

दे दिया। वे मुझे निर्देश देते-जते थे और मैं तदनुसार कविताएँ उतारता
जाता था। यह कार्य करने में मुझे अच्युती कविताओं की कृपा
परफ हासिल होगई। श्री मानसुर ने काव्य-लोचन सम्बन्धी कई
बातें मुझे बताई। मेरे लोचन पर इसका बहुत अच्युत प्रभाव पड़ा
और मेरे काव्य-लोचन में निवार आगया। इसके लिए मैं उनका
बहुत आभारी हूँ। आजकाल वे आकाशवाणी और दूरदर्शन के
डायरेक्टर के पद से अवकाश ग्रहण करने दिवसी रह रहे हैं।
काव्य-लोचन में आभास

गुला हाईस्कूल ने वार्षिकोत्सव के अवसर पर एक स्थानीय
कवि-सम्मेलन का आयोजन किया गया था। उन दिनों राष्ट्रीय रचनाएँ
लिखना जुर्म समझा जाता था और किसी सामाजिक सम्मेलन के अवसर
पर सुप्रिदा-सुप्रिदा के लोग शासन-विरोधी गतिविधियों की रोह
लेते वहाँ अवश्य ही उपस्थित रहते थे। उक्त कवि-सम्मेलन में तो
जिले के पुलिश आम्प्रीकन महेदय भी उपस्थित थे और उन्होंने घोषित
कर दिया था कि शासन-विरोधी कविता पढ़ने वाले को वैतनकीय
डाल कर भी पार्येंगे। उनकी इस धमकी को कवि-सम्मेलन के
माहौल पर बड़ा बुरा असर पड़ा। कवियों ने तो कुछ लोग तो
कभी काटकर बिसका गए और कुछ कवि ने-चार पाँचों में घुनाकर
खुल जाने का कहना बना कर बैठ गए। पुलिश आम्प्रीकन महेदय
की चेतावनी को भूत कवि-सम्मेलन के मध्य में मँडरा रहा था
और कवि लोग गलियों की तलाश कर रहे थे। मेरे प्रदेस
गुला श्री मानसुराशासित-प्रदेस कवि-सम्मेलन का संचालन कर रहे
थे। उन्होंने प्रश्नवाचक सप्तरों में मेरी ओर देवा और मैंने भी
अपनी स्वीकृति-सूचक सप्तरों में उन्हें आश्वासन कर दिया कि कविता
सुनाने में पूरी तरतु है तैयार हूँ। मैंने एक बहुत ही विप्रोही कविता
लिखी थी और किसी परिणाम की चिन्ता किए बिना मैं उसे सुनाने
के लिए आतुर था।

संचालक महेदय ने अच्युती भुजिका तैयार करके और मेरी
कविता की उलन की प्रशंसा करके काव्य-पाठ के लिए मेरा नाम पुकार
दिया। मैं उठा और यह वक्तव्य देकर कि कविता कविता होती है
और उसे कोई बन्धन स्वीकार नहीं होता, मैंने एक आज्ञा की
कविता का पाठ प्रारम्भ कर दिया। वह कविता यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ:-

क्यों डाली तुमने चिनगारी ?

मेरी इस खोटी कुटिया में, क्यों डाली तुमने चिनगारी ।
मैं कहता लपटें - धूम-धूम, आई आब मेरी भी नारी ।

अब मैंने छोड़ दिया रोना
आँखों में पानी भर जाना,
नहचिर होकर अन्याय और
आत्मन्दारों को सह जाना ।

विश्वास भाग्य पर नहीं मुझे
विषे की मैं देता दोष नहीं,
मैं दुख रहा हूँ, क्या मेरे
भुजंगदाँतों में कुछ जोश नहीं ?

क्यों चुप होकर ही हूँ सभी का प्यात और पीड़ा सारी ।
मेरी इस खोटी कुटिया में, क्यों डाली तुमने चिनगारी ?

यह भड़केगी, ज्वाला होगी
जल रहा तुम्हारा घर होगा,
जल जाने में तो भाग्य और
बन्ध कर जाना दुष्कर होगा ।

इन धूनी आँखों से लपटें
निकलेगी, महानाथ होगा
मैं गरल-पान कर लूँगा
तब मेरा अहंकार होगा ।

कह दूँगा, मानव बन रहे तुम, मुझको दानवता प्यारी ।
मेरी इस खोटी कुटिया में, क्यों डाली तुमने चिनगारी ?

मेरी सच जाना पूर्ण होगी
अब शोणित से सिन्धुपथ पर
क्यों लहरे से मैं डूँ, मुझे
लेना हफ्तानों से डकर ।
मेरे अंतर में प्रतिशोधी
भावों ने लागू लहराते,
मैं विद्रोही बन गया आज
जग की लहर लाते-लाते ।

मुझ में गौरव का उकल हुआ, भावना जशी विलवकारी ।
मेरी इस खोटी कुटिया में क्यों डाली तुमने चिनगारी ?

अब तक बाली-पशु की भाँती स्वा-
 रण की बोली पर-चढ़ा रहा,
 तोपों ने मुँह खोले, गोले
 बरसे, मैं निश्चल खड़ा रहा।
 अपने शरीर को पानी कर
 मैंने तो दुर्ग बना डाला
 जिनमें राखी तुम फुसी हुई
 फिर भी सँदे मेरे खाले।
 मैं निरा असुर गँवा बना, तुम मानव तो बने आदिवासी।
 मेरी इस छोटी कुटिया में क्यों डाली तुमने चिनगासी ?
 अब तुम्हें देवने ही होंगे
 निज आँखों से अपने खँडहर,
 मैं आज प्रान्ति की वीजा पर
 गाता हूँ ये विद्रोही स्वर।
 तुम्हें तो बन्धन में कब तक
 बाँध जा सकते दीवाने,
 है तोन सँक एकता उनको
 जो निकल पड़े लीना ताने
 उनको फिर का भय फिर उनको ले सकती है क्या लाचारी ?
 मेरी इस छोटी कुटिया में क्यों डाली तुमने चिनगासी ?
 तुम उड़ी उड़ी भाग्य की पंखों पर
 विस्तृत अंबर का हृदय-चौर,
 मैं हिला की प्रतिमूर्ति बना
 दौड़ूँगा पीछे हो अधीर।
 तुम कहों दिपांग, देहा हूँ
 मैंने जग का कोना-कोना,
 कहा बन्ध पाफों में निहुर
 वह तो होगा ही, जो होना।
 दौड़ूँगा, फिर किसके बल पर कहनाओगे सत्ता-चारी।
 मेरी इस छोटी कुटिया में क्यों डाली तुमने चिनगासी ?

तुमने तो सदा सम्मता पर
मानवता पर अभिमान किया,
पर आज न कहियों तुमको
जब मेरा घर वीरान किया।

मेरे शोचन-धनन में
कौनों के तरु बोलने वाले
मुझको आलने की पीड़ा दे
बोला सुख ही होने वाला !

वह कहें तुम्हारी गई आज मानवता की हेमकेसर ?
मेरी इस खोटी कुटिया में, क्यों डाली तुमने चिनगाय ?

तो, लो देखो अब सावधान
मुझ में कितनी है भरी आग,
इसमें तुमको आलना होगा
जीवन की ममता, मोह जाय ।
इति अर्जुन कृष्ण-तन में देखें
हैं कितना यौवन भरा हुआ,
इसमें कितनी माली, इसमें
कितना पागलपन भरा हुआ ।
अब मैं न मैं इसमें पर, है बाली होने की पैदाई ।
मेरी इस खोटी कुटिया में, क्यों डाली तुमने चिनगाय ?

मुझे यह कविता सुनाने में आगमन काया काटे को समय लगा ।
इसका काया यह था कि स्थान-स्थान पर-तालियों की गड़गड़ाहट होती थी
और लोग कुछ पंक्तियों को दुहराने का अनुष्ठान करते थे । कविता
की समाप्ति पायी बहुत दे तक तालियाँ बजती रहीं । मेरे पश्चात् भी-
कई कवियों को अपनी कवितारें सुनानी थीं । वातावरण कुछ इस प्रकार
का बन गया था कि लोग अनुभव कर रहे थे कि कवि-सम्मेलन यही
समाप्त कर दिया जाय । किंतु, यह तो नहीं किया गया, पर इतना अवश्य
किया गया कि मेरे चार तालियों ने जब स्वयं ही कविता-पाठकानों
से इनकार कर दिया, तो प्रोता-समूह ने कवि-सम्मेलन को उंचालने
की भावुकता सीढ़ी-चौहान से ही कविता-पाठ का अनुष्ठान किया ।

श्री सिंह ने जन-अग्रणी स्वीकार किया और बड़े दमावम को साथ
एक अत्यन्त आजादी कविता सुनाई। उनकी रचना यदापि
धोतीनी, परन्तु राष्ट्रीय भावनाओं से भरपूर थी। वह रचना
बहुत अच्छी। लोगों की तारीफ़ मही हुई। उसी रचना को तीन बार
सुना गया। दुर्भाग्य से मैं उस कविता को यहाँ उद्धृत नहीं
कर सकता, क्योंकि उसके पश्चात् वह फिर कहीं उपलब्ध नहीं
हुई। उसकी आन्तिम वांछितियाँ जो मुझे याद रह गई हैं, श-
प्रकार हैं:—

“समस्या है मुझमें, तो प्रलय को बाँध लो,
फड़फड़ाते हैं लो, तो-दुम लो तनवार लो।”

कावे-सम्मेलन समाप्त हो चुका था। राष्ट्रीय-चेतना का एक
विचित्र मालूम पैदा हो गया था। पुलिस अधीक्षक महोदय
पहले ही-चेतावनी दे चुके थे कि यदि किसी ने आपत्तिजनक
कविता पढ़ी तो वे उसे गिरफ्तार करके ले जाएंगे। लोग प्रतीक्षा
कर रहे थे कि वे किसीकी गिरफ्तारी के लिए उठेंगे। यह
स्पष्ट ही था कि वे मुझको या श्री आनुपकाश सिंह-चौहान को
गिरफ्तार करेंगे। यहाँ उन पुलिस-अधीक्षक महोदय का नाम
जिह्वा भी अनुचित प्रतीत नहीं होता। उनका नाम था श्री
दशरथासिंह। गंगा हुआ बदन, सैलीना-चहरा और-चहरा पर
बुकीली मुँहों उनके व्यक्तित्व को प्रभावशाली बना देता था।
वे उठे अवश्य। पहले वे श्री आनुपकाश सिंह को पकड़ चुके और
उनकी प्रशंसा करते हुए उनके हाथ मिलाया। इससे मैं मुझे
भी उन्होंने वही बुझाया और मेरी रचनाकी प्रशंसा करते हुए
मेरी पीठ थपथपाई। मेरे नए प्रधानाचार्य श्री आर० सी० पंतोजी
ने भी मेरी पीठ थपथपाई। श्री पंतोजी श्री लज्जन्ती बाहबक स्थान
पर आए थे। मेरी कविता सुन कर वे इतने प्रभावित हुए थे कि समस्त-समस्त
पर वे मुझे अपने घर भी बुलावा करते थे। एक बार उन्होंने मेरा एक
बड़ा अपराध क्षमा कर दिया था। श-पठना का उन्होंने कुछ
आगे-पल्ल करवा दिया।

मुझे अस्थिरता बनी रही थी कि कहीं पुलिस अधीक्षक १३१-
 दशरथ सिंह मुझे तंग न करें। मेरी बात धारण निर्मूलक सिद्ध हुई। समय
 माने पर उन्होंने मेरी सहजता ली थी। इसका प्रमाण मुझे तब मिला,
 जब विद्यालय छोड़-मुझसे जो प्रश्नात में मैं सन् १९५२ में
 'भारत-व्योम-अध्ययन' में जुलकर भाग लिया और मैं गिरफ्तार
 किया गया। मेरे साथ मेरे एक सहपाठी मित्र श्री विजय सिंह गहौर
 भी गिरफ्तार हुए थे। हम लोगों को गुना की फतहगढ़ जेल में
 रखा गया था। फतहगढ़ गुना जिले का कालापानी कस्बा जाता है।
 वहाँ पानी की बहुत कठिनाई रहती है। हमने देखा था कि सिपाही लोग
 चारपाई पर बैठ कर गहारे में और चारपाई के नीचे बड़ी-बड़ी आलियाँ
 रख दी जाती थीं। तबने को जो पानी आलियों में एकत्र हो जाता
 था, उसी से वे लोग कापड़े धो लेते थे। हमें जेल में कोई आधुनिकता
 नहीं हुई। उन्हीं पुलिस-अधीक्षक श्री दशरथ सिंह साहब ने
 जेल-अधिकारियों को समझा दिया था कि इन बच्चों को कोई
 कष्ट न हो।

ईद मुबारक हो

अब मैं उस छुटे हुए प्रांग को पूर्ण कर रहा हूँ, जिसका उल्लेख
 पहले कर चुका हूँ। उस समय मैं हरिद्वार का विद्यार्थी था और अपने
 विद्यालय तथा नगर में एक अच्छे कारिगरे रूप में प्रतिष्ठित हो चुका
 था। मेरे गए प्रधानाचार्य श्री पन्तोजी भी मुझे बहुत प्रसन्न थे।
 एक बार मैं उन्हीं के प्रति बड़ा आपाध कर बैठा। मेरे एक सहपाठी
 और स्वाभाविक मित्र श्री हरमोहन श्रीमान। मैन्सी डेरा पुलिस थाने
 में पुराना प्राप्त कर चुके थे। ईद के अवसर पर उन्होंने मुझे पुराना
 दी कि हम लोग मुस्लिम देश-धारण करने हड़मास्टर साहब को
 ईद मुबारक देने-वाले। धरिधान का प्रबन्ध उन्हीं ने कर लिया।
 जब हम लोग मुस्लिम देश-धारण करने निकले तो हमारे
 स्वाभाविक साथी लोग भी हमें वहीं पहचान लेंगे। रात को
 समय था। एक दागी आली पर खेमात डाल कर हम लोग
 अपने प्रधानाचार्य श्री पन्तोजी के घर जा पहुँचे। उनका
 दरवाजा बन्द था। मैंने सोरी कावाज बना कर प्रयास -
 "हड़मास्टर साहब!"

हमारी आकाश सुनते ही दरवाजा खुला और स्वयं हेडमास्टर साहब
पकट हुए। एक सेकिंड की देर किए बिना ही उन्होंने कहा -
“आवे सरल और सरल रूप! बहुत लोग इस समय यहाँ
आए हैं और यह क्या स्वागत बना रहा है?”

हम लोगों को बहुत ही आश्चर्य हुआ कि एक सेकिंड के कुछ
हिस्से में ही उनके हमारे पहचान लीये और हमें नाम से
पुकारा। हम लोग अपने-अपने कमरे मुकाम हुए पड़े हो गए।
वे हमें अन्दा भोग और बैठक में बिठाया। हम लोगों को
यह बताया पड़ा कि हम लोग किताबें इरादे से उनके पास पहुँचे थे।
हमें उस समय और लाजित लेना पड़ा जब ईदगी में टैक्सा
पर हमारे पास खाली आली निकली। हेडमास्टर साहब ने हम
लोगों को बहुत लाजित किया। उनका कथन था -

“क्या तुम लोग इस तरह अपने पिता के पास जा सकते थे?”
उनके पीर धुंकार हम लोगों ने आगे दामा-याचना की। उन्होंने
हमें दामा कर दिया और अपनी पुत्रियों को आवाज दी -

“आरे कृष्णा! ओ प्रभा! दोनो ही, तुम्हो माई लोग आए
हैं, इनकी कुछ खाते रहें तो करो।”

कृष्णा और प्रभा उनकी पुत्रियों थीं। वे भी हमारे साथ विद्यालय
में पढ़ती थीं। वे विवाह की ओट में पड़े होकर हेडमास्टर साहब
द्वारा हमारे की गई खातिर को गजाल ले रही थीं। अपने पिताजी
की आवाज सुन कर वे कमरे में पकट हो गईं और मुँह में पल्लू दबा कर
जो भर कर हँसने से परचात अन्दा-बली गई और बड़ी-बड़ी
तश्तारियों में जाते को सामान लजा लाई। हम लोगों ने बड़े संकोच
से साथ कुछ लाया-दिया और एकबार हेडमास्टर साहब से पुनः दामा-
याचना करके उनके विदा भोगों। कृष्णा और प्रभा दोनों ही हम लोगों
को पहुँचाने फाटत तक गईं। मैंने उनके विदा लेते हुए प्रार्थना
की -

“हे देवियो! आपसे यही प्रार्थना है कि आप ~~को~~ शापटना
को आलीक विद्यालय में किसी से भी न करना।”

शरारत भरी हँसी हँसते हुए बहुत प्रभा ने कहा -

“तुम कभी-कभी हमें कविताएँ सुनाते रहना।”

बहुत कृष्णा ने भी इस कथन की धाँसि की। हम उन्हें दामायाद

देते हैं जो जितने दिन हम लोग विद्यालय में रहे, उतने उतना
का उल्लेख किसी से भी नहीं किया।

गुना हाई स्कूल और गंगूरी साहित्यिक वातावरण के सम्बन्ध-
में भी कुछ लिखें। गुना हाई स्कूल में उस समय बहुत अच्छे-
अच्छे अध्यापक थे - एक से एक बड़े। श्रीमान श्यामी धानवीरों का
आगे बढ़ाने में तो कोई कसर नहीं छोड़ते थे। साहित्यिक वातावरण
भी बहुत अच्छा था। हमारे साहित्यिक अध्यापकों में श्री मानसूख श-
र्मा, श्री रज्जन लाल प्रधान और श्री गोकुलकिशोर भट्टाचार्य के
नामों का उल्लेख मैं पहले ही कर चुका हूँ। धान-मित्रों में श्री
राजेंद्र सिंह - चौहान, श्री श्यामनारायण विजयवर्गीय, श्री
राजेंद्र लाल तिवरीना 'कंज' (अब स्वर्गीय) श्री वृजनन्दन त्रिपाठी, श्री भैरव लाल
वर्मा और श्री बालाप्रसाद त्रिपाठी (अब स्वर्गीय) अच्छे लोगों में
गिने जाते थे। एक अच्छा छात्र भी हम लोगों में था। उसका नाम था -
शानदार हुसैन 'विमिल'। श्री वृज्जु विजयवर्गीय तो अब अच्छे अध्यापकों के
रूप में उल्लेखित हो चुके हैं।
गुना नगर के साहित्यिक मित्रों में श्री अखिल भारतीय स्तर के
कहानीकार श्री नारायण श्यामराव चिताम्बर के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।
मैंने हुए साहित्यकारों में श्री कालेन्द्र दास तिवारी का नाम भी आता है।
मुकेश्वर श्री गणेश लाल भागवत के नाम का उल्लेख तो हो ही चुका है। इनके
अतिरिक्त कुछ कुछ सहवान भी थे जो बहुत अच्छे गजलों लिखते
थे और तरनुम के लाल सुनाते थे। जब कभी कवि-सम्मेलन या
मुशायरा या मिलन-पुष्पाकार्यक्रम होता तो पद का भेदभाव किए बिना
सब लोग बराबरी के साथ बैठ कर, एक-दूसरे को प्रोत्साहित करते
कविता-पाठ करते थे। चाहे कोई तौंगेवाला हो या हममाल, कवि-सम्मेलन
के सन्दर्भ पर वह चाचा या भाईजान ही होता था और उसके बाद
के जीवन में भी। वही भाईचारा तो अब दोहन की हो नहीं
मिलता।

गुना नगर अपने 'भैया-मंडल' के लिए भी मशहूर था।
साहित्यकारों और संगीतज्ञों का वह सजाज 'भैया-मंडल' के नाम
से जाना जाता था। उसके सदस्य एक-दूसरे के भैया बहूकार

पुकारते थे। कुछ दिन पहले अपने चत्तीत हाल ही बिछुरे हुए
मैंने श्री दीक्षित मुझे भिड़ नगर में मिल गए। दोपते ही
हम लोगों ने एक-दूसरे को पहचान लिया। भावार्थों के कारण
ने मेरे गले से लगे कर से पड़े।

मेरे आदर्श कवि

काव्य के क्षेत्र में मैंने श्री रामदासी सिंह 'दिनकर' को अपने
आदर्श के रूप में माना है। एक का एक पुस्तक-विक्रेता हमारे धावावा
में आया था। मैंने उसके पास ही दिनकर जी की सभी पुस्तकें खरीदी
थीं। मुझे उनसे एक शिकायत भी थी। मैं सोचता था कि
दिनकर जी का दमंग कवि भी ब्रिटिश-साम्राज्य को ही दोष न लाकर
अन्योक्ति को माध्यम से क्यों लिखता है, जैसे "मेरे नगरपाले!
मेरे दिशाले! तुम लड़े मौत ही रहे इन्हीं की तुम का प्यास देते।"
श्री हरिकृष्ण 'पुत्री', तो मुझे ही लिखती हैं। मुझे उनकी राष्ट्रीय
कविताएँ बहुत पसंद थीं, लेकिन वे भी पुस्तक नहीं लिख पाते थे।
अपनी 'पंखों की पीड़ा' कविता में एक पंखों को माध्यम बनाकर
ही उन्होंने शासन की आलोचना की थी। यही कारण था कि मैंने
संकल्प लिया था कि मैं अपने ब्रिटिश शासकों से - मुर्खों की
लिखी भाषा में बात करूँगा, अन्योक्ति को माध्यम से लूँ। जो कविता
मैंने शत पंखों की छंदों से, क्यों डाँकी हमने दिनगार, आप पढ़-भुँके
हैं, उसके साथ आप को मेरे विद्रोही अंतः को परिचय प्राप्त
होगा होगा। यह सभी को दाँत है कि उन दिनों ब्रिटिश-शासन-पीतकी
रचनाओं ने लोग का अर्थ था नाराजगी की भीषण वातमय। मैंने
शत पंखों की कभी चिन्ता नहीं की। मैं यह समझ ही चुका हूँ कि अपने
बचपन में गोरे सैनिकों के घुँसों और मालदार बूटों की होकरों से
मैं भयानक स्थिति तक पहुँच गया था। यही चिन्ता अब आता था
कि दश-उत्पात वर्षों की अवस्था में जब मैं उस वातमा को बदलित
कर गया तो यदि अन्धकार ही सौवन की कालरती देह बना बदलित
नहीं कर सकती। इसी निष्कर्षों के कारण ही मैं हमेशा सड़काने वाली
कविताएँ लिखता रहूँ। कविता के अभिप्राय जीवन के दिनों की

एक और भड़काने वाली लम्बी रस्सा ने कुदरपद यहाँ उदधृत कर
रखा है। इस कावित्व का प्रवाह इष्टव्य है : -

करना हर कुर्बानी है

आज देश की आजादी हित, करना हर कुर्बानी है ।
आज शत्रु के शोणित है ही हमको प्यास कुर्बानी है ।
जिसे माद ही जलसाँवला बाग
गालियों की मोँ प्यार,
कफा रही है जिसके अंतर
में, बच्चों-भाजों की मार -
भ्रम नहीं पाया है जाँ, सन्
व्यापित की आगत की दिन,
जब स्वतंत्रता के दीवाने
भूने जाते थे गिन-गिन -
आगे बढ़ें कि वे जिनमें जीवन है, जोश-जवाही है ।
आज देश की आजादी हित, करना हर कुर्बानी है ।
भड़क उठी है जिसके अंतर
में, इतिहास-आत्म भाई,
जिसे नहीं "अन्धकार" गता है
शासन यह अन्धकार -
निज शोणित है हताश
वें करें, न कुदर देहों-भाजें,
मातृभूमि की रज मस्तक पर
राख कर, आज कलम रवाज -
यह जुबानी तरवार शीघ्र माँ ! हमको आज भिदानी है ।
आज देश की आजादी हित, करना हर कुर्बानी है ।
आज देश के कोने-कोने
धर-धर है निकले जवाना,
आज देश का ग्राम-ग्राम और
नगर-नगर है भरवाजा -

महलों, कुरियों, मैदानों में
 सभी जगह हो विनमरी,
 सभी जगह विद्रोह भयंकर
 सभी जगह हो तैयारी ।

आज फ़ार्मि की फ़ादियों, होना शान्त न हमें बितानी हैं ।
 आज देश की आज़ादी हित, करना हर कुर्बानी हैं ।

भेदभाव को आज भूल कर
 रंग और धनकन उठें,
 लिए हल्ला-हंसीया कर में
 आगे भ्रमिक, किसान उठें -
 हिन्दू आगे, मुस्लिम आगे
 आज सिखा हरदा उठें,
 लेकर एक, एक स्वर में यह -
 मिल कर सभी पुकार उठें -

सत्तावन की भूख नहीं फिर हमें कभी कुर्यानी हैं ।
 आज देश की आज़ादी हित, करना हर कुर्बानी हैं ।

मान्दिर-मास्जिद मुहंदासों में
 यही एक ~~अपन~~ आवाज उठे -

आज देश की पुण्य-भूमि में
 पातित विदेशी राज उठे -
 पीड़ित और पद-चलित आगे
 प्रतिशोधी शक्तियन उठें,
 असन कसामतों पहले ही
 कब्रों से ईमान उठें -

आज और आज़ादों की, सब की शीमत आज चुकानी हैं ।
 आज देश की आज़ादी हित, करना हर कुर्बानी हैं ।

आज यहाँ का जन-जन कण-कण
 जाना पता-पता है,
 अन्यायी शासन की हमारी
 आज मिटानी पता है।
 नगर-नगर में डगर-डगर में
 गुँजा रही तराना है,
 आजादी के लिए हमें कुछ
 करना, या मर जाना है।
 आज ईश का बदला पतवार से देने की घड़ी है।
 आज देश की आजादी हित करना हर कुर्बानी है।

एक साहित्यिक नगर के चारों-पारों संस्मरण

हाई स्कूल तक अध्ययन तो मैंने गुना नगर
 में किया था क्योंकि उन दिनों बहुत ही एकजिने
 में एक ही हाई स्कूल हुआ करता था। गुना नगर में
 हाई स्कूल होते हुए भी वहाँ परीक्षा का केन्द्र नहीं था।
 सन १९४१ में हाई स्कूल परीक्षा देने हमें राजास्थान
 के कोटा नगर जाना पड़ा था। परीक्षा के दिनों में ही
 बीमा पड़ाने के कारण मैं पूरी परीक्षा नहीं दे सका।
 अगले वर्ष सन १९४२ में स्वाध्यायी धान के रूप
 में परीक्षा देने के लिए मैंने उज्जैन नगर को चुना।
 वहाँ मेरा प्रथम उज्जैन आगमन था। उस समय तक
 उज्जैन के करीब करीब श्री भगवन्त शरण जोशी
 से मेरा अच्छा परिचय हो चुका था।
 मेरा परीक्षा केन्द्र माधव महाविद्यालय था।
 उस समय उस परीक्षा-केन्द्र को अध्यक्ष श्री अमर ली

पन्तोजी ने, जो गुना हाई स्कूल में मेरे विद्यालय
के प्रधानाध्यापक रहे, मुझे भी।

परीक्षा के समय की एक निरणीय घटना का
उल्लेख यहाँ कर रहा हूँ। जिस परीक्षा-कक्षा में
मैं अवाधित था, वहाँ निरीक्षण-कार्य श्री भगवन्त
~~शरण~~ शरण ~~जैहरी~~ जैहरी कर रहे थे। प्रश्न-पत्र
पाकर मैं तंजी से उत्तर लिखने में व्यस्त था।
श्री जैहरी ने जो बीच-बीच में आत्मियता वश
मेरे पास आते और मुझे बातों से उलझा लेता
थे। मैंने उनसे कहा भी कि काते' हमारे
बाद में कर लेंगे, यहाँ तो आप मुझे प्रश्नों से
उत्तर लिखने दें। उनका कण्ठन था -

"जो व्यापक आपनी उम्र से कहीं आत्मिक योग्यता
रखता है, वह जितना भी लिख देगा, बहुत अच्छे
अंक प्राप्त कर लेगा"। उनका यह कण्ठन मुझे
निकला। तत्पश्चात् ही मैं बहुत अच्छे अंकों से परीक्षा
में उत्तीर्ण हुआ।

भाई भगवन्तशरण जैहरी परीक्षा के बाद के समय
में मुझे अध्ययन गलती करने देते थे। मैं जैन-
धर्मवादी में रह रहा हुआ था। वे वहाँ से मुझे उज्जैन
नगर के साहित्यिक मित्रों से मिलाने में लाते। उन
दिनों उज्जैन नवोदित साहित्यकारों का गढ़
बना हुआ था। उस समय वहाँ श्री भगवन्तशरण
जैहरी, श्री श्याम परमार, श्री नरेश मेहरा,
श्री कलानिधी चंवल, भाई लालित और
मैं प्रह्लाद पाण्डेय शास्त्री का अच्छा प्रभाव
था। एक संस्कार का मुझसे ही सम्बन्ध देखी पर

निमित्त गुजराती-समाज-मंचन में मेरे सम्मान में
एक काव्य-गोष्ठी का भी आयोजन किया गया।
ऐसी एक रचना बहुत पसन्द की गई "बनावह
जिन्ना काज सुनार" अपने परिचा के दिनों में
भी मुझे कई काव्य-गोष्ठियों में सम्मिलित होना
पड़ा।

मुझे १९६२ में ही उज्जैन में आयोजित आसिय-
भारतीय-कवि-सम्मेलन में स्वागत कराने का प्रयत्न
भी भाई भगवन्त शरण जोहरी ने कर लिया था।
हम उन्हें मानवा को महावीरप्रसाद द्विवेदी कहें
तो कवि शायकी नहीं होगी। अपने ही कवि-
सहितकारों को वे हमेशा ही प्रोत्साहित करते रहे
हैं। काँ ब्रह्मावस्था के इन दिनों में भी वे उसे
सूचना को निर्वह कर रहे हैं। वे अपने समय
के बहुत अच्छे कवि, इसी को कहानी कर रहे
हैं। अपनी विशिष्ट शैली के कारण उनकी पंक्तियाँ
अपने आप कह देती हैं कि ये भगवन्त शरण जोहरी
की पंक्तियाँ हैं।

सन् १९६२ में उज्जैन के प्रथम-दर्शन की अवसर पर
ही मन को कुछ ऐसा लगा था कि रहने के लिए यह स्थान
बहुत ही उपयुक्त है। कान-बलकर मेरी यह अभिलाषा
पूर्ण भी हो गई।

अपने महारानी कहलयाबाई, विण्ड-काव्य में कि
स्वातंत्र्य पर मानव-भूमी की विशेषताओं का दिग्दर्शन
करते हुए मैंने लिखा था -

कमहलीं के बाप
कम, कम, कम
कम ही कुछ जोड़ें
गएँ। धरतें हुए
हलीं में A, B, C
सम के हलीं में
सम के हलीं में
जामे।

भूमि मातावादी, यह आपने
गौरव से गंभीर है,
ठीक कहा है, इसमें पग-पग
रोटी, डग-डग नीर है।

हर दिन घुम दिन, सरस सलोनी
सदा यहाँ की रात है,
पूँछट की-ली हँसी, मातावा
की भीनी बरसात है।

आवमगत में भूमि यहाँ की
रही सदा तल्लीन है,
तन से तो काली है, पर यह
मन से नहीं मलीन है।

इसके मन की उज्ज्वलता के
दीप्त पलक कलाश के
इसके आध्यात्मिक प्रतीक सब
मदमाते मधुमा के।

काव्य-लेखन का पुरस्कार

मैं यह गर्वित साध कहता रहूँ कि यदि अशोकानगर
मेरी जन्मस्थली है तो गुना मेरी साधना-स्थली है। गुना में रहकर ही मैंने
काव्य के कोमल फुटे फीरे वही उन्होंने प्रौढ़ता प्राप्त की। मेरी आजीविका का
प्रारम्भ भी वहीं से हुआ। यह किताबें, तरतुल्य, इसका विवरण प्रस्तुत है—

गुना रहकर ही मैंने सन् १९६४ ई० में इन्दरनी डिप्ट परीक्षा
विद्यार्थी दल के रूप में उत्तीर्ण कर ली। उस समय गुना में श्री
हनुमन्त माल नगर लीडर क्लब के प्रधानाध्यक्ष थे। वे गणित विषय
के विशेषज्ञ थे, लेकिन साहित्य से भी उन्हें रुचि थी। गोवा की
पुस्तकालय जयन्ती पर उन्होंने विद्यालय में एक कवि-सम्मेलन का
आयोजन किया। भूतपूर्व छात्र होने के नाते मुझे भी भाग निश्चित
गया।

कवि सम्मेलन के प्रारम्भ में धन-कवि यों ने अपनी-अपनी
रचनाएँ पढ़ीं। उगले पशुनाथ नगर के कवि यों ने कवि-सम्मेलन को
गति प्रदान की। इसके अन्त में मेरा नाम पुकारा गया।

शरणा है ही मेरी कविताओं में राष्ट्रीय (वर ही प्रभाव रहा करता था) -
मेने गोमती दुर्गादास को सम्बोधित करते हुए एक ऐसी कविता पढ़ी -
जिसमें उनके समय और हमारे समय का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत
किया गया था। कविता बहुत सराही गई और आजका होर पुरस्कार
भी मुझे मिला। आज उम्मेद है बाद में कहेंगे, पहले आज उम्मेद
कविता का आनन्द लें।

कावे! मैं करने आया पुकार

कावे! मैं करने आया पुकार।
बुद्ध अपनी बुद्ध मानवता की, लेकर आसुर है चब्द-कार।
कावे, मैं करने आया पुकार।

तुम कवि थे, तुमने पाया था कवि-हृदय एक ऐसा महान
जिसे पर न्योछावर हो सकता, जगती का सब विराम-रान।
तुम किन्तुमिल उज्ज्वल रत्न एक, भारत का जीवन्मूर्ति प्राण,
तुम क्षेम दीप्तिमान, आज्जल्यमान, तुम काव्य-गगन के भासमान।
तुम कभी ले गए जग ही में, दे वाणी का असंख्य दान,
तुम भोले भक्त भारती की, तुम भक्त-शिरोमणि हृदयदान।
क्यों गर्व न हो तुम पर हमको
तुम कवि थे, तुम थे कालाकार,
कावे, मैं करने आया पुकार।

वह भी तो ऐसा ही युग था, जब तुम शम्भू पर आए थे,
जब भारत का दुर्मिय-ग्रस्त, बेसी बँह मुँह बाए थे।
जब चर्म और तन्मयता लगी, जड़ है ही मिटनेवाले थे,
जब हिन्दी के कोमल उर पर तुमने कबोरे (कान्हे) भाले
तब हूँ, तुम ही ने तो आकर हिन्दी के प्राण बचाए थे,
चौपाई-दाँ हा नहीं, अरे! तुमने तो मंत्र छुड़ाए थे।

तुम वन्दनीय-अमिन्नन्दनीय
हिन्दी-कविता के कर्णधार।
कावे, मैं करने आया पुकार।

मिल गए जीवनी संभली तुम स्वयं, धियें और सुन्दर,
 कावे, यहाँ आज तक गुँज रहे वे शब्द तुम्हारे भजन-अंगर ।
 "स्वयं धृष्टार्थी नरक के आविर्भाव" यह लिखने से तुम नहीं रुकें,
 तुम स्वयं तेज ने पुंज मल, मुकुटों के आगे नहीं भुके ।
 तुमने नव-पद्म निर्माण किया, तुम हुए आत्मा देकर जीवन,
 निश्चित तुम करने आए थे भारत-माता के ध्यात्यभयन ।
 तुमने मरुवाज में प्रवहमान
 की राम नाम की पुण्य-धार ।
 कावे, मैं करने आया पुकार ।

कब देव तुम पाणों का, अव्याचारे का बड़ जाना,
 अभिमानी असुरों के द्वारा हरि के भक्तों का दुल पाना ।
 कब देव तुम चर्म-हानि, भू पर समता का नर्तन,
 पुन तुम नहीं तुम किंचित भी, मानवता का कलुष-प्रदहन ।
 तुमको अभीष्ट था, मर्यादा-आदर्श विश्वको दिवालगाना,
 दुष्टों को करने को विनाश, था राम रूप ही प्रकटाना ।
 तुमने हरि से, हरि-भक्तों से
 भा दोनें ही से किया धार ।
 कावे, मैं करने आया पुकार ।

प्रेमान्ध विश्व जिसमें जकड़ा, जिसको वह सक्ता नहीं धोड़,
 तुम पल भर में ही गए निकल, वह बंधन वह जंजीर तोड़ ;
 तुमने अपनी प्रिय पत्नी को धोड़, उतार कर गए ओड़,
 तुम हुए विश्व के बन्दनीय साकर जीवन में एक चोट ।
 तुम इतने भव के अत पर हुए, तिये-ध्याये ध्याया से नगा छेड़,
 तुम गए पुराणों वेदों को रूत अपने मानस में तिन्नाड़ ।
 तुम ऐहिक, जो नहीं कभी
 पाग में आते हैं बा-बार ।
 कावे, मैं करने आया पुकार ।

तुम कविओ, हम भी तो कवि हैं, हम भी तो कविता करते हैं,
 हम ऐसे-वैसे नहीं, महाकवि होने का दम भरते हैं।
 हमको जाता है शब्द-शास्त्र, है पिंगल का भी ज्ञान हमें,
 तुम को चाहे कुछ रह न हो, कवि होने का अभिमान हमें।
 हम अच्छे कवि हैं, नहीं कभी कविता लिखने से डरते हैं,
 कविता को कोमल कानन में हम भी खूबसूरत बिखरते हैं।
 कविवर फिर भी हम में, तुम में
 हम दोबरा रहे अंतर अपार।
 कवि, मैं करने आया पुकार।

तुम ईश्वर ने अवतार राम का करते थे सम्यग नाम,
 हम मानव होकर भी मानव के होते हैं गुण-गण अकाम।
 गुण-गण मनुज का करने को, हम कपटी काम उठाते हैं,
 हम कविता पर करके पहार ही छुकावे कलह जाते हैं।
 हमको है गर्व लोचनी पर, दम देते हम आँखों विराम,
 वह कोन निषय है फिर पर हम, कुछ करने लगे स्वनामनाम।
 हमको उज्ज्वल यश मिलता है
 हम कहलाते हैं होतार।
 कवि, मैं करने आया पुकार।

तुमने लिखा सानः सुखाय, हम सबको यहाँ दिलाते हैं,
 तुमने पुकारा राजद्वार, हम दौड़-दौड़ कर जाते हैं।
 तुमने काल्याण किया जग को, है महामंत्र प्रिय राम नाम,
 तुम कवियों को कुल-भूषण थे, तुम गोस्वामीओ, हम गुलाम।
 तुम साधु-व्रती संतोषी थे, हम भूल-भूल दिखाते हैं,
 पार-पार जा बन्दर के समान, हम अपनापेट दिखाते हैं।
 तुम व्यापीओ, आ किया पाग
 तुमने वैभव पर लात मार।
 कवि, मैं करने आया पुकार।

हैं यही देश, जिसमें मानव रोटी-रोटी निम्न होते हैं,
जिसमें गन्दे बालक भूले अन्धनेट सुलाए जाते हैं।
आवाज़ के दुकड़ी पर ही हम बेचोकर अपना जीवन,
बेचा करते अपनी साँसें, बेचा करते अपना जीवन।
हम कामी जगत-गुरुओं पर, हम तो जग के भार का होते हैं,
जाने कितनी दौपदियों की, हम आज नहीं एक जाते हैं।
यह भी क्या कोई जीवन है, ~~यही जीवन में फिर सब कुछ~~
इस जीवन में क्या रहा सार?
कवि में करने आया पुकार।

बोला कवि, दीनों का रखवा हूँ गर दयाले-व्यामनाहें ?
हम जिनको जीवन भर रटते, छिप गए आज के रामकाहें ?
केवल गज की छुन कर पुकार, जो पैदल दौड़ें आए थे
जि जने भक्तों के कई बार, किंचित में प्राण बचाए थे।
वे दीन-बन्धु, वे दयानिष्ठ, वे कुसलोत्तम बलधामकाहें ?
हम जिन्हें दोपने तरा रहे, देवमल-नयन अभिरामकाहें ?
सुन कर, अनसुनी कर रहे पों
वे आज कयों की मुहार ?
कवि, में करने आया पुकार।

हम भूलें आज हमी, पर तुम के किंन्तु नहीं हलशा हुए,
तुमने आलोकित किया विश्व, तुम आशा और प्रकाश हुए।
तुम कवियों के सम्राट बने, तुम कवि-कुल-भूषण कहलाए,
जो यहाँ आज तक गुँजर रहे, वे गीत हमी तुमने गाय।
उठ दोर परिस्थिति में का ही, जद-जीवन के आगाह हुए,
तुमको पा हुआ ही-हुआ ही, तुम हुआ ही तुमहीदाह हुए।
प्रियात आज तुमहें हम भी
भरते हैं तो तो नमस्कार।
कवि, में करने आया पुकार।

कवि-सम्मेलन में हमीने द्वारा गेरी यह स्चना सराही गई।
आज तीर से लोगों का विश्वास है कि गणित ने व्याप्ती शुरू और तीर
होते हैं, लेकिन इस कविता ने भर सिद्ध कर दिया कि यह बात

हमेशा ही सत्य नहीं होती। मैं यह निश्चय कर चुकी हूँ कि उस समय मुन्ना हाईस्कूल के प्रधानाध्यापक श्री हजारीलाल नागर भी मेरे गणित के व्याक्त थे। इस अवस्था ने उनके मन को खूब झुका। अगले दिन उन्होंने मिलने के लिए मुझे अपने कार्यालय में बुलाया। उनसे मेरी जो बात हुई, वह थी -

“उस समय आप क्या कार्य कर रहे थे?”

“जी, उस समय मैं इन्टरमीडिएट परीक्षा उत्तीर्ण करने बी०ए० की परीक्षा भी तैयारी कर रहा हूँ।”

“बी०ए० प्राप्त कर लेने के पश्चात् आप क्या करेंगे?”

“बी०ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने के पश्चात् मैं किसी मेकर्स की तलाश करूँगा।”

“यदि कोई सर्वेक्षक आपका कामोत्तिष्ठ जाय, तो क्या आप उसे स्वीकार करेंगे?”

“मैं उसे स्वीकार कर लूँगा, पर सत्य ही मेरा यह भी प्रयत्न होगा कि मैं बी०ए० की परीक्षा में अवश्य सम्मिलित होऊँ।”

“देखिए, हमारे विद्यालय में अध्यापक का एक पद रिक्त है। यदि आप स्वीकार करें तो उस पद पर मैं आप ही आपकी नियुक्ति कर सकता हूँ और आपका बी०ए० की परीक्षा में सम्मिलित होने की मुझसे भी प्रार्थना कर सकता हूँ। निर्णय आप के हृदय में है।”

“मेरी और पुष्ट-पुष्ट? मुझे आपका यह प्रस्ताव स्वीकार है। इस उदात्त के लिए मैं आपको बहुत-बहुत धन्यवाद देता हूँ।”

श्री नागर साहब ने मुझसे एक प्रार्थना-पत्र लिखवाकर लीजिया और उसी समय मुझे कि कक्षा में पढ़ाने भेज दिया। दो हफ्ते के अन्दर ही मेरी नियुक्ति भी पूर्ण हो गई। उन दिनों प्रधानाध्यापकों के प्रभाव शिक्षा-संचालक द्वारा स्वीकार हो लिए जाते थे और प्रभावशाली प्रधानाध्यापकों के प्रभाव से कभी कसौती लिए ही नहीं जाते थे। उन दिनों आजकल जैसा हम नहीं था कि - वपराजी के पद की पूर्ति के लिए मंत्री महोदय हाथक्षेप करें। एक अवस्था ने मेरी आजीविका के प्रश्न को हल कर दिया। पुष्पहीनता भी मुझको पल्लव गत।

द्वितीय-संचलन : प्रकाशन-पत्र

एक दिन मेरे एक मित्र श्री सिताराम ~~विश्वनाथ~~ विश्वनाथ ताटके गुना के बाजार में मुझे मिले तो मेरे गले में हाथ डाल कर कुछ एकाग्र में वे मुझे लंगर और बिना किसी भूमिका के एक चौकाने वाली बात उन्होंने मुझ से कह दी। वे बोले -

“मेरे यहाँ एक क्रान्तिकारी ठहरा हुआ है। आज रात आठ बजे तुम मेरे यहाँ आ जाओ। मैं तुम्हीं गुनाका उस क्रान्तिकारी से करा दूँगा।”

यह बात सुन कर मेरा अजीब हल्ला हो गया। श्री ताटके भी बात को तो भरोसा करता ही था कि उनके यहाँ कोई क्रान्तिकारी ठहरा है। गुना में श्री ताटके एक तपासी कार्यकर्ता के रूप में लोकप्रिय थे, जिनसे देश के आज़ादी के आन्दोलन में गले-गले डूब कर भाग लिया था और कई बार जेल की यात्राएँ भी थीं। उनकी बात सुन कर मेरा अजीब हल्ला हुआ। लोग सबों के मैं कल्पना नहीं कर सका था कि किसी क्रान्तिकारी से मेरी भेंट होगी और मैं आसने-सामने आते-वाते कर सकूँगा। अपनी अजीब स्थिति होने का दूसरा कारण यह था कि एक गोपनीय रहस्य प्रकट करने के लिए श्री ताटके ने मुझे विश्वास-भजन समझा था। ~~और उसके~~ बातों का और आधे-सातवाँ भाग न चला कर वे स्वयं ही फिर यह कह गए -

“आज रात बीस आठ बजे आप अपने लें मेरे घर आ जाओ और रात का अन्तिम निती अन्त्य ही न करना।”

अगले रात के आठ बजे मुझिल्ल से बजे। सूर्योदय के दिन हो चुके थे और भी वह दिन बहुत लम्बे लग रहे और आठ बजे-बजे तो मेरे चौक में भी जवाब दे दिया। जब मैं श्री ताटके के कमरे में उपस्थित हुआ तो एक मुद्रक से बातें करने में वे संलग्न थे। गौरवर्धन के आगे मुद्रक का चेहरा बहुत प्रभावशाली था और चेहरे का सुनहरी-प्रेम का चरम मल्ल लग रहा था। मुझे पहुँचा हुआ दोन का वे दोनों उठ खड़े हुए। मेरी ओर देखते हुए बात का प्रारम्भ श्री ताटके ने किया -

“मैं आपका पूर्ण परिचय इन्हें दे चुका हूँ। ये हैं भूमिगत क्रान्तिकारी श्री वा. वि. केशकर।”

“केशकर नाम ही मेरे लिए पर्याप्त है। इनके विषय में जो कुछ मेरा अध्ययन है, उसके अनुसार ये भी लिए प्रत्यक्ष हैं।”

शायद श्री केशकर को मेरे द्वारा की गई अपनी प्रशंसा (यिकार) नहीं थी और उन्होंने बातचीत को सिद्धांशिका इसी ताल को मोड़ दिया। उनकी और श्री ताटके की बातचीत से मुझे यह जानकारी मिली

जिसे श्री केशव की गिरजाती के लिए ब्रिटिश-हुकूमत ने वारंट जारी कर रखा था और वे भूमिगत रह कर ब्रिटिश-विरोधी-आन्दोलन का संचालन गोपनीय रूप से कर रहे थे।

प्रथम परिचय है श्री श्री केशव के साथ मेरी व्यक्तिगत। उपरान्त होगई और वे मेरे यहाँ आने-जाने लगे और हम लोग काफी समय साथ-साथ बिताने लगे। उनका एक ही आग्रह रहता - आप जो कुछ कविताएँ सुनाइए। मेरे पास उनकी पद्यकी कविताओं की कमी नहीं थी। उन्होंने मेरी लगभग सभी कविताएँ सुन प्रशंसा की। उनके विषय में हम लोगों ने चर्चा कर रखा था कि आगंधु संस्कृत के विद्वान हैं और गुजरात में वे एक संस्कृत विद्यालय की स्थापना करना चाहते हैं। कभी-कभी हम लोग विद्यालय के लिए किराए के भवन की तलाश को गटक भी करते रहते थे। कुछ दिन हम लोगों ने साथ रह कर श्री केशव दिल्ली चले गए।

स्थापित भारत में डॉ० केशव ने एक मंत्रि-मंडल में उच्च स्थान और पं० गुरु का विश्वास प्राप्त किया। कई बार मुझे दिल्ली बुलाने के लिए उनके आग्रहपूर्ण पत्र प्राप्त हुए, लेकिन मैं उनके अनुरोध को टाल गया। मुझे भाव हो गया था कि मेरी सेवाओं का वे पुरस्कार देना चाहते थे।

अभी तक मेरी कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थीं, लेकिन कोई संचालन प्रकाशित नहीं हुआ था। मैं मेरे काव्य-संग्रह के प्रकाशन की भी एक स्मृति बन गई।

30 जनवरी 1967 को भारत की आजादी के महीस महत्वा गांधी जीने के शिकार हो गए। हमारे देश में शोक की लहर फैल गई। महात्मा गांधी के महत्व के साहित्य में अमरत्व प्रदान करने के उद्देश्य से मेरे मन में यह विचार उपनष्ट हुआ कि उनकी स्मृति में हिन्दी की उत्कृष्ट कविताओं के एक स्मृति-ग्रन्थ का संपादन किया जाय। नगर के साहित्य-सेवियों ने यह कार्य करने लिए तीन व्यक्तियों की एक समिति गठित कर दी। प्रकाशित किए जाने वाले ग्रन्थ का सम्पादन बापू-स्मृति-ग्रन्थ, निश्चित किया गया और शक्ति प्रचार-संपादक का दायित्व मुझे दिया गया। ग्रन्थ के प्रबन्ध-संपादकों में श्री नारायण श्यामराव चिताम्बर और श्री रामप्रकाश मलहोत्रा (अब सर्जिस) मुझे योग्य और अनुभवी व्यक्तियों के रूप में मिले। काम अच्छा-चल निकला। मेरे मित्र श्री श्यामरायण विजयवर्गीय ने अपने भवन का एक बड़ा ग्रन्थ के कार्यालय के

लिए हमें दे दिया। मरहम के सभी प्रमुख और होमहा कविओं की रचनाएं हमें प्राप्त हो गईं। जब कापू-स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित हुआ तो उसकी सर्वत्र प्रशंसा हुई। गांधीजी से सम्बन्धित कई अन्य ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए थे, लेकिन हम लोगों ने ग्रन्थ को विशेष रूप से समझा गया। उसकी प्रमुख विशेषता यह थी कि उसके पहले भाग में उन कविताओं को संग्रहित किया गया था जो गांधीजी के निधन से पूर्व उनकी प्रशंसा में लिखी गई थीं। ग्रन्थ के दूसरे भाग में गांधीजी के निधन के पश्चात् सुझावों के रूप में लिखी गई कविताएं संकलित थीं।

पाँच रुपए के गांधी-चार आने में

संपादन के क्षेत्र में अनुभवहीन होते हुए भी हमने 'कापू-स्मृति-ग्रन्थ' के रूप में एक सख्त ग्रन्थ देश को दिया था, लेकिन व्यावसायिक क्षेत्र में हम लोग उसका यथेष्ट प्रचार-प्रसार नहीं कर सके। परिणाम यह हुआ कि आर्थिक दृष्टि से हम लोग घाटे में उतर गए। हम लोग जो अपने पास से लगा सकते थे, वह सब कुछ लगा दिया और कुछ व्यय हमने अपने मित्रों और अनुयायियों से उधार भी लिया। व्यावसायिक अनुभवहीनता के कारण हम लोगों की अपनी पूँजी भी खूब गई और मित्रों को पैसा भी हम लोग नहीं भौंटा सके। इतना हमने अवश्य किया कि जितने मित्रों से जितना पैसा उधार लिया था, उतने मूल्य की पुस्तकें उन्हें दे दीं। पाँच सौ रुपए हमने श्री गोपाल हरिय एडोकाट से लिए थे। उन्हें भी हमने रुपए भौंटाने के लिए पर पुस्तकें दी थीं। पता नहीं, वे पुस्तकें बेच सके या नहीं। एक अन्य अनुयायिक से भी पाँच सौ रुपए लिए थे। उनका कितना बड़ा रोचक वक्तव्य था -

'कापू-स्मृति-ग्रन्थ' के प्रवर्ण्य संपादक श्री रामप्रकाश मल्ल होत्रा के बड़े भाई बानेदार थे। वे स्वभाव से बड़े उदार और महत्समीक्षक थे। अतः समय के गुना जिले के चन्देरी स्थान पर बानेदार थे। एक दिन वे गुना आए थे हम लोग उनके पास पहुँच गए और उनसे मिलन किया -

“भाई साहब, हम लोग पूज्य महात्मा गांधी पर एक स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं। पैसों की कमी पड़ गई है। यदि आप हमें पाँच सौ रुपए उधार दें तो बड़ी कृपा होगी।”

वे मुस्कराए, जब मैं हस डाला और मैं-जैसे रुपए के पाँच नोट निकाल कर बोले -

“ये रुपए मैं किस हूँ?”

उनका यह प्रश्न सुन कर मैंने संक्षेपकाश जी से कहा -

“ये सपना आप को लीजिए।”

मेरा यह कथन सुन कर जानेदार साहब फिर मुस्कराए और बोले -

“ये सपना मैं इसे नहीं दूंगा। यह मेरा स्वप्न नहीं है। यह सपना तो लीजिएगा नहीं, कह देंगे कि जेब-वर्च में काम आगए।”

जानेदार साहब को यह कथन सुन कर मैंने उनके हाथ में वे सपना ले लिए और शायद भरी मुस्कराहट के साथ उनसे कहा -

“भई साहब, आप मुझे भी अपना स्वप्न भाई समझ लीजिए।”

— मेरे कथन में निहित आशय को समझ कर उन्होंने एक ठहका लगाया और बोले -

“मैं समझ गया, आप यह पैसा न लीजने के लिए मेरे भाई बनना चाहते हैं। लेकिन आप यह सपना मत जाइए कि मैं जानेदार हूँ।”

उनके इस कथन का उत्तर दिया हमारे वरिष्ठ साजी नानाभैया (नारायण शामराव चिताम्बर) ने। वे बोले -

“हाँ-हाँ, इस भाग यह पैसा अपने जानेदार भैया से ले रहे हैं।”

उन्होंने जग, पैसे लिए, पाया-पिया और हम भाग-चला दिए।

हम से-से किसी को भी फुल्ले बचाना नहीं चाहता था। इस भाग अपने जानेदार भैया के पैसे सचमुच ही नहीं लीया हूँ। एक दिन चन्देरी जाकर उनके पास ‘बालू स्मृति-ग्रन्थ’ की एक ही प्रतियाँ यह कह कर खड़े आए कि इन्हें बचकर आप अपना पैसा निकाल लीजिए। उन्होंने कोई आपत्ति नहीं की।

कुछ दिनों पश्चात् चन्देरी से जानेदार साहब का स्थानान्तर हो गया। चलते समय उन्होंने ग्रन्थ की एक ही प्रतियों का बहुवचन वरिष्ठों को रूप में अपने अर्दली के हवाले कर दिया। उसे कुछ नकद पुरस्कार भी उन्होंने दिया। उस अर्दली के सामने यह समस्या थी कि उन फुल्ले को वह फिर प्रकाश दें। उसने एक फुल्ले में काम लिया। अपने नगर में लगने वाले साप्ताहिक बाजार में उसने ग्रन्थ की प्रतियों को ठेर एक चादर फैला कर लगा दिए और जोड़-जोड़ से आवरण लगाने लगा -

“पॉन्ड रुपए के गोंधी-सिर्फ-चारू जाने मैं।”

बैचने के दंग ने लोगों को आकर्षित किया। लोगों की फुल्ले पसन्द आई और शायद पूरा ठेर साफ हो गया। अपनी गाँठ में प्रच्छीन रुपए बॉन्ड का वह अर्दली धर-बन्ना गया। निश्चित ही वह जानेदार साहब को बहुत दिनों तक दुकाई देना रखेगा।

जासमाजी में जो काम उस अर्दली ने लिया, वही काम आगे-वाले कर
परिष्कारित हो भजबूर होकर मुझे जानबूझ कर करना पड़ा।
यह प्रसंग मैं आगे ने पृष्ठों में लिखूँगा।

जैसा कि मैं लिख चुका हूँ कि 'वापू-सहो-ग्रन्थ' ले लिए भात
ने सभी प्रतीक्षित कवियों की रचनाएँ मेरे पास आई थीं। यह
आवश्यक था कि उनमें एक रचना मेरी भी संकलित हो। मैं
हर दो-तीन दिन के अंतर से गांधीजी पर एक नई रचना लिख
लेता था। उस प्रकार मैंने गांधीजी पर इकठ्ठा कविताएँ लिख लीं।
उन में ही एक रचना मेरे साजियों ने ग्रन्थ ले लिए - पुनर्जी।
ग्रन्थ ने अन्त में दी गई वह रचना सभी को पसन्द आई। मैं
उस कविता के केवल दो पद यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ -

“स्वर्गवासियों! स्वागत के हित
सावधान हो जाओ।
पवन-पंथ में पलक-पाँवड़े
आपने पुनर्जी दिखवाओ।

प्यारी का भंडारा आज आता है स्वर्ग तुम्हारे,
देवी! आज भगवान् तुम भी उसकी जाय के तारे।
हुई प्रतीक्षा सफल तुम्हारी, यह कुछ दिन काया है,
आज तुम्हारा पुण्य-कल्प-तरे पवन फल आया है।

मानव तो होता है परतम
गाओ, मीद मनाओ।

स्वर्गवासियों! स्वागत के हित
सावधान हो जाओ।

देवराज! करो चिन्तित हो तुम, इन्द्रासन न चिनेगा,
यह प्यासी, त्रिभुवन का वैभव तृण के सदृश गिनेगा।
यह तो राज्य कौटला आया, स्वर्ग नहीं आभीषाणी,
अर्द्धनग्न रह स्वयं, कोटि तन टंकने का अभ्यासी।

सिंहासन पर नहीं, शी

दृढासन पर बैठाओ।

स्वर्गवासियों! स्वागत के हित

सावधान हो जाओ। ११

जिन दिनों 'बापू-स्मृति-ग्रन्थ' का प्रकाशन हुआ, उन्ही दिनों 'मुक्ति-गान' और 'स्मृति-पूजा' नाम से तेरे दो काव्य-संकलनों का भी प्रकाशन हुआ। मुक्ति-गान में तेरी वे कविताएँ संकलित थीं जो मैंने आज़ादी के संघर्ष-काल में लिखी थीं। 'स्मृति-पूजा' में वे कविताएँ संग्रहीत थीं जो मैंने अन्तर्गत गांधी पर लिखी थीं। (६६ पृष्ठा) में प्रकाशन ने प्रकाश पर चल पड़ा।

काव्य-तीर्थाटन

'बापू-स्मृति-ग्रन्थ' में जिन कवियों की रचनाएँ संकलित थीं, उनमें से कुछ को उसकी प्रतियाँ मैंने व्यक्तिगत रूप से देने का निश्चय किया। एक सुयोग भी मिल गया। रीवा के शासकीय महाविद्यालय में आयोजित कवि-सम्मेलन में मैं आमंत्रित हुआ। उत्तरप्रदेश के श्री-कृष्णकुमार द्विवेदी और विन्ध्यप्रदेश के श्री लाल भावनप्रताप सिंह 'अग्नेय' से परिचय स्थापित हुआ। हम तीनों ही काव्य-तीर्थाटन के लिए निकल पड़े। रीवा से इन्नाहाबाद निकट था। हम लोग पहले वहीं पहुँचे।

इन्नाहाबाद में डॉ० हरिवंशराय वच्चन से मिल कर तबियत खुश हो गई। हम लोगों से वे बड़ी आत्मीयता से सम्बन्ध मिले। यद्यपि उस समय वे अपने कुष्ठ में हमानों के साथ बैठे हुए थे, तथापि हमें समय हमारे गमलों के लिए उन्होंने हमें अपना एक गीत भी सुनाया। वच्चनजी से आगे भी मुन्नाकातें होती रहीं। उनकी शिष्टता और सज्जनता की धार और आदर गहरी होती गई।

भुईया महादेवी कर्म ने भी मिलने के लिए हमें समय दिया। उनके बौद्ध के कमरे में मैं सरस्वती की एक मध्य प्रतिमा आर्पित की। अपने कार्यक्रम में वे लोकतांत्रिक प्रति और विशेष रूप से निरालाजी के प्रति प्रकाशकों की शोषण-व्यक्ति की शिकायत करती रहीं।

भुईया सुमित्रानन्दन पन्त ने पहले तो मिलने में कुछ आनाकानी की, लेकिन जब वे मिले तो बड़ी सहृदयता से सम्बन्ध मिले। मुझे उस समय क्या पता था कि हम लोगों ने महाकाव्य एक साथ ही प्रकाशित करेंगे। आगे चल कर जब मेरा 'सरदा भगतासिंह' महाकाव्य प्रकाशित हुआ, उसी समय पन्तजी का 'लोकचरित्र' महाकाव्य प्रकाशित हुआ। संयोग की बात है कि दोनों महाकाव्यों का परिणामक - सरदा भगतासिंह और महात्मा गांधी भी समकालीन थे।

यह भी विभिन्न संयोग था कि इन दोनों महाकाव्यों की समीक्षाएं साप्ताहिक चार्म युग 7 के एक ही अंक में दायी थीं।

हम लोगों की खबर है रत्नक भेंट महाकाव्य सूर्यकान्त निपाही निराला, के साथ हुई। यद्यपि उस समय उनकी मानसिक स्थिति अच्छी नहीं थी, फिर भी वे हम लोगों में इस तरह सिधे, जैसे वे पूर्ण स्वयं हैं। जिस समय हम लोग उनके यहाँ पहुँचे, उस समय निराला जी के का कोई भक्त वहाँ बैठा था और निराला जी लुंगी लपेटे हुए कमरे में खूब हँस रहे थे, और पूजन से बातें कर रहे थे। हम लोगों ने अपना-अपना परिचय निराला जी को दिया। हम हैं परिचय प्राप्त करके निराला जी वहाँ पहले से ही उपस्थित पूजन की ओर देखा और वे उठ कर चले गए। निराला जी ने मुझ से प्रश्न किया -

“कौन किस तरह की कविता लिखते हैं?”

“वीर रत्न की।” मेरा संक्षिप्त संक्षिप्त उत्तर था।

“अच्छा कोई कविता सुनाओ।”

— मैं संकोच में पड़ गया कि मैं कौन सी कविता सुनाऊँ। मुझे भय भी लाग रहा था कि पता नहीं मेरी कविता निराला जी को पसन्द आती है या नहीं। बड़ा साहस करके मैंने उन्हें एक कविता सुनाई 50 में शिव का संहार लिए हैं। यह कविता भारत की आजादी मिशन के पूर्व लिखी गई थी और उसने जय फिरोजी सत्ताधारियों से कहा गया था कि शंकर जी का विनाश-अज्ञ मुझे मिला गया है और अब हम लोगों की खैर खैर भारत से भाग जाने में ली है। कविता को प्रथम पद था प्रकाश था -

मेरा मार्ग न रोको, मेरे इस रक्तिम पथ से हट जाओ,
मेरी इन झुली लपटों को अन्यायी तुम प्यार से चढ़ाओ।
महाकाल हूँ मैं कराल, मैं साँसों में अंगार लिए हूँ।
मैं शिव का संहार लिए हूँ।”

यह मेरा ही भाव था कि रचना निराला जी को पसन्द आई। मेरे सान्निध्य में भी एक एक गीत सुनाया। हम लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि हमारे आगमन के पश्चात् जो पूजन उठ कर चले गए थे, वे फिर आए और शंकर उनके हाथों में मिठाई को एक बहुत बड़ा दोना था, जिसे उन्होंने निराला जी के हाथों में रख दिया। निराला जी ने

उस पैंनेर को लोभाने का निर्देश मुझे ही दिया। अब मैंने वह पैंनेर लोभा तो उतारें लगभग डेढ़ किमी गाम जलने बियाँ थीं। जिसे भी का आदेश हुआ -

“आप लोग जलने बियाँ लाइए ॥”

मैंने निवेदन किया -

“आप भी हमारा साथ देने की कृपा करें ॥”

“नहीं, मैं नाशता नहीं करता। यह आप लोगों के लिए ही है ॥”

उन्का आदेशात्मक उत्तर था। मैंने फिर कहा -

“हम लोग शर्म से अपने लिए आड़ा सा भाग भी लेंगे ॥ यह तो बहुत आदेश है ॥”

इस बात निराला भी ने हलका भगाया झुकोले -

“इतनी जलने बियाँ तो कीर रात का एक ही कापी ला सकता है। अगर आप इतनी जलने बियाँ नहीं ला सकते तो कुत्तों को लाने का दम क्यों भरते हैं ॥”

हम लोगों ने निराला भी के परिहास में सहयोग दिया और तीनों ने मिल कर जलने बियाँ लाफ कर लीं।

इलाहाबाद से हम लोग लावनऊ पहुँचे ॥ श्री गिरिजाकुमार भाबुर आदिनों वहाँ आकाशवाणी-केंद्र के संचालक थे। मुझे भी वे अपना घोंटा भाई ही मानते थे। उन्होंने बड़ा अपनापन दिया।

लावनऊ में ही संयोग से महाकवि रामधारी सिंह ‘दिनकर’ से भेंट हो गई। लावनऊ विश्व-विद्यालय द्वारा आयोजित कवि-सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए वे आमंत्रित थे। उनकी कृपा से हम लोगों को विश्व-विद्यालय का दीक्षान्त-समारोह भी देखने का भिन्न गया। अंत दीक्षान्त-समारोह को श्रीमती सरोजिनी नायडू ने संबोधित किया था। यह आश्चर्य तो दिनकर जी से निरन्तर भिन्न होती रही।

मार्गदर्शन एक महीना का

खनाम पान्य राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन को मैंने नहीं जानता। यह मेरा तो भाग्य था कि मुझे कहीं वहाँ उन्हें भेंट के अवसर मिले और महाकाव्य लेखन की प्रेरणा मुझे उन्हीं से मिली। यह घटना सन् १९५७ की होगी। उस समय मैं ग्वालियर जिले के डबरा नामक स्थान पर शिक्षा विभाग में पदासीन था। मध्यमार्ह-माध्यमिक-शिक्षा-मंडल का हृदय होने के साथ ही मैं मंडल की हिन्दी-समिति का सदस्य

और हिन्दी को बर्हन्म विज्ञान श्री गुरुप्रसाद जी टण्डन का
सहयोगी था। उनके पिता श्री गुरुप्रसाद जी टण्डन अपने
पुत्र से मिलने बहुत गवानिया पहुँचते रहते थे। एक बार
गुरुप्रसाद जी टण्डन ने मेरी भेंट अपने पूज्य पिता जी से कराई।
उनके घर पर ही मैं बहुत देर तक उनके साथ बैठा। उन्होंने
मेरी राष्ट्रीय कविताएँ सुनीं और मेरे कुछ प्रकाशित संकलन भी
देखे। मेरे एक काव्य-संकलन 'कवि और सैनिक' की भूमिका श्री
गुरुप्रसाद टण्डन ने लिखी थी। वह काव्य-संकलन पुष्पात्मक
शैली में लिखा गया था। पूज्य गुरुप्रसाद जी टण्डन को यह
संकलन बहुत पान्द आया और उनकी शैली को देख कर एक
विचार उन्होंने मेरे सामने रख दिया -

"काव्य के क्षेत्र में आप बहुत मिल-जुलते हैं और आपकी कई
कृतियाँ प्रकाशित भी हो चुकी हैं। मेरा तो सुभाव है कि जब आप
कोई महाकाव्य लिखने का प्रयत्न कीजिए।"

रोजर्वि का यह प्रस्ताव मुझे बहुत अच्छा लगा, लेकिन सहज संकोच
वश मैंने कहा -

"पूज्यवर! आपने मुझे इस योग्य समझा, इसी में अपना ही योग्य-
मानता हूँ, लेकिन मैं आत्म-विश्वास नहीं जुटा पा रहा कि मैं महाकाव्य
लिख सकूँगा।"

उनका उत्तर था -

"आपकी कृति 'कवि और सैनिक' मुझको विश्वास दिलाती है कि आप
अवश्य ही अच्छा महाकाव्य लिख सकेंगे। इस दिशा में आप अवश्य
प्रयत्न कीजिए।"

उनके इस वाक्य में मैं और आत्मिक उत्साहित हुआ और बात को
आगे बढ़ाने का उद्देश्य ही मैंने निवेदन किया -

"जब आपने मुझे महाकाव्य लिखने की प्रेरणा दी है तो इतनी
कृपा और कीजिए कि महाकाव्य लेखन के लिए कुछ पात्रों को नाम भी
मुझे बताइए।"

बिना कुछ सोचे हुए उन्होंने उत्तर दिया -

"पौराणिक कथाओं पर तो कई महाकाव्य लिखे जा चुके हैं और

राष्ट्रीय-चेतना का कोई प्रगतिशील महाकाव्य लिखिए और शत्रु
लिए मैं शहीद भगतसिंह को अनित्य पात्र मानता हूँ।"

राजर्षि ने बहुत अच्छा विषय बताया था। प्रान्तिकारियों ने
शत्रु मेरे मन में घरने से ही अनुत्पन्न-भावना थी। भगतसिंह का
नाम सुनते ही मैं कल्पना के छोड़े दीड़ने लगता। मैं सोचने लगा
कि शहीद भगतसिंह पर महाकाव्य लिखते ही मेरी गणना हिन्दी के
महाकवियों में होने लगेगी और जगह-जगह मुझे बुलाया जाएगा।
जाने कब तक मैं हवाई किले बनाता रहता कि राजर्षि का स्वर
मुझे फिर सुनाई दिया -

"आप जानते हैं कि भगतसिंह देश की आजादी के लिए
शहीद हुआ है और शहीदों पर तो हमारे देश में नहीं के बराबर
लिखा गया है। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि जब है हिन्दी काव्य
का प्रारम्भ हुआ है, तब से यह क्षेत्र अप्रुत और उपेक्षित रहा
है। यदि आप उस क्षेत्र में उतर लें तो हिन्दी साहित्य के
एक बहुत बड़े आभाव की पूर्ति होकर लगेगी।"

मैं स्वयं को इस योग्य नहीं समझ रहा था कि इस विषय पर
राजर्षि ने साथ-चर्चा कर लें, फिर भी बात चलाते न उद्देश्य से
मैंने कहा -

"हिन्दी काव्य का उद्भव तो वीर-गाथा काव्य से हुआ है और उन
दिनों तो वीर पुरुषों पर बहुत कुछ लिखा गया है, कि इस क्षेत्र
को आप अप्रुत और उपेक्षित कि तरह कह रहे हैं?"

उत्तर था -

"मेरा कथन यह है कि उन दिनों वीर पुरुषों पर तो काव्य-रचनाएँ
हुई हैं, पर शहीदों पर नहीं हुई। उन युग के कवियों पर भ्रष्टा
सुबह हुआ कि मैं इतना अवश्य कहना चाहूँगा कि वे लोग
अपनी आपसीविका कहाने तथा पुरस्कारों के प्रलोभन से
अपने आभूषणों पर नज़रों पर काव्य और महाकाव्य की रचना
करते थे, पर उन राजाओं की सेना में होने वाले शहीद-सैनिकों
पर कोई काव्य-रचना नहीं होती थी। शत्रु यह स्पष्ट है कि

उस समय भी कविता बोलें और पुरस्कार में नाम जुड़ी हुई थी
और शहीदों को नाम-लेना कोई नहीं था। क्या आप इसे हिन्दी-
साहित्य में शहीद-काव्य को अमान नहीं मानते ?”

मैं उसकी इस बात से सहमत होने को लिए विवश था। अपने
कमन को समाप्त करते हुए उन्होंने कहा -

“हिन्दी के लेखकों और कवियों का यह कर्तव्य हो जाता है कि
वे उन लोगों पर कुछ लिखें जो लोग दायित्व की ओर से
आते हैं। जिन लोगों ने अपने घरों का लोग काके और अपने
आत्मीय-पत्नों की संकटों की सहायता देना हम लोगों की कर्तव्य
और नारीय दायता को जीवन में मुक्त किया, क्या उन लोगों
पर लिखकर हम उनके प्रति कुछ कृतज्ञता प्रकट नहीं कर सकते ?
मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि यदि हमारे देश में शहीदों के दायित्व
का सम्मान नहीं किया तो हमें इस कृतज्ञता को कुत्सरित
मुग़लने पड़ सकते हैं।”

हम लोगों की बात और भी आगे बढ़ सकती थी, लेकिन उसी समय
विकटोरिया हॉल (अब महारानी जयश्रीबाई महाविकालय) के कुछ आचार्य
गण राजर्षि से निजाम नहीं उपासित हुए। विदा लेते-ते उद्देश्य में
मैंने कहा -

“आपने आज मुझसे जो विश-दर्शन दिया है, उसके लिए मैं
आपको प्रति आभारी हूँ। मैं प्रयत्न करूँगा कि पूरी लोकनी शहीदों
की प्रति नत-मस्तक हो। मैं इसे तो अपना आभार माने ही
आता हूँ कि आपका आशीर्वाद मेरे साथ रहेगा।”

तृतीय संस्करणः महाकाव्य-लेखन

महाकवि की भूमिका

शास्त्र कीय-विद्यया-महाविद्यालय उज्जैन के वार्षिकोत्सव पर हिन्दी के एक नाटक 'महाकवि माप्य' का मंचन किया जाने लगा था। उस समय में इस महाविद्यालय के आचार्य की पद पर पदोन्नत होकर पहुँचा था। यह सन् १९६१ की बात है। नाटक के लिए पात्रों का चयन होना था। महाविद्यालयीन सांस्कृतिक गतिविधियों का प्रभावी होने के नाते यह मेरा दायित्व था कि नाटक सटीक हो और अपना मंचन सम्पन्न हो। आगे बढने के पूर्व उस नाटक की कथावस्तु का संक्षिप्त परिचय यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ -

नाटक का 'महाकवि माप्य'। उसके जीवन का नाम भुक्तो बाद नहीं रहा है। नाटक के नायक भी संस्कृत भाषा के महाकवि माप्य। उनकी पत्नी का नाम सुमेधा था, जिन्हें लोग माता सुमेधा के नाम से पुकारते थे। अपनी उदारता और दानशीलता के कारण महाकवि माप्य बिलकुल निर्धन होगा। उन्हें यह स्थिति अच्छी नहीं लगी कि शायद गण उनके दरवाजे से ताली हटाय जाएँ। परिस्थितियों से निवृत्त होकर महाकवि माप्य और माता सुमेधा को अपने नगर का परित्राग करना पड़ा। धूमते-धूमते वे राज्य भोज की चारा नगरी में आ पहुँचे। राज्य भोज सुकवियों का आकर्षण और उन्हें बड़े-बड़े पुरस्कार देने के लिए तैयार है।

महाकवि माप्य अपनी पत्नी सुमेधा के साथ चारा नगरी के बाहर किसी स्थान पर रुक कर पूँजी से अपनी गुजर करने लगे, जो वे अपने साथ ले गए थे। एक बार राज्य भोज ने एक विशाल कवि-दरबार का आयोजन किया। यह प्रचारित कर दिया गया कि वहाँ तो सभी कवियों पर पुरस्कार दिए जाएंगे, पर सर्वोत्कृष्ट रचना पर सर्वोच्च पुरस्कार दिया जायगा। महाकवि के मन में यह इच्छा जाग्रत हुई कि वह पुरस्कार जीत कर कुछ अपनी स्थिति

मुन्धारी जाय। उन्होंने राजा के दरबार में जाने का विचार
इस कारण छोड़ दिया क्योंकि वे अपनी विपत्तिवाला
मे किसीकी दया और सहानुभूति के पात्र नहीं
बनना चाहते थे। उन्होंने 'पुनर्' शीर्षक से एक
रचना अपनी पत्नी को दे दी और कहा कि राजा के
दरबार में अपने नाम से एक शिकायत पत्र बनाना।

राजा भोज के दरबार में जब कविता-पाठ हुआ तो
माता कुम्भिका की रचना सुनकर वह हँस गई और उन्हें तर्जनी
पुरकार दिया गया। कविता के भावों और शैली को देखते
हुए काव्य-मर्मज्ञ नरेश भोज को यह सुनने के लिए विश
होना पड़ा कि कहीं यह कविता महाकवि माघ की हो नहीं
है। अपने संदेह की परीक्षा लेने के लिए वे सामान्य राजस्व
के वेश में माता कुम्भिका के पीछे-पीछे चल कर उसे ज्ञान
पर पहुँच गए, जहाँ महाकवि माघ ठहरे हुए थे। एक नागरीक
की भौति राजा भोज ने महाकवि माघ से बातचीत की।
दोनों ही एक-दूसरे से विपरीत नहीं थे। राजा भोज ने महाकवि
माघ से निवेदन किया कि आप मेरे राज्य में स्थायी रूप से
निवास कर मुझे सेवा करने का अवसर दें। महाकवि माघ
ने विनम्रता पूर्वक उनके आग्रह को धन्यते हुए कह दिया
कि इस समय मैं एक महत्वपूर्ण महाकाव्य की रचना में लगे
हुआ हूँ और इस कार्य के लिए मुझे ज्ञान-ज्ञान को मुक्त
करना पड़ेगा। उन्होंने आश्वासन दिया कि महाकाव्य का
लेखन पूर्ण हो जाने पर मैं आपके यहाँ आऊँगा। महाकवि
माघ और कुम्भिका के पारा नगीचे होड़ का पत्र
दिए।

किसी अज्ञात ज्ञान पर रह कर महाकवि माघ ने
~~ने~~ अपने महाकाव्य की रचना तो पूर्ण की लेकिन

६१

जीवन के काहीरी दिन उन्हें अत्यन्त विपन्नावस्था में गुजारने पड़े और उसी विपन्नावस्था में पागलों की भाँति प्रत्याप करते हुए अपनी पत्नी को बेसहारा छोड़कर वे इस दुनिया से प्रयाण कर गए।

जोता की में अन्तर्लिखित चुका हूँ कि गटक के पात्रों को चयन करने और उनके निर्देशन को वापित्व मुझ पर था। अन्तः पात्रों के चयन में तो कोई कठिनाई नहीं हुई लेकिन महाकाव्य की भूमिका का निर्वह करने के लिए योग्य पात्र नहीं मिला। कई पात्रों को आजमाया गया, पर आखिरकी काहीरी पर कोई बरा नहीं उतरा। आखिर महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ० टी० वी० नायक ने मुझ से कहा -

“महाकाव्य की भूमिका के लिए जब कोई योग्य पात्र नहीं मिला रहा तो यह भूमिका आप स्वयं क्यों नहीं करते। आपके निर्देशन देने के लिए मैं तो मुझे लगता हूँ कि आप इस भूमिका को औरों से अच्छा निर्वह कर सकेंगे।”

डॉ० नायक की बात सुनी तो पान्दुकाई को महाकाव्य भाष्य की भूमिका का निर्वह करने के लिए मुझे स्वयं विवश होना पड़ा। माता कुमेधा की भूमिका का निर्वह मेरी एकधारा प्रीमिती जयश्री केतकर कर रही थी।

जब गटक का संचयन हुआ तो वह सभी को बहुत पसन्द आया। ‘जगत’ शीर्षक का वह गीत हिन्दी में मैंने स्वयं लिखा था। गीत अच्छा बन पड़ा था और प्रीमिती जयश्री केतकर के मधुर स्वर ने तो उसे और भी आकर्षक बना दिया। प्रीमिती के अनुप्रेष पर संचयन के बीच उस गीत का तीन बार सुना गया।

गटक के दृश्यों में मेरी पत्नी और बच्चे भी थे। मेरी पत्नी को वह दृश्य अच्छा नहीं लगा जब महाकाव्य भाष्य प्रत्याप करते हुए अपने प्राण त्यागते हैं।

महाकाव्य की भूमिका का निर्वह मैंने बखूबी किया। आगे बाद जब मैंने स्वयं महाकाव्यों का लेखन प्रारम्भ किया, तो

६२

महाकाव्य के जीवन की स्थितियाँ में जीवन के लाल जुड़ गईं।
महाकाव्य-जीवन, विपन्नता, परेशानियाँ और भ्रमण, मेरे जीवन
के अंग बन गए। उह नाटक के आलेखों के पश्चात् मैंने
एक कविता भी लिखी थी -

“वह नाटक हो चुका मंच पर
अब नाटक होता जीवन में,
वह नाटक था, या यह नाटक
होच रहा मैं अपने मन में।”

अपने जीवन की उन स्थितियों की झलक तो लेखन-क्रम में मैं
आगे दिखाऊँगा। यह निर्णय तो पाठक ही कर सकेंगे। कि
क्या मैं नाटक के हर दृश्य को निरूपित कर सका हूँ या नहीं।

महाकाव्य-जीवन का संकल्प
शहीद-माता के सामने

विनायकान्य राजर्षि मुषोत्तमदास टण्डन का वह परामर्श
मैं कार्यन्वित नहीं कर पाया था कि मुझे शहीद भगता सिंह या एक
महाकाव्य की रचना करना है। मैंने उनके परामर्श को भुलाया भी
नहीं था। शहीद या मिलने वाले साहित्य का मैं अध्ययन करता
जा रहा था और महाकाव्य जीवन के लिए अपना मानस तैयार
रहा था। उसी समय देश के जीवन में एक ऐसी घटना घटित
होगई, जिसने शहीद या महाकाव्य की रचना के लिए मुझे स्वयं
प्रेरित कर दिया। हमारे पड़ोसी देश-चीन ने सन् १९६२ में
हमारे देश या आक्रमण कर दिया। उन दिनों मैं हास्य-रचयिता के
संलग्न था। मेरी हास्य रचनाएँ बहुत खरीय और मजदित होती
थीं और कवि-सम्मेलन के मंच पर किसी भी आखिल-
भारतीय तिरके हास्य-कवि की तुलना में मैं
फीका नहीं रहता था। मेरी हास्य-रचनाएँ
शाब्दिक हैं। वे हमेशा हाजी रहेगीं।

चीन के आक्रमण ने मेरे मानस में (बलवली मचा दी।

हास्य रचनाएँ लिखकर वीरता और वनिदान की प्रेरणा देने वाली
कविताएँ लिखना मैंने प्रारम्भ कर दिया। शहीद भगतसिंह पर
महाकाव्य-महिला का प्रारम्भ करने के लिए मैं संकल्पित हुआ।
मुझे बातचीत की शहीद भगतसिंह की कहानी पसिंद है। उनका
उत्तम दर्शन करने और अपने आशीर्वाद प्राप्त करने की भावना
प्रबल हो गई। पंजाब में फीरोजपुर के निकट हुसैनीबाग
स्थित शहीद भगतसिंह की समाधी के दर्शन करने भी मुझे
अनिवार्य लगता। मैं फीरोजपुर जा पहुँचा।

जब मैं फीरोजपुर जाने की तैयारी कर रहा था तो मेरे एक
मित्र डॉ० शर्मा ने मुझे समझाया -

“सरहद के इलाके में जा रहे हो। समझ कर रहना। वहाँ के
लोग समाज के बहुत तेज होते हैं। बाह-चीबाह में दंग-फातन और
मरपीट की घटनाएँ तो वहाँ मामूली बातें समझी जाती हैं।
पाकिस्तान की सरहद पर बहते हैं, यदि ऐसा हो सजा न रावे तो
कौन काम चले?”

उन्होंने फीरोजपुर स्थित देवदामाज-महिला-महाविद्यालय
के प्राचार्य के नाम एक पत्र भी मुझे दे दिया। मैं फीरोजपुर जा
पहुँचा। महिला-महाविद्यालय के छात्रावास के बाईन महोदय ने
मुझे अपने प्राण बहराने की उदात्त दिवाई। तीन-चार दिन तक
मैं फीरोजपुर में शहीद भगतसिंह से सम्बन्धित लोगों से मिलकर
जानकारी एकत्र करता रहा। शहीद भगतसिंह के बहुत सदा कुलकीर
सिंह हैं भी मुझे बहुत उपभोगी सामग्री मिली।

मैं अपने मित्र डॉ० शर्मा के निर्देशों को पालन कर रहा था।
फीरोजपुर में मैं बहुत तरह-तरह कर रहा था। वहाँ
वहाँ मुझे किसी के व्यवसाय में कोई उद्वेग दिवाई नहीं दी। मैंने
सिखा, शर्माजी ने अपनी ही बड़ा-बड़ा काढ़ते कही थी, यहाँ तो
एक बनिया-छोटे के भाग दिवाई देते हैं जो अपने काम-धंधों
में ही लगे रहते हैं।

२३ मार्च १९६३ को हुसैनीवाला स्थित माराहिं
की हिमायी पर शहीदी-मेला लगने लगा था। फ़ौराजपुर के
लोगों को मुझे बताया था कि शहीदी मेले में दिन पूरा पंजाब
मेले के लिए उमड़ पड़ता है और वहाँ कफ़ा भीड़ छाड़ी हो जाती है।
भीड़ में मैं हमेशा ही पकड़ा रहता हूँ। मैंने सोचा कि सुबह तड़के
ही शहीदी की हिमायी के लिए निकल पड़ूँ और वहाँ पहुँचकर
कुछ लिखा-लिखना करूँ। विचार था कि माराहिं-सहजान
का लोग माराहिं की हिमायी-स्मरण पर बैठकर होकरेगा।
उस दिन सुबह मैं अपने घर के स्थान - देवराज-महिला-
महाविद्यालय से चल कर एक सड़क पर इतना दूर हो पहुँचा कि
हिमायी पर पहुँचने के लिए किसी साधक की तलाश करूँ। मैं
शहर में दो-तीन दिन हेपूम रहा था। एक रात देवराज-कॉलेज
के प्राध्यापक-मण्डल के बीच मेरा कविता-पत्र भी हो चुका था। मेरी
कविताएँ पढ़कर उन लोगों का कहना था -

“आप तो लिखने के काम में हैं। किसी बड़े अजमे में आपकी
कविताएँ फिर सुनेंगे।”

फ़ौराजपुर सेठू में भी मेरी-दर्शनी थी - “उज्जैन तो एक
शायर आया है। वह शहीद माराहिं पर कुछ लिखना चाहता है।”

मैं तड़क परपूम ही रहा था कि कि दुबले-पतले आखेड़-से
सिपजम मेरे सामने आए और लफ़फ़ाते को मुझ से बोले -

“सुना है, आप उज्जैन से तशरीफ़ लाए हैं।”

“जी हाँ।” मैंने उत्तर दिया।

“सुना है, आप शहीद-आज़म माराहिं पर कुछ लिखना
चाहते हैं।”

“विचार तो है।” मेरा उत्तर था।

“अच्छ है, यदि आप अतिविचार छोड़ दें।” उन्होंने लड़-सा मार
दिया। मैं चकित रह गया कि यह मला कोसी क्या कर रहा है।

—मैंने जिज्ञास की है कि उसे अपनी ओर देना और कह - ६५

“मुझे आपका मतव्य समझ में नहीं आया। बड़े बड़े की बात है कि आप भगवान् के प्रति अपने लिए मुझे रोक रहे हैं, जबकि आप को तो मुझे प्रोत्साहित करना चाहिए।”

अभी तक मैं उनके विषय में बिलकुल अनभिज्ञ था, अतः पूछा -

“क्या मैं आपका परिचय प्राप्त कर सकता हूँ?”

उत्तर मिला -

“मैं आपसे सामने खड़ा हूँ, बातचीत कर रहा हूँ। यही मेरा परिचय है। नाम-धाम जान लेंगे या नहीं? यदि भगवान् भी बता दें तो आप कैसे जान पाएंगे?”

—मैंने बात बढ़ाने की है कि पूछा -

“आप मुझे शहीद भगवान् के प्रति अपने से क्यों रोकना चाहते हैं?”

उन्होंने उत्तर दिया -

“बात यह है कि शहीद भगवान् या दूसरे धार्मिकों पर अभी तक बहुत से लोगों ने चिन्ता है। कई लोगों ने तो कुछ कदम मिला कर रोक दिया है। आप भी उस कचरे में एक मुड़ी और डाल देंगे, इससे जगत् की आप से क्या उम्मीद की जा सकती है।”

यह वे-लोक्य बात सुन कर मुझे बड़ा विचित्र सा लगा। बात चालू रखने के विचार में मैंने उससे पूछा -

“आप ने यह कैसे जान लिया कि जो कुछ मैं लिखूंगा, वह भी कुछ-कुछ ही होगा, जबकि आप तो बहुत के विषय में कुछ भी नहीं जानते।”

उनका उत्तर था -

“आप जैसे बहुत से लोगों के विषय में मैं बहुत कुछ जानता हूँ। यहाँ कई लेखक आते हैं और चले जाते हैं। अपना बड़ा प्रचार करते हैं - बड़ा प्रदर्शन करते हैं - बड़ी-बड़ी प्रतिभाएं

करते हैं - जब वह-वही प्राप्त करते हैं और जब उनका
निष्ठा हुआ सामने आता है तो राजनीतिक-गोपनीयता
आधीक कुछ नहीं निकलता ।"

- मैंने कहा -

" ठीक है, पर मैं दाखल तो नहीं हूँ कि आप भी दात
मोम का भात सिंह पर लिखने का दिक्का खोजें। अब मैं
हां ही भी हूँ तो अवश्य लिखूंगा ।"

उत्तेजित होकर उन्होंने कहा -

" यदि आप का निष्ठा हुआ ठीक नहीं निकलता तो मैं आपकी
गोली मार दूंगा ।"

- मैं सकते में आ गया इस अंतर्गत धुनकर । मैं देखता रहा
जया उर ध्याती की ओर जो मुझे गोली से मार देने की
धातवी दे रहा था । मैंने सोचा, यह गोली मार देने की बात
उस समय के लिए कह रहा है जब यह प्रेष निष्ठा हुआ पढ़ने का,
जो अभी इसे खेड़ने में क्या हिसाब है । मर्म जानने के लिए मैंने
उन्हें की उकसाया -

" क्या मैं यह जान सकता हूँ कि अभी तक आप कितने लोगों
को गोली मार चुके हैं ? क्या आप ने किसी मुख्तियारी को गोली से
उड़ाया है ? क्या आप ने किसी गद्दा को गोली मारी है ? क्या
आप ने किसी फिल्म-जोइसुर को गोली का निशाना बनाया है जो
क्रान्तिकारियों पर जल-जलून फिल्मों बना देते हैं ? कि आप (क)
कवि को ही गोली का निशाना क्यों बनाया चाहते हैं जो तब शायद
से यही पर कुछ लिखना चाहता है ?"

इस बार उनका उत्तर था -

" भई ! कुछ न मानना । जो लोग पाते हैं वे तो पहले से-
ही मरे हुए न बरकर हैं । आप शायर हैं । आपके लिखने की
कोलने का लोग पर कहर पड़ता है । यदि आप ही क्रान्तिकारियों
के विषय में जल्द बातें लिखने लगेंगे तो उनके प्रति लोगों में
प्रकाश का होती चली जायगी । मैं कि भी कहता हूँ कि

आर्थिकारियों पर लिखना साँपों से जेम्सने के बराबर है। आर्थिकारी
 सब कुछ वर्णित कर सकता है, पर नए यह काम वर्णित नहीं
 कर सकता कि कोई व्यक्ति उसके सिद्धान्तों की हत्या करे।
 इसीलिए मैंने आप से यह निवेदन किया कि आप लिखने
 का हाथ धोड़ें। पर जब आप लिखना ही चाहते हैं तो लिखें
 और शौक से लिखें, लेकिन एक बात याद रहे कि आर्थिकारियों
 पर आज-काल लिखने का बुराका मोली भी हो सकती
 है और उनके प्राँत बप्तासी लिखने का नहीजा शाही मेहसानी
 भी हो सकती है।"

बात बहुत खरी कर दी गई थी। मेरे लिए चुनौती भी थी।
 मैं उस चुनौती से विमूल नहीं हुआ।

गरीबी-जेल

उन अज्ञात आर्थिकारियों से बड़ी चकर मैं हुसैनीवाना पहुँच
 गया। वहाँ शहीद भगत सिंह, बुलदेव की राजभुक्त की समाधी के
 दर्शन किए। ~~समाधी-स्थल~~ समाधी-स्थल की सिटी कंपनी के आगे से भगाई की
 उल्लेख की -

"मेरा यह संकल्प है कि शहीद भगत सिंह पर कृतज्ञ प्रारम्भ
 करने में अन्य शहीदों पर भी लिखने का प्रयत्न जारी रखूँगा। कोई
 भी प्रलोभन या कोई भी भय मुझे शहीदों पर लिखने से नहीं
 रोक सकेगा। मेरी अपनी प्रत्येक साँत और मेरी मेहनत का प्रत्येक
 शब्द शहीदों के लिए समर्पित रहेगा। शहीदों की यह समाधी
 प्रतीक की धृति के लिए मुझे बल प्रदान करे।"

उस समय तक तो वह समाधी अवेकित ही थी। एक चबूतरा
 पर एक कम ऊँची दीवार बनी हुई थी। उस दीवार में तीन खोंच थे।
 उन तीन खोंचों में शहीद भगत सिंह, बुलदेव की राजभुक्त की चित्र
 बने हुए थे। समाधी के कारुणात्मक नदी किनारे पाए जाने वाले
 सरकंडे बहुत पतले थे उगे हुए थे।

जैसे-जैसे दिन-बढ़ने लगा, शहीदों के नाम के लिए इतिहासीयों
 ने अपने वहाँ पहुँचने लगे। पंजाबी सरकारी, मुक्क की
 युवावस्थाओं भूमि-गाते वहाँ पहुँच रहे थे। पुराने मेदान उसी

को रेंगा-धरा को नहीं लाया लगा रहा था। जीवन क्या होता है, इसका अनुभव उस दिन मुझे वहीं हुआ।

एक बात जो कर करने योग्य थी, वह यह थी कि शहीदी-जाना दो कमरे कलम-कलम स्वार्थों पर बनाया जा रहा था। सामान्य की ओर से जाना-का-जाना कलम लिया गया था और जनता की ओर से कलम। लोगों ने मुझे बताया कि हमने तो सरकारी कार्दिकारियों से निवेदन किया था कि जाना कि (ही) होना-चाहिए, पर वे कार्दिकारी गण नहीं माने। कलम यह भी कि सरकारी-पंडाल के नीचे कोई एक मंत्री महोदय अपना भाषण दे रहे थे और केवल पचास व्यक्ती उनका भाषण सुन रहे थे, जब कि जाना के पंडाल के नीचे कीड़ों के आवाज लगाते पचास हजार व्यक्ती शहीदीजाना को आनंद भूट रहे थे। जनता के पंडाल में बड़े गरमागरम भाषण हुए। पंजाबी कवियों ने कई शहीदों पर कई जोरदार कविताएँ पढ़ीं। जाना के बाद लंगो शरमा हुआ। लंगो सभी के लिए खुला हुआ था। बहुत कम लोगों को जाना भोजन प्राप्त हो पाया। कार्दिकारी लोगों ने लंगो के मे' (ही) भोजन किया। पंजाबी मस्ती की खुशहाली को जीवन स्वल्प-उत्तर दिन मुझे वहाँ देखने को मिला।

जोबिस-भरा पाकिस्तान-प्रवेश

मेरे दिमाग में एक तमन्ना थी कि मैं उस स्थान के दर्शन करने जाऊँ शहीद भगत सिंह की। उनके साथियों ने जाना भाषांतराय के हतार प्रसिद्ध-कलम से गोलियों से भुना था। वह स्थान पाकिस्तान की सीमा के आँखों तक मे' था। आँखों तक भगत सिंह की समाधी है मगर मंगल प्रसिद्धि की दूरी पर था। पाकिस्तान की सीमा तो भगत सिंह की समाधी है ही जाग जाती थी। मैंने इस यात्रा की संभावना को कुछ लोगों से बातचीत की। उस समय तक पाकिस्तान के साथ हमारे देश का एक भी युद्ध नहीं हुआ था और आपसी

सिद्धांत में नहीं माना नहीं था। पाकिस्तान की सैन्य शक्ति
कानून के लिए पार-पत्र देना होना बहुत आवश्यक था और
यह मेरे पास था नहीं।

मौला ने मुझे बताया कि बिना पासाई के भी दोनों
देशों के लोगों में वैसागमन होता रहता है। इसके लिए आवश्यक
होता है कि एक देश के लोग दूसरे देश की सीमा-पुलिस को खुश करें।
अपनी-अपनी सीमा में दोनों देशों की पुलिस-बैकियों वाली हुई
थी। एक देश की पुलिस, दूसरे देश की पुलिस है मिली-जुली
देखी थी।

एक दिन मैंने पाकिस्तान-पुलिस के एक अधिकारी से बातचीत
की और कहा कि मैं लाहौर में वह स्थान देवना-बाहरी हूँ, जहाँ आसानी से
मैं अपने हाथियों ने अंग्रेज-पुलिस-अफसरों को मारा
था। पाकिस्तान-पुलिस का वह अधिकारी अपनी जीप में मुझे ले जाते
थे। भारत की सीमा पर पुनः खोजने के लिए राजी हो गया।
बाद वाली दो दिनों में मुझे मिला।

पाकिस्तान-पुलिस की जीप में साजकान में लाहौर का
पहुँचा। उस पुलिस-अफसर ने पुलिस-अफसरों को वह
कार्यलय मुझे दिखाया, जिसे भगत सिंह को अपने हाथियों ने
मारा था। अपने हाथियों की रक्षा के लिए चन्द्रशेखर काजदार
जिसे भारत पर खूँ के, वह भी मुझे दिखाया गया। गहरा रोए
की पूरा नक्शा मुझे दिखाया और साजकान गया। मैंने जिन
को बहुत लोभप्रधान माना कि एक शहीदी-रीति में नैतिक
हिए हैं। उन्होंने आश्चर्यजनक-बाप-नाश में नैसी जाति की
की।

लाहौर में हुसैनीवाला तक की दार्जिली-यात्रा की लगभग
पुनर्दली रही। गड़बड़ अक्सर हुई जब अहमदजीप भाते
की सीमा के पास पहुँची। जीप रोका और पुलिस-अफसर
ने मुझे कहा -

“कोविंद जगाव, आपने बाप-जाती के लिए जो पैसे
होने दिये, वे बहुत कम हैं। हमने बहुत बड़ा जोसिये उठा

40
कर आपकी पाकिस्तान की यात्रा कराई है। (वर्षों लिए) को
कुछ और पैसा कीजिए।)

मैं पूछने का कि उसकी इस बात को क्या जवाब दूँ। मैं
इतना ही कह सका -

“ दोबारा जानक ! जो हम लोगों में तय हुआ था, उसी
मैंने आप को दे दिया है। यदि आप उसी समय जवाब दे सकी
मांग करते तो मैं सोचता कि यह यात्रा मुझे काफी है या नहीं।
अब मैं आपकी कुछ नहीं दे सकता। ”

मैंने यह उत्तर सुनकर उसे फुल्लिंग-कमलान ने तेवर बदलने
कर कहा -

“ आप यह क्यों भूल रहे हैं कि यह समय आप पाकिस्तान
की सीमा में हैं और आपकी पाद पाद-जोड़ नहीं है। हमारी
सीमा में अक्सर प्रवेश के जुर्म में हमें आपकी गिरफ्तार
करके जेल में डाल सकते हैं। वहाँ तक आप जेल में
सहते रहेंगे, कोई सुनवाई नहीं होगी। ”

उस कमलान को यह वाक्य सुनकर उसे कुछ दिनों में
तब दिमाई देने लगे। सोचा, यहाँ इसे ही-पकान समझ
और देकर छुड़ी पार लेंगे। मैंने अपनी जेब में कुछ
पैसा लाया और उस कमलान ने मेरे हाथ में वह कुछ
खीन लिया। उस समय उस में छड़ी-सौ रुपयों के मोटे
पै। वैसे आपकी जेब में रखकर उसने वाली कुछ
मुझे भला दिया। मैंने बहुत चिन्ता की कि फीरोजपुर
तक जाने को लिए। फिर के मैंने मुझे लौटा दे, पर
उत्तरे मेरी एक नहीं छुती। गरीजा यह हुआ कि हुसैनीवाला
से फीरोजपुर तक लगभग करत ~~दिल्ली की तरफ~~ दिल्ली की तरफ
की यात्रा मुझे पैदा तयकारी पड़ी। जनीत यह
रही कि आपने छानने के समय पर मैंने कुछ पैसे रखे जोड़
पै। यदि यह इरादा न की होती तो मुझे पैसे

69
-किसी से उद्यान में ले के लिए विवश होना पड़ा। रेनी
नीवत नहीं आई। मुझे शहीद भगतसिंह की माताजी की
दर्शन का भी आनंद हो जाना था।

शहीद भगतसिंह की माताजी से

विचित्र और सुखद परेशानी

फैरोजापुर से ही मैंने शहीद भगतसिंह की माताजी का
पता ले लिया। मुझे बताया गया कि आनंदपुर से नवाशहर
जाने वाली रोड पर बटकाड़कला गाँव में शहीद-माता रहती
हैं। मैं आनंदपुर पहुँच गया। आनंदपुर से नवाशहर जाने
वाली एक बस भी मिल गई। उस समय शाम हो गई थी। मैंने
बस के परिचालक से कहा कि इस क्षेत्र के लिए मैं अपरिचित व्यक्ति
हूँ। मुझे शहीद भगतसिंह की माताजी के गाँव बटकाड़कला
पहुँचना है। जब वह गाँव आ जाए तो बस रोक कर आप
मुझे उतार दीजिए। उसने मुझे वहाँ उतार देने का वादा
दिया। बेजिम्मी से मैं यात्रा करने लगा।

बस आगे बढ़ती जा रही थी और अंधेरा पड़ता
जा रहा था। एक स्थान पर गाड़ी रुकवा कर परिचालक
ने मुझसे कहा - "माताजी का गाँव आ गया है, आप
उतर जाइए।" मैंने अपना सामान उतारा। मैं स्वयं नीवत
है उतर कर सड़क पर खड़ा हो गया। मुझे वहाँ धोड़
कर बस आगे बढ़ गई। मैंने सोचा था कि मुझे मुझे
जहाँ उतारा गया है, वही माताजी का गाँव होगा।
मैंने-चारों तरफ दृष्टि डेंडई पर उस स्थान के
निकट मुझे कोई गाँव दिखाई नहीं दिया। उस
समय तक काफी घना अंधकार हो चुका था

विभिन्न दिशाओं में काफी फास पर बिजली की रोशनी से
जगमगाते हुए कुछ गाँवों के होने का आभास भी मुझे हो रहा था।
मैं यह नहीं पताचान सकता था कि इन गाँवों में से माताजी का
कौन-सा गाँव है। यदि अनुमान है आगे बढ़ कर किसी गन्त
स्थान पर पहुँच जाता, तो ओहो परेशानी होती। मेरे सामान में
एक बिस्तर-बंद, एक हूटकेस और एक ब्रीफकेस था। इतना
सिमान उठा कर किसी गाँव में पहुँचना मेरे लिए असंभव था।
सड़क पर लड़ा हुआ मैं प्रतीक्षा करने लगा कि कोई
राहगीर निकले तो मैं माताजी के गाँव का ठीक पता माँसूँ
करूँ। बहुत देर तक उधर से न तो कोई राहगीर निकला
और न कोई बस। मुझे विचार देने लगा कि मैं अच्छी
खासी परेशानी में फँस गया। मुझे बतलाया गया था कि
वह दुआबा का इलाका है और वहाँ बहुत उधड़ लोग रहते हैं।
उसी इलाके में देश को कई घोर प्राणिकारी दिए हैं। मुझे
घोर-उच्छाओं का भी भय था और जंगली जानवरों का भी।
मेरे मन में विचार आया कि अपना सामान गेहूँ
के किसी खेत में धरेपों का किसी वृक्ष पर रात निकाली
जाय। यह विचार हृदय नहीं हो सका। सोचा कि कहीं रात
को नींद के मोके में वृक्ष से नीचे गिर पड़े तो महाकाव्य-
भोजन के सारे सपने टूट जाएंगे। मेरे मन में एक विचार
हृदय हो गया और वह यह कि सामान किसी खेत में धरेपों कर
पैदल-पैदल जानवरों की दिशा पर बढ़ा जाय और जो
पहला स्थान मिले, वहाँ किसी के घर पर प्रिय भौंका जाय।
मार्च का सहीना था। पंजाब के खेतों में काफी बड़ा
गेहूँ खड़ा था। एक खेत में अपना बिस्तरकद और हूटकेस
धिपाया और जरूरी सामान ब्रीफकेस में डालकर मैं

आमन की दिसा में पैदल चल दिया। लगभग आधा घंटा
पैदल चलने के बाद में जित गाँव में पहुँचा, उतका ना
बंगा था। एक सज्जन है बातचीत की। उतका ना था
सिखा करीब सिंह लाक। अपनी कागज कतामी में ने उन्हें
मुगई श्री अहं सहाय की प्रार्थना की। उतका कानन
इसमें परेशान होने की क्या बात है। आज रात काप में
पर निकालिए। सुबह होते ही मैं एक रिक्शा में बिठा कर
आपको माता जी के गाँव भिजवा दूँगा। रिक्शा वाला खेत में
से आपका सामान भी उठा लेगा और वह आपको ठीक
माता जी के घर पर ही छोड़ेगा।

उतकी बात मानने के आतिरिक्त मेरे पास और कोई चारा
नहीं था। इस उदारता के लिए मैंने उन्हें बहुत-बन्धवाद दिया
और उन्हें वापस पहुँच गया। बूझने पर उन्होंने बताया था कि
वे मामूली किसान हैं। उस मामूली किसान के ठार-बार
देव का मैं दंग रह गया। काफ़ी बड़े कहते हैं अन्दर बाँकी
में तो और गाँवों के बाँधने के अलग-अलग स्थानों। वहाँ
काफ़ी जानवर, पशुओं गन्धगी को नाम नहीं था। प्रत्येक
पशु के दाने-पानी को ही व्यवस्था बहुत अच्छी थी। उनके
भस्त्रान में पौन्य आतिथी-कक्षा थी। प्रत्येक आतिथी-कक्षा में
बढ़िया फर्नीचर था। वाई-ऐन के आतिरिक्त टीनकी वाली
आलमारी भी प्रत्येक कक्षा में थी। आतिथी के लिए पैसे में
प्रलम्बने लिए प्रत्येक कक्षा में चप्पलें भी रखी थीं। प्रत्येक कक्षा
में स्नान-गृहनादिकी व्यवस्था थी।

रक्षकों उन्हें परिवार के साथ भोजन हुआ और कता की का
आदान-प्रदान भी। सुबह के भुँदा लक में उन्होंने मुझे जगा दिया
और बढ़िया गरहा क्दों एक रिक्शा में बिठा कर मुझे बिया
कर दिया। रिक्शा के किराए के पैसे भी उन्हीं ने दिए। उतका
बहुत आभार मानता हुआ, मैं उन्हें बिदा हुआ।

पिछली रात छिपार गए थे मैंने के बिना में ही सामान उठा
कर जब मैं शहीद-माता के गाँव पटकड़वाँ पहुँचा तो दिन
बढ़ आया था और काफी उजली-धूप लगी हुई थी। उस समय
भी हवा में काफी ठण्डक थी और मैंने लोगों को धूप में बैठे हुए
देखा। रिकशेवाने ने मुझे माताजी के घर पहुँचा दिया।

मेरी कल्पना थी कि माताजी बहुत ऊँचे मकान में रहती
होंगी, लेकिन मैंने देखा यह कि वह तो इलाँचा बना हुआ
सा पारण मकान था जो काफी पुराना लो-भूका था। सिंह-द्वार
के अन्दर प्रवेश करने पर मैं एक काफी बड़े सदन में पहुँचा। उस
सदन में एक ओर दरवाज़ा ही मकान निकाला जा रहा था—
और दूसरी ओर कोई महिला तन्दूर पर रोटियाँ पक रही थी।
एक महत्वपूर्ण स्थान पर एक-चारपाई पर बैठी हुई एक अल्प
वृद्धा धूप ले रही थी। मुझे यह समझते दे नहीं लगी कि
यही शहीद माताजी ही माताजी होना चाहिए। उस ओर
बढ़ कर मैंने शहीद-माता के घरण पूरा। मैं कुछ कहूँ,
इसके पहले ही माताजी ने कावाज़ लगाई -

“उरे! जल्दी से कोई कुर्सी लाओ, कोई साखर का
पुए हैं।”

मुझे देव का माताजी को मेरा साखर लेने का अमर हाथिए
हुआ कि लकी होने के कारण मैंने ऊनी सूट पहना हुआ था,
और मैं भी सूट-बूट-चारी लोगों की शिष्टाचार से साखर
कह कर फुकाया जाता हूँ। माताजी के कण्ठ का प्रतीक
करते हुए मैंने कहा -

“माताजी! मैं कोई साखर नहीं हूँ, मैं तो आपका
एक बेटा हूँ। मैं कुर्सी पर नहीं, आपने घरणों में बैठूँगा।”

येह कह कर मैं माताजी की चारपाई के सामने बिट्ठी हुई
दरी पर भूमि पर ही बैठ गया। मेरे बैठ जाने पर माताजी ने
मुझे बौंह पकड़ कर उठा कर चारपाई पर अपने पास ही बिठा
लिया और बड़े प्यार से मेरा माथा धुसा। उनके हाथों से मेरे
हृदय हो गया। कम काल का काम प्रारम्भ हो गया।
माताजी केवल पंजाबी ही बोले सकती थीं। काम चलाने पर पंजाबी
उस समय तक मैंने सीख ली थी और मैं मुहम्मदी लिपि में
लिखी हुई पुस्तकें भी - धीरे-धीरे पढ़ लेता था। प्रश्न माताजी
ने ही किया -

“कहाँ पुत्र तुम कहाँ से आए हो?”

“माताजी, मैं मध्य प्रदेश के उज्जैन नगर से आया हूँ जो
एक तीर्थ-स्थान है।”

“बड़े भाग्य हैं तुम्हारे जो तुम तीर्थ में रहते हो। इतनी दूर
से आए हो, पहले कुछे खा-पी लो, फिर बातें करेंगे। अच्छा
येह बताओ कि हम लोग तुम्हारी क्या वातिरकरें। तुम्हारा नाम
तो लोग - वाच पीते लेंगे। तुम-वाले तो - वाच बनवाएँ, वे ही
तुम्हारा धाम्य और मकावन तो लाज है ही।”

माताजी की ये बात सुन कर मैंने उनके पैरों पर हाथ रखी
विनम्रता के साथ कहा -

“माताजी आप बहुत बूढ़ा हैं और मैं सारे राष्ट्र की कोमल
पूजनीय हूँ। आपका अपने घर पर तिनका हिमाने की भी
अवश्यकता नहीं पड़ती होगी। मैं दोबारा भी रहा हूँ कि आपके घर
में बहुत काम कर रहा हूँ। यदि आप कुरान मानें तो मैं
आपके सामने एक बहुत बड़ी पृच्छा करना चाहता हूँ।”

माताजी ने बहुत ही आत्मीयता उंडालते हुए और अपने पैरों पर हाथ
मेरे हाथ रखते हुए कहा -

“तू इतनी कुशाग्रदम्बी कर रहा है। कह तो सही, क्या कहना
चाहता है।”

मैंने एक बार आँगन में गजरे काड़ा कर और माथे
बगोर कर अपना कलम प्रारम्भ किया :-

माताजी, आपके आँगन में तन्दूर जल रहा है। आप
केवल एक सेटी बना कर तन्दूर में डाल दीजिए। उसे
चाकर मैं जीवन भर यह गर्व करता रहूँगा कि जिसे माता के-
हवा की सेटियाँ शरीर भरता सिंहे ने खाई हैं, मैंने भी
उस माता के हवा की वनी सेटियाँ खाई हैं। आपके गले
यह प्राण रहते हुए मैं सचमुच भाजित हूँ, पर मैं
अपनी इच्छा को दबा नहीं सका।"

मेरा यह कथन सुनकर माताजी का अंश -

"तुझे दिन तो क्या, जितने दिन मेरे पास रहे, मैं अपने
हवा से सेटियाँ बना कर तुझे खिलाऊँगी।"

यह कहकर माताजी उठीं और उन्होंने तन्दूर पर कुछ
सेटियाँ सेकीं। तब निकले हुए स्मरण है बड़े प्रेम से उन्होंने
मुझे सेटियाँ खिलाईं। मैं खिन्न रहा था कि हाँ वडा
तो माया न तो मुझे पहले खिलाते और न आगे मिलेगा।

माताजी के एक पुत्र और भगवान् सिंह के अनुज भी
रणवीर सिंह के मेरे आगमन का समाना मिलता तो वे अपना
कैमरा ले आए और माताजी के हाथ में एक चित्र लिया।
वह चित्र मेरी जीवन को लिए असूखम धारों का बन गया।

माताजी के निजी कमरे में जाकर हम लोग बहुत देर
तक बातें करते रहे। अपने शरीर के दुर्लभ संस्करण
उन्होंने मुझे सुना। उन्होंने बहुत समय तक मुझे
अपने पास रखा और हर समय वे अपने शरीर के
जी बातें बताया करती थीं। आह! वह समय भीशाया,
जब मुझे उनसे विदा लेनी पड़ी। विदा देते हुए उन्होंने
मुझे कहा -

"बेटे! तुमसे मेरी तो अपेक्षा है। क्या तुम उन्हें धरी करोगे?"

माताजी के मुँह से यह बात सुनकर मेरे मन में कुछ
हलचल होने लगी। मैं खिन्न रहा था कि पता नहीं कि

महाराजी की मुझ से क्या अपेक्षाएँ हैं और मैं उन्हें पूर्ण कर^{ऊँ}
सकूँगा या नहीं। मुझे ~~सोच~~ सोचने का आधिक समय
नहीं मिला। महाराजी ने अपनी इच्छाएँ मेरे सामने व्यक्त
कर दीं। वे बोलीं -

“बेटे! मेरी पहली अपेक्षा तो यह है कि तुम मुझ से
निरंतर संपर्क बनाए रखना। हर महीने तुम्हारा कम से
कम एक पत्र तो मेरे पास आना ही चाहिए और एक वर्ष में
दो बार तुम्हें मुझ से मिलना चाहिए।”
मैंने वचन दे दिया -

“महाराजी! मैं आपकी इस इच्छा की पूर्ति करने का
वचन देता हूँ।”

उन्होंने अपनी दूसरी इच्छा बताते हुए कहा -

“मुझे लगता है कि मेरे दिन गिने-चुने हैं। तुम
मेरे बेटे पर जो ग्रन्थ लिखने वाले हो, वह बहुत जल्दी
लिखना और बहुत जल्दी छपवा लेना। भगवान के पार
जाते के पहले, मैं उस ग्रन्थ को देख लेना चाहती हूँ।”

महाराजी की इस इच्छा के उत्तर में मैंने कहा -

“महाराजी! जहाँ तक लेखन का प्रश्न है, वह मेरे स्वतः
की बात है। मैं आपको वचन देता हूँ कि स्वयं को अन्य
बातों की ओर से बर्बाद कर मैं लेखन से ही आधिक समय
मगाऊँगा और मुझे विश्वास है कि मैं शीघ्र ही महाकाव्य
का लेखन पूर्ण कर लूँगा। जहाँ तक उसके प्रकाशन का
प्रश्न है, वह मेरे स्वतः की बात नहीं है। उसकी व्यवस्था
तो प्रकाशक के लोग ही कर सकेंगे। फिर भी मैं
प्रयत्न करूँगा कि किसी प्रकाशक को राजी करके
असका प्रकाशन भी शीघ्र करा सकूँ।”

महाराजी मेरे इस कथन का उत्तर नहीं लगा
सकीं। ~~उन्होंने~~ उन्होंने यह पता नहीं लगा कि ग्रन्थ

मिलने वाले आत्मन होने हैं और उन्हें धारण करने आत्मन।
उन्होंने कुछ ऐसी कुद्रा बनाई जैसे मेरी बात को न-
सिद्ध न लकी हैं। उन्होंने निराशा के रूप में कहा -
“तो क्या तुम्हारा ग्रन्थ मुझे जल्दी देवता को नहीं
मिलेगा?”

कुछ देर मौन रहने के पश्चात् उन्होंने फिर कहना प्रारम्भ
किया -

“भगवद्गिरी को फाँसी लगाने के पहले मैं जेल में उसे
मुलाकात करने गई। अपने बेरों से आन्तिम मुलाकात करने
के लिए सुबोध और राजगुरु की माताजी भी वहाँ पहुँचीं। हम
जैसे अपने शरीर होने वाले बेरों की आखिरी आत्मक पान के
लिए अन्दर भी। और भी बहुत से लोग उन्हीं मिलने के
लिए जेल के फाटक पर मौजूद थे। जेल के आधिकारियों
ने अपना निर्णय सुना दिया कि आन्तिमता की माताओं
के आतिरिक्त अन्य लोग उन्हीं नहीं मिल सकेंगे।
जेल के आधिकारियों के इस निर्णय की सूचना आन्तिमताओं
के पास भी पहुँचाई गई। बाड़ी देर पश्चात् आन्तिमताओं ने
भी जेल के अन्दर से अपने निर्णय भेज दिया। उनका
निर्णय था कि यदि सरकार हमें अपने देशवासियों से नहीं
मिलने देती तो अपनी माताओं से मिलना हमें भी स्वीकार
नहीं है। उनका तर्क था कि मुख्य की इस बेला में मैं
हम लोग अपने और पराए का भेद नहीं कर सकते और
यदि सच पूछा जाय तो अपने देशवासी हमें इस समय
अपना हाथ लग रहे हैं। अपने बेरों का यह निर्णय
सुनकर हम तीनों माताएँ उन्हीं आन्तिमकार मिलने
बिना ही वापिस आ गईं। हम लोग अपने बेरों के निर्णय
पर गर्वित हो रहे, पर हर्षित नहीं। मेरे कहने का मतलब
है कि जीवन के आन्तिम समय मेरे उस

बेटे ने मुझे निराश किया और जब मेरे जीवन का यह
अवसान निकट आ पहुँचा है तो तुम - जिसे मैंने अपना
बेटा मान लिया है, मुझे निराश करने वाले हो। क्या
तुम ऐसा कुछ नहीं कर सकते कि मेरे शरीर बेटे में
मुझे मिले। मेरे बेटे पर जो ग्रन्थ तुम लिखोगे,
मैं उसी की दोबारा यह समझ लूँगी कि मैंने अपने
शरीर बेटे में आखिरी मुद्राकात कर ली।"

महाराजी का वक्तव्य समाप्त हो चुका था। उनके चेहरे
पर गंभीर भाव था। उनके समीप ही खड़ी हुई उनकी
एक पुत्र-वधू खिप्ती लीला रणवीर सिंह अपना धैर्य
नष्ट नहीं। उनके नेत्रों में आँसुओं की मझरी लग
गई। महाराजी ने उन्हें धरती से लगा कर अपने पल्लु
में उनके आँसु पोंछे। मैं इस समय तक विचित्र विचित्र
बना बिड़ा था। मुझमें कुछ कहने नहीं बना। महाराजी
के चरणों पर गिर कर कुछ बूँदों में मैंने उनका
पाद-प्रक्षालन किया। महाराजी ने मुझे उठा कर हृदय
में लगाया और मेरे सिर पर धातु का हवन फेरने लगीं।
रुँधे हुए कण्ठ से मैंने कहा -

"महाराजी! मैं आपको वचन देता हूँ कि किसी भी
किसी प्रकार आपके शरीर-बेटे पर लिखा गया
महाकाव्य बहुत शीघ्र ही आपके हाथों में पहुँचेंगा।"

शरीर-काव्य को यह आवश्यकता देकर और उनके
कनेकों आशीर्वाद और ढेर सारा दुआर लेकर मैंने
उन्हीं चिदा ली।

महाराजी से संपर्क बनाए रखने के वचनको मैं पालन
करता रहा। मुझमें वचन-भंग का अभाव नहीं होता, इसलिए
इसका प्रिय मुझको काम, महाराजी को ही आधिकार है।

आनिन्दनके लिए माताजी जहाँ-जहाँ आनंजित होतीं, वे संयोजकों
से मुझे बुलाते कि आग्रह करतीं कि इस प्रकार का-कार
उगले मिलन हो जाता था। जब मुझे पत्र मिलते हैं
विमर्श हो जाता तो उम्मा पत्र आ जाता। उनकी (कही)
शिकायत होती -

“ ऐसा लगता है बेटे, कि तुम मुझको भूल गए हो। मैं
तो तुम्हें हमेशा याद करती रहती हूँ। ”

जब तक माताजी जीवित रही, उनसे प्रत्यक्ष या
पत्र-सिलसिले का क्रम चलता ही रहा। यहाँ मैं यह स्पष्ट
कर दूँ कि मेरी अपनी माताजी का निधन उक्त समय
होगया था, जब मेरी उम्र लगभग पंद्रह वर्ष की थी।
माँ के स्नेह का अभाव मेरे जीवन में निरन्तर रहा। उसी
अभाव की पूर्ति की शरीर भगतासिंह की माता विद्यावतीजी
ने। मैं तो बौरा गया कि माँ भी मिली तो कितनी
महान, जो समूचे राष्ट्र की माता होने की महत्ता से
विशेषित थी। आज वह माता इस संसार में नहीं है, लेकिन
उनके स्नेह की आशीर्वाद के अतिरिक्त अपनी दो भौतिक नियतियाँ
मेरे पास सुरक्षित हैं। जब मेरे आग्रह पर वे उज्जैन पहुँचीं
तो उनके आग्रह से उड़ा गए अकीर-गुलाल की कपड़े
पोंछे गए आँसुओं से सिता उम्मा दुपट्टा अभी भी मेरे
पास है जो खिच्छा से वे मुझे दे गई थीं। इन्हें उनकी
इस निशानी है, उत्तर प्रदेश के मीरजापुर जगन के
गुलदारा साहब से मुझे भेंट किए गए सरोपा के साथ
एक करार जो माताजी ने स्वयं अपने हाथ से मुझे दी
थी। मैं कितना अकिंचन की यह कितना बड़ा मौल्य।

इनमें से कुछ प्रसंगों को वर्णन आगे के पृष्ठों में करूँगा।
यहाँ तो भगतासिंह महाकाव्य के लेखन के सम्बन्ध में मुझे
कुछ लिखना है। मुझको एक ही चिन्ता थी कि शीघ्र ही
महाकाव्य का जीवन प्रारम्भ किया जाय और उसे पूरा

करके शरीर-मृत की इच्छा की पूर्ति की जाये।

-८९

अगति है महाकाव्य का जीवन

उज्जैन पहुँचकर मैं साधना में लीन हो गया। इच्छा तो यह थी कि कॉलेज से लम्बी छुट्टी लेकर केवल जीवन-कार्य ही करता रहूँ। यह संभव नहीं था। परिवार का वित्त-व्ययन के लिए मैंने जुटाना आवश्यक था। दो काम एक साथ करने पड़े - जीविका के उपार्जन के लिए कॉलेज में 'कच्चापत्र' भी काटा था और वक्त हुए समय में महाकाव्य का जीवन भी।

मेरा महाकाव्य प्रातिकाशियों के जीवन के अनुभव वगैरह, इसके लिए आवश्यक था कि मैं अपनी जीवन-पद्धति प्रातिकाशियों की जीवन पद्धति में ढालूँ। मुझे मालूम था कि आधिकांश प्रातिकाशी लोग अविवाहित रहते थे, भूखा-पूखा वाकर या भूते रहकर संघर्षपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे और यहाँ तक कि बिना कुछ अर्द्ध-निष्कार के भूमि-शयन ही करते थे।

महाकाव्य-जीवन तक के लिए धूम्रपान-पत्र का पालन प्रारम्भ कर दिया। भूमि-शयन करने लगा। जी-दूध और मिठाईयों का परिहारा कर दिया। कावे-सम्मेलनों में जाना छोड़ दिया और विश्व-विद्यालयों और परीक्षा-मण्डलों से मिलने वाला स-परिवारिक कार्य भी बंदीकार करने लगा। मेरे इतक व्यवहार पर सगरी लोग हैरत थे। मेरे व्यवहार से उन्हें पारलपन की बू आती थी।

सिपन का क्रम इतक प्रकार का होता कि मुनीम लोगों की ईर्ष्या सामने रख कर सतत सिपना प्रारम्भ करता था। परिवार के लोग जो जाते थे और मैं लिखता रहता था। यदि नींद आ जाती तो वही-चटाई पर झुड़क जाता था। गहरी नींद अभी ही नहीं सका। सा ते नींद उचट जाती थी और फिर जीवन प्रारम्भ कर देता था, सा सिपने आने लगते थे।

आधिकांश सपनों में शहीद भगतसिंह जी की माताजी को ही देखा था। उनको दिखे हुए वचन मुझे चिन्तित करता रहता था। वही चिन्ता स्वप्न के रूप में उभर आती थी। माताजी आकर पूछतीं -

“क्यों बेटे! ग्रन्थ का लेखन कब तक पहुँचा?”

मैं माताजी को अपने लेखन की प्रगति के विषय में बताता और महाकाव्य के कुछ अंश उन्हें सुनाता भी था। अक्सर ही मैं उन्हें पल्लु से आँवे पोंछता हुआ पाता था। वे मुझे आशीर्वाद देकर चली जाती थीं। कभी-कभी तो मैं अपनी शंकाएँ भी उनसे सामने रख देता था और वे उनका निराकरण कर देती थीं।

यह तो सपनों के संसार की बात थी। मैं पत्र लिख कर माताजी को लेखन की प्रगति की सूचना देता रहता था। लेखन-क्रम में एक बार मैं उनसे मिलने भी गया। कुछ पढ़ताओं पर मैं उनका कामकाज जानना-बुझता था।

लगभग एक वर्ष तक मैं भगतसिंह महाकाव्य के लेखन में डूबा रहा। आर्यन्द साधनों की कठोर से विमुक्त हो जाने के कारण परिवार की आर्थिक स्थिति मजबूत नहीं थी। मैंने उसकी चिन्ता नहीं की। मेरा चिन्तन था कि महाकाव्य पूर्ण हो जाने पर जो मानसिक सुख प्राप्त होगा, वह सभी अर्थाभाव-जन्य प्रणों पर मेरुभूमि का काम देगा। मुझे यह भी आशा थी कि महाकाव्य के प्रकाशन के पश्चात् भी सभी अभाव दूर हो जाएंगे।

महाकाव्य-लेखन समापन की ओर था। निवृत्त-निवृत्त मैं इतना थका गया था कि आगे लेखन संभव नहीं हो रहा था। कभी-कभी यह विचार आता था कि साल-दो-साल को लिए लेखन समाप्त कर दूँ। फिर मन में विचार आता कि शहीद-माता को दिए हुए वचन का क्या होगा। मानसिक रूप से इतना थका हुआ था कि लिखने बैठता, पर निवृत्त नहीं बनता था। जिन दिनों

मगताहिं महाकाव्य को जीवन-चक्र रहो आ, सुकावे श्री
 बालकावे बीरागी अर्जुन से रहकर रस ०१० परीक्षा की
 तैयारी कर रहे थे। वे अक्षर-आकर जीवन की प्रगति के
 विषय में ध्यान-ध्यान करते रहते थे। मैं कुछ लिखे गए
 अंश भी उन्हें सुनाता रहता था। जब उन्हें मेरी पकान
 और निराशा का अनुभव हुआ तो कई प्रकार से उन्होंने मेरा
 चर्चा बँधाया। एक शेर के कंठ काते थे, जिसका भाव
 यह था कि जो जगती किनारे पर आकर डूब जाय,
 उसके दुर्भाग्य का क्या कहना।

मगताहिं की साधियों में से श्री जगदेवकपुर और
 श्री शिव दत्त ने मुझे बताया था कि अपने शहीद होने वाले
 सागी से जल में हल लोगों ने अन्तिम मुलाकात की तो
 उनका वचन था -

“भावुक बनने का समय नहीं है शिव। मैं तो कुछ ही
 दिनों में तुम्हारे हाथों से छुटकारा पा जाऊँगा, लेकिन तुम
 लोगों को लम्बा समय पार करना पड़ेगा। मुझे विश्वास है कि
 उत्तरदायित्व के भारी बोझ के बावजूद इस लम्बे कार्यवाह
 में तुम अकोम नहीं, पस्त नहीं होगे और हर मान कर रास्ते
 में बँध नहीं जाओगे।”

अपने साधियों से की गई आतिथ्य-मगताहिं की यह
 अपेक्षा मुझे भी प्रेरणा देती थी। कई आशाओं और स्थिति
 का संचालन कर देती थी। मैं भी सोचा कि रास्ते में
 अकेले कर बैठ जाने वाला जगती कहीं का नहीं रहता।
 अपनी सारी निराशाओं और अकाल को धन का मैं
 जीवन में फिर प्रवृत्त हुआ और महाकाव्य का
 जीवन पूर्ण कर ही डाला। बड़ा संतोष हुआ मुझे।
 शहीद मगताहिं की सत्ताजी की पूजना देदी कि गुण्य
 का जीवन पूरा होगया।

एक महान क्रान्तिकारी के सान्निध्य में

मैं चाहता था कि भगतसिंह महाकाव्य के प्रकाशन के पूर्व मैं उनकी पाण्डुलिपि किसी ऐसे क्रान्तिकारी को दिला दूँ जिनके भगतसिंह के साथ काम किया हो। मैंने यह इरादा करवाया कि समझा-वै कोई करना गलत नहीं गई हो तो उसे बुझा दिया जाय और कोई बात क्रान्तिकारियों के सिद्धान्त के विपरीत उत्पन्न हो न पा जाय। मैंने प्रत्येक बतारहीनता की चतुर्वेदी और महान् क्रान्तिकारी श्री मन्मथनाथ गुप्त जी को पत्र लिखा। उन दोनों ने मुझे सुझाव दिया कि डॉ. कार्य के लिए मैं माँसी के महान् क्रान्तिकारी डॉक्टर भगवानदास माहौर से मिलूँ। उनका कथन था कि डॉ. भगवानदास माहौर स्वयं भी बहुत अच्छे कवि हैं और भगतसिंह के साथ उन्होंने कंचो से कंचा सिद्धा का कार्य किया है। उस समय वे माँसी के बुन्देलखण्ड-कॉलेज में हिन्दी के प्राध्यापक भी थे।

पत्र-व्यवहार द्वारा समय निश्चित करके मैं डॉ. भगवानदास माहौर से मिलने माँसी जा पहुँचा। उन्होंने मेरा बहुत आदर-सत्कार किया। भगतसिंह महाकाव्य सुनने वे स्वयं भी उत्कृष्ट हो रहे थे। पालकी मार कर वे मेरे सामने बैठ गए और मैंने मैंने पाण्डुलिपि खोल कर उन्हें महाकाव्य सुनाना प्रारम्भ कर दिया। भगतसिंह महाकाव्य के अंश सुनते-सुनते वे किसी दूसरे ओर से पहुँच गए। मैंने देखा कि पहले तो उनकी आँखों में लाल-लाल डोरे उभरते दिखाई दिए और फिर दोनों आँखें पूरी तरह से लाल हो गईं। ऐसा लगा कि उनकी आँखों में जून टपकने लगा हो। उनकी यह दशा देखकर मैं भयभीत हुआ। मैंने सोचा कि शायद मुझसे ऐसी बात लिखी होगई है, जो इन्हें पसन्द नहीं आई और क्रोध के कारण ही उनकी आँखें

माल होगई है। मैंने उनकी ओर देव का उनां पुच्छे भी
 कि क्या मैं वाचन समाप्त कर दूँ। उन्होंने बिना कुछ
 बोले ही वाचन करते जाके का संकेत किया। मैंने
 वाचन जारी रखा। कुछ देर पश्चात् मैंने देव कि
 उनकी आँखों में आँसू टपकने लगे हैं। मैं वाचन करता
 रहा। जब महाकाव्य का एक प्रसंग समाप्त हुआ तो उन्होंने
 अपने हाथ से मुझे वाचन बन्द करने का संकेत किया। उन्हें
 प्रकृतिस्म लेने से कुछ समय लगा और जब वे पूर्ण रूप
 से प्रकृतिस्म होगए तो स्वयं ही बोले -

“बहुत अच्छा। अच्छा लगे है वन्द्यु! मैं तो अभी
 की घटनाओं से लोगो भा। मेरा प्रस्ताव है कि आप पूरा महाकाव्य
 मुझे सुनाएँ। मेरे एक क्रांतिकारी सगी श्री सदाशिवराय मल्हारापुरकर
 भी यहाँ आँखों से रहते हैं। उनके साथ एक भाग आँखों से कुछ
 दूर सितार-नदी के तट पर चलेंगे जहाँ अमरशहीद चन्द्रशेखर
 आप्ताद की कुटिया बनी हुई है। वही आप इस महाकाव्य का
 वाचन करा करें।”

मुझे माहौरजी का प्रस्ताव बहुत पसन्द आया। मुझे संतोष था
 कि भोक्त उन्हीं पसन्द आया है। उनकी मुद्रा देव का जो भय
 मुझसे उत्पन्न होगया था, वह इर होगया। मैंने उन्हें कृपणा
 सुनाई जब फीरोजपुर से एक क्रांतिकारी ने मुझे - मुन्नी जी
 भी कि यदि भगतसिंह जी मिल जाते वाले ग्रन्थ से कोई
 अल-जालून बात लिखी गई तो मैं गोली मार दूँगा। मेरी यह
 बात मुझको माहौरजी बहुत हँसी। उन्होंने मुझे काश्ता
 दिया कि आपका लेखक सगीको बहुत पसन्द आएगा।

वर्तमान मध्यप्रदेश के नगर औरछा के निकट सितार-नदी
 के तट पर चन्द्रशेखर आप्ताद ने काकोरी-काण्ड के पश्चात्
 एक वृक्षच्छी के रूप में अज्ञातवास किया था। उसी
 कुटिया पर पहुँच कर कई दोस्तों से मैंने संपूर्ण महाकाव्य
 का वाचन किया। माहौरजी और मल्हारापुरकरजी ने

लोगों की बहुत ज़्यादा की और उन्हें किसी प्रकार
परिवर्तन करना सीखा नहीं दिया। मगरासिंह महाराज पर
उनकी सीढ़ी की सैर लग चुकी थी। मैं बहुत लुझी-
झुझी उछलेंगे और जाया की हर उछलें-झुन मैं
लग गया कि महाराज सीढ़ी प्रकाशित है।

चतुर्थ संचलन: महाकावी का सकार्य

शहीद माता ही पूरा महाकाव्य-लेखन का अपना काम में समाप्त कर चुका था। प्रकाशकों का काम शेष था। मैंने कई प्रकाशकों को पत्र लिखे, पर उत्तर नहीं मिली। आया। मुन्वा, स्वयं ही जाकर उन लोगों से मिलूँ। दिल्ली, इलाहाबाद, लाहौर, कानपुर और बनारस के प्रकाशकों के पास पहुँचा। कोई कहता -

“हिन्दी की कविता तो बिकती ही नहीं। इतना बड़ा महाकाव्य व्याप कर हम व्यर्थ अपना पैसा नहीं देंगे।”

इसका कहता -

“हमारी सेफ में कई पाण्डुलिपियाँ रखी हुई हैं। आप भी छोड़ जाइए। उन सबके व्याप करने के पश्चात् ही आपकी कृति का क्रम आ सकेगा। दो-चार वर्ष तो आपको प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी।”

किसी अन्यका उत्तर होता -

“अगर आप इसे व्यापना ही चाहते हैं तो इसकी व्याप का पूरा पैसा हमें पेशगी दे दीजिए। अपने पुस्तक व्याप गाने वाले को हम आपकी पुस्तक व्याप देंगे। पुस्तक बिकने पर हम आपका पैसा लौटा देंगे।”

जहाँ भी जाता, इसी प्रकार के उत्तर मिलते। महाकाव्य बनाने के सपने भंग हो रहे थे। शहीद-माता को दिया गया वचन भी भंग होने लगे थे। मैं सोच रहा था कि जितने देश में शहीदों की याद करी है, उतना भविष्य की भाँति होगा। अपना-सा मुँह लेकर मैं अपने-के की-प-जा पहुँचा।

परिवार का सहयोग

शहीद माता को दिया गया वचन प्रतिफल चिन्तित किए रहता था। एक दिन परिवार के लोगों के सामने बिठाया और अपनी समस्या उनके सामने रख दी।

२८

परिवार में एक पुत्री की शादी हो चुकी थी, एक पढ़ रही थी। दो पुत्र
जिनमें से एक प्राथमिक पाठशाला में और दूसरा माध्यमिक
शाला में पढ़ रहा था। मेरे बच्चों ने आश्वासन दिया -

“ हम लोग अपनी-अपनी आवश्यकताओं को कम से कम
कर देंगे और कोई ऐसी वस्तु नहीं माँगे, जिसमें आप की
आर्थिक पैसा खर्च करना पड़े। ”

बच्चों की ओर से यह आश्वासन, बहुत बड़ा आश्वासन
था। पत्नी ने कहा -

“ मेरे पास होने-वाँदी के जितने आभूषण हैं, उन्हें आप
बेच दीजिए और किताब ख़रीदा लीजिए। ”

आखिर मैंने पत्नी को यह रास्ता दे ही दिया। उच्चतम
वर्ग में उनके सारे आभूषण बेच दिए। पुस्तक तो परीक्षा
लेने पर तुली हुई थी। पार को अन्य सामान भी बेचना
पड़ा। किसी धर्मशाला या होटल में ठहरने के लिए जितना
सामान अपेक्षित होता है, उतना राब कर सब कुछ बेच
दिया। एक दिन कॉलेज से जब पार लौटा तो मेरे
दोनों बच्चों ने मेरे हाथ पर कुछ पैसे राब दिए और कहा -
“ आपकी पुस्तक की ख़र्चा में यह हमारा योगदान
है। ”

पत्नी ने स्निग्ध स्वर में -

“ एक कवाड़ी इधर से निकल रहा था। इन लोगों ने उसे
अपने सारे कपड़े बेच दिए। गर्म कपड़े भी नहीं धोड़े। जो बदन
पर पहने हैं, वे ही कपड़े रह गए हैं। ”

बच्चों को यह बात देखकर मेरा मन अतृप्त उठा। तबभी
आश्वासन दिलाते हुए पत्नी ने पूछा -

“ जब इन लोगों ने अपने कपड़े बेचे तो उन्हें कितना पैसे
प्राप्त करने में मिला? इन्हें क्यों नहीं रोका? ”

उत्तर था -

“ जब आपकी पुस्तक ख़रीदने के लिए मैंने अपना योगदान
दिया है, तो बच्चों को योगदान देने से मैं क्यों रोकी? ”

उन्को उत्तर में यह भाव निहित था कि प्रीति काप भी
तो अपना योगदान दीजिए। मेरे पास अभी भी सुती
मिला कर कई जोड़े कपड़े हैं। केवल दो जोड़े कपड़े ख
कर, बाकी सब बेच दिए। भगति सिंह महाकाव्य का तुलनात्मक
पूर्ण हो चुका था। उसका परिणाम शेष था। पहला परिणाम
तो यह निकला कि बच्चे सुदी के दिनों में भी ठिठुरते हुए
खुल जाते-आते रहे। उन्होंने कोई परमाध्य नहीं रखी
और मैंने भी अपना दिल कठोर कर लिया। दूसरा
परिणाम यह निकला कि पुस्तक द्वारा ली गई परीक्षा में
हम लोग खरे उतरे और जो पैसा एकत्र हुआ, उससे
भगति सिंह महाकाव्य छप गया।

भगति सिंह महाकाव्य छपा हुआ दोबारा हम लोग पूरने नहीं
समाए। शहीद-माताओं में यह शुभ-सूचना देवी गई।
उन्को यह भी निवेदन कर दिया गया कि काप उज्जैन
पहुँच कर ग्रन्थ का विमोचन करने की कृपा करें। ग्रन्थ शब्द
बार-बार इंगलिये मिल रह हूँ कि माताजी उसे ग्रन्थ ही
कहती थीं। उन्को किया गया निवेदन बहुत औपचारिक
था। एक प्रतिशत भी आशा नहीं थी कि वे उज्जैन पहुँच
लेंगी। उन्को पार पर मैं खय उन्की हलत देख
आया था। अपने मकान के एक कमरे से दूसरे कमरे तक भी
वे बिना किसी से सहारे नहीं जा सकती थीं। मैं सोच
रहा था कि माताजी का उत्तर आएगा और मैं लिखेंगी कि
बेटे! तुम्ही मेरे पास आ जाओ। उन्का उत्तर आया।
उन्होंने लिखा था -

“बेटे! मैं तुम्हो ग्रन्थ की भेंट स्वीकार करने उज्जैन
पहुँच रही हूँ।”

विश्वास नहीं हो रहा था कि माताजी उज्जैन पहुँच
लेंगी। मित्रों से चर्चा की। उज्जैन नगर को अभी

उत्साह के करंट ने धू दिया है। मातृजी के स्वागत के लिए समिति बन गई। इस समिति की विशेषता यह थी कि इसमें सभी राजनैतिक दलों के लोग सम्मिलित थे। यह पहला अवसर था कि सभी पार्टियों के लोग अपने पारस्परिक मतभेद भूलकर एक मंच पर बैठे थे।

स्वागत के सभी कीर्तिमान दूटे

उज्जैन नगर को राष्ट्रपतियों और प्रधानमंत्रियों का स्वागत करने का गौरव प्राप्त हो चुका था, लेकिन शहीद भगतसिंह की मातृजी के स्वागत ने पिछले सभी स्वागत पीछे धोड़ दिए। ९ मार्च १९६५ को दिन उज्जैन के इतिहास में स्वर्णिम रहे लिखा जाएगा। भगवान महाकाल तथा सम्राट विक्रमादित्य की नगरी उज्जयिनी को स्वयं एक महान तीर्थ होने का गौरव प्राप्त है, पर अन्ना गौरव सिद्धि हो गया जब एक अन्य सदेह-तीर्थ स्वयं अपने पिता को उपासित हो गया। क्यों न कहें कि पुण्य-सन्निभा क्षिप्रा है भंड करने देशभक्ति, धार्मिकता एवं कीर्ता की चिन्ता ही प्रवहमान होकर आई थी। इस सदेह तीर्थ का नाम है - अमर शहीद भिरवा भगतसिंह की वीर-माता श्रीमती विद्यावती।

वीर-माता के अन्तर्गत के समाज एवं हिन्दुओं की भाँति आसपास के नगरों एवं ग्रामों में प्रसिद्ध हो चुके हैं और भुण्ड के भुण्ड दर-दारी भूमते-गते जब नगर में प्रविष्ट हुए तो सड़कों पर चलने के लिए स्थान नहीं मिल रहा था।

नगर के प्रमुख मार्गों से बसों खुली हुई बसों में बिठा कर वीर-माता की स्तुति निकाली गई। उनके साथ आसीन थीं उनकी एक पुत्र-वधू श्रीमती लीला रणवीरसिंह। किसी सहायक को वे अपने साथ नहीं लाई थीं। चलते समय अपने बेटों को समझाया था -

“देखो, मैं अपने उज्जैन वाले बेटों के पास जा रही हूँ। मेरी उम्र तो होली-पुकी है। यदि मैं वहाँ न रहूँ तो तुम लोग

अपने उस भाई को दोष मत देना । यदि ऐसा हुआ तो मुझे यह प्यार होगा कि मेरी मिठी एक महान तीर्थ से मिलेगी ।"

माताजी को यह कथन लोगों को परमात्मा देने के लिए काफी था । राष्ट्र-माता की सवारी निकल पड़ी बगली के पृष्ठस्थ पर मैं ने आत्मावृत लाहुरे लाल भगतसिंह का तैल-चित्र दोलता-चि लग रहा था । मैं ने पीछे बैठे को चित्र ऐसा लग रहा था जैसे आपने गटपट बैठे को अपने कंधों पर बिठाकर मैं ने उसकी उंगलियाँ थाम ली हों और उससे कह रही हो —
"तुम्हारे लाल और मैं लेकर मैंने अज्जन में पा लिया हूँ । अब तुम मुझे छोड़कर कहीं नहीं जा सकोगा ।"

लोग पुष्पकित्त ने कि राष्ट्र-माता हमारे बीच आई हैं । वे निकट से अपने दर्शन करने और अपने चरणों पर मानक रख कर आँसुओं का अक्षय-पट्टन बगली के पास पहुँचने लगे । मैं की सुरक्षा की दृष्टि से पुलिस के पवान्ड इण्ड लेकर तैनात हो गए । लोगों का कहना था —

"तुम लोग इण्ड बरसाकर हमारी होपड़ियाँ तोड़ने या खाल खींच लो, लेकिन जब तक एक आपने हाथों से मैं के पैर नहीं छू लेंगे, तब तक पीछे नहीं हटेंगे ।"

मैं ने हस मारा । पुलिस ने संयम से काम लिया । जन-यात्रा मैं के चरणों से टकरा-टकरा कर पीछे हट रही थी । स्नान-स्नान पर बनाए गए स्वागत द्वारों के नीचे से निकलती हुई मैं ने ऊपर झुको की वषा ली रही थी । महाकवि कालिदास के मयदूत ने कर्णित उज्जयिनी की मालिनियों द्वारा निर्मित पुष्प-हार मैं के गले से पहुँच कर झूलने लगी समा रहे थे । वे अपने भाग्य पर हँस कर कह रहे थे —

"देखो, तीर्थ-स्वामि मैं के गले से लिपट जाने का जो सौभाग्य भगतसिंह को प्राप्त था, वह काज हमें प्राप्त हो रहा है ।"

माँ भी बेटे के चलाक में डूब गई । उसे लग रहा था, जैसे आ-पाद विलम्बित फुल फुल-हार, हार नहीं, उसके बेटे की भुज-बल्लारियाँ हैं, जिन्हें वह माँ ने गले में डाल कर झुल रहा है । माँ-बेटे के इस मिलन को देख कर लोग आपने को झुल गए । आस-पास नर-नारियाँ भी जन-तता आपने में नहीं थी । पागलों की भीड़ गगन के जन-जीवन को मकमल रही थी । माँ-बेटे की जयकार के स्वर आसमान को हिला रहे थे । ठोला और नगाड़ा का स्वर वीर-भावनाओं का उद्रेक कर रहा था । लग रहा था जैसे क्षिप्र को जल-पुकात जन-पुकात में परिवर्तित लेकर जन-पण पर पहुँच गया है । विद्वानों, गवार्थों और भारोखों से भाँकते-बहरे माँ की मंगल-मूर्ति ने दर्शन कर चला ली रहे हैं । कोमल कर-पल्लव फुल-वर्षा में व्याप्त थे, तो माँ भी मोतियों के वप में अश्रु-विमोहित कर रहे थे - हर्ष-विषाद की गर्वने आँसू । पाड़कते हुए दिमाँ और बरसती हुई आँसू में केवल एक ही भाव था -

“चल्यो माँ तेरी कोव, जिनने वीर-भावाँहि जैसे स्मृत को जन्म दिया ।”

“चल्यो हूँ हमारे भाग्य जो आज पर बँह वीर-पाता के दर्शन प्राप्त किए ।”

स्नान-स्नान पर बगली रोक का वीर-पाता की कारती उतारी जा रही थी । दौड़-दौड़ कर लोग आपने घरों से आपने बच्चों को लेकर माँ के घरों पर जल रहे थे और माँ कह रहे थे -

“माँ ! इतने ऐजा काशीवीद दे कि ये भी भावाँहि जैसे वीर माँ बलिदानी बन सकें । माताजी उन नन्हें-मुन्नों के मस्तक पर हाथ फेर कर ही उन्हें विदा करती थीं । हर पैर धुने वाले धाँके को माताजी एक-एक फूल उनके हाथ में बसा देती थीं । वे किसी साधु-सन्ता की आपने पैर नहीं धुने दे रहीं थीं । हर साधु-सन्त की को ने स्वयं ही प्रणाम करती थीं । दूर लड़ें हुए और घण्टे-अरियों पर आशीर्वाद लोगों के प्रणाम का उत्तर दे तत्परा दे दे रहीं थीं । लोगों को प्रणाम करते-करते उनके ४ अंगकी

दोनों बाँहें बुरी तरह झुज गईं । उन पर वर्षाए गए झूलों से बगली
सात बार भी आँखें झिल्ली हुई ।

पगलाया हुआ वातावरण

संक्षोभ समय आत-समाका वातावरण पगलाया हुआ था ।
जमी हुई अरादूर भीड़ में त्री-शुष, बूढ़े-जवानों की अच्छी तमी
मंज की ओर दृष्टि गड़ा बैठे थे । सभी का लक्ष्य था अजगम
करते हुआ सुमन-साजित मंज जिस पर त्याग-तपस्या की
साक्षात्की सजीव प्रतिमा शरीर-शिरोमणी भगतासिंह की
प्रकोश में सुप्रवासनों में प्रोभाशाली थीं । शरीरों के
व्यवस्थित चित्र बालिदानी वातावरण की छि छुट्टि कर रहे थे ।
यदि माँ को अपना भगतासा था तो चन्द्रशेखर काजाद भी
कम कुमाय नहीं था । वीरगति प्राप्त चन्द्रशेखर काजाद
का चित्र माँ के पार्श्व में सुशोभित था । स चित्रों की
समने बैठे हुए जन-समुदाय को देव कर माँ के कोपते हुए
लेहों से ~~छेद~~ छरपराता हुआ स्वर निकल पड़ा -

“कौन कहता है कि चन्द्रशेखर काजाद और भगतासिंह
इस संसार में नहीं हैं ? देवों से, से कितने काजाद और
कितने भगतासिंह मेरे सामने बैठे हुए मुझ से आँखें निक्का
रहे हैं । राजगुरु और सुप्रदेव भी तो इन्हीं में बैठे हैं । मेरा
भगवती-चरण भी तो यहीं-कहीं हैं । मेरे बेटो ! तुम्हें इसी
रूप से दोवते रहने के लिए ही तो मैं अभी तक जीवित हूँ,
अव्यक्ता दूटा हुआ दिन कितने दिन चाड़-चाड़ करता ।”

समाके प्रारम्भ में मैंने माँ के द्वारा सुनाया गया वह संस्मरण
लोगों को सुनाया जब माँ की पाने वाले अपने बैठे हैं अन्तिम में
किए बिना ही माँ जेब के पाटक से मोटकई की । मैंने
वे संस्मरण भी लोगों को सुनाए जब पाटकइकलों पहुँच कर
मैंने माँ से भेंट की थी की सिंह-सरेका मैं माँ से मुझ-

सराबोर कर दिया था। एक पंजाबी जो जवान ने भगतसिंह को दी गई फाँसी के प्रसंग को विवाह के समय गाए जानेवाले पंजाबी-फोड़ी-गीत का भाविक स्वर से गायन किया। कुछ मिलाकर वातावरण ऐसा बन गया कि लगने लगे हुए बीस हजार लोगों में से कई-कॉश लोग फफफ-फफफ कर या छुक-छुक कर रो रहे थे। रोने में सब को मাত कर रही थीं माताजी की पुत्र-वधू श्रीमती लीला राववीरसिंह जो उनके समीप ही बैठी हुई थीं। अपने पल्लू से अपनी बहू की आँखों-पोँछते हुए मैं ने लगने ~~बसती हुई~~ ~~आँखों~~ अश्रु-विमोहित करते हुए लोगों को सम्मानने की दृष्टि से कहा —

“ विवरदार ! जते तुम में से एक भी रोया। क्या होगया है आज तुम्हें ? जानते नहीं कि आज तो मेरे भगतसिंह की शादी का दिन है। तब तो वह शादी कराने के नाम पर घर छोड़ कर भाग गया था, पर आज वह तुम्हारे उज्जैन नगर में चू मकाम से अपनी शादी करा रहा है। उसकी शादी में कितनी अच्छी सजावट तुम लोगों ने की है कि तारीफ करते नहीं बनती। देखो, यह कितना सुन्दर मण्डप तुम लोगों ने बनाया है जो हा-फूलों के कोमल से भुका जा रहा है। जगमग करती हुई ये अलंकरण वस्तियाँ इस मण्डप में प्रकाश की मंगी बहा रही हैं। कितने सुरीले स्वर में शादी की फोड़ी गाई गई है। (आज मेरे दहे भगतसिंह की शादी नहीं तो और क्या है ? मेरे बच्चे ! आज रोको नहीं ! आज तो खुशी का दिन है, तुम लोग खुशियाँ मनाओ ! ”

मैं ने जो रौने की सम्झाइश दी थी, पर ऊपर उल्टा ही हुआ। नयनों के प्रवाह का वेग और आधे से बढ़ गया। पालीस हजार आँखों से आँसुओं की मड़ी लगी हुई थी। केवल दो आँखें ऐसी थीं, जो नहीं रो रही थीं। वे दो आँखें

माँ शहीद-माता की। अगर वही रो पड़तीं तो रोते हुए हजारों
भागों को संतवना किंतु ठरत प्रदान करतीं। मैं कपने कपों
को रोता हुआ नहीं देख सकती। उसे रोना होता है तो एकान्त
में रो लेती हूँ।

वातावरण को मोड़ देने के लिए मैंने उचित समझा कि
भगतींद्र महाकाव्य की प्रति को विमोचन करने के लिए मैं ही
निवेदन किया जाय। रंगीन वावरण में लपेटी गई महाकाव्य
की एक प्रति मैंने माताजी की ओर बढ़ा दी। एक अद्भुत दृश्य
भागों को देखने का मिला। ग्रन्थकी प्रति लेने के लिए कपने
हवा आगे बढ़ाने के बजाय माताजी ने कपने हाथ पीछे कर
लिए। मैं आश्चर्य-चकित था। हमी लोग हसन की कि माताजी
उनके शहीद बेटे पर लिये गए ग्रन्थकी प्रति लीकर करने में
कतनाकानी क्यों कर रही हैं। किंतु ग्रन्थ को प्रकाशित देखने के
लिए माताजी ने एक-एक पल एक-एक वर्ष की माँ की बिताया था,
वही जब उनके हाथों में आ रहा था, तो उन्होंने कपने हाथ
पीछे क्यों लींच लिए, यह समिति समझे लिए हमस्य वनी
हुई थी। समिति का स्वीकरण माताजी ने ही किया। मेरी
ओर मुलाती व होकर उन्होंने कहा —

“तुम्हें पहले चन्द्रशेखर आजाद पर ग्रन्थ लिखना चाहिए था,
क्योंकि भगतींद्र पहले आजाद शहीद हुआ था। मेरे मुलातीज मैं
तुमने पहले भगतींद्र पर ग्रन्थ लिख डाला। आजाद की माँ इस
संसार में नहीं हैं। उनकी माँ की हस्तियत मैं मैं तुम्हें यह उपानना
बताती हूँ कि क्या तुम कबना अगला ग्रन्थ चन्द्रशेखर आजाद
पर लिखोगे? अगर तुम कपने नगरवालों के सामने यह
बादा करो कि तुम्हारा अगला ग्रन्थ चन्द्रशेखर आजाद
पर लिखा जायेगा, तो मैं इस ग्रन्थ की प्रति लीकर
नहीं, अन्यथा नहीं।”

माताजी की इस महानता पर हमी लोग अचूक हो गए।
उनकी जय के गारे देर तक गुँजते रहे। मातावैद्य में

आकर मैंने अपने पीछे लव्य का अँगुठा - पीरा को माताजी के माथे पर रक्त का तिलक लगा कर कहा -

“माताजी! यह रक्त-तिलक लगा कर ओ! आपके-परा धुकर मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि मेरा अगला महाकाव्य कंठ शरीर-वन्द्यशेखर पर होगा। मैं अपने नगर के लोग (एजा नर-नीयों को अपने संकल्प का साक्षी बनाता हूँ।”

कब मिलेगी यह भी-की मैं अपने एक बेटे के रक्त से विनमित होगई। हजारों स्त्री-पुरुषों की कस्तुर-वर्षा का मेल जई थी, पर जिसे उसने अपना बेटा मान लिया है, उसके रक्त के स्पर्श ने उसके संयम का बाँध तोड़ दिया ओ! फफक-फफक का रोने लगी। राष्ट्र-माता को रोता हुआ मैं देव का आँगों का एक ही चिन्तन था कि मैं को कौन सावना प्रदान करे जाय। इतना बारी को माताजी की बहू की। उन्होंने अपने दुपट्टे से मेरी आँखों को काँपू पोंछे ओ! उनके गले से निपट कर कहा -

“मैं - धुप भी करों, गलीं तो मैं फिर से रो पड़ूँगी।” मैं ने चौर्य-कारण दिया ओ! तेरी कर्तृदेव कर कहा -

“बेटे! मुझे विश्वास है कि तू अपने दिए हुए वचन को पूरा करेगा। मेरा आशीर्वाद है कि तेरा संकल्प शीघ्र ही पूरा हो। मैं तेरी आग को पराव-बुकी हूँ।”

इस आशीर्वाद के सम्मेली मैं ने उगीत आवरण में अपेदी हुई भगता सिंह महाकाव्य की प्रति मुझ से प्राप्त की ओ! उसे विनोदित किया। मेरे अन्तर्धान पर उस प्रति पर उन्होंने अपने हस्ताक्षर दिए। मैंने भी अपने रक्त-स्नात अँगुठ के निह उस प्रति पर अंकित कर दिए। मैं ने उस प्रताप को अपनी गोद में रख लिया ओ! बेली -

“जिसे मैंने लाहौर में लोकाया, उसे अजित में पा लिया है। मुझे लगता है कि मेरा बेटा भगता सिंह मेरी गोद में आ बैठा है। मुझे लगता है जैसे मेरा बेटा मुझसे

“आओ, जननी-दात्री स्वर्गदात्री-गरीबसी उत गारी की
 मरिमा के समझा हम सब अपने मस्तक मुकुट हैं - भावभाव प्रकट
 करें जिसके आदि रूप में की प्रशंसा में अनेक संस्मृतियों द्वारा
 अयगान हुआ है।

“राम और कृष्ण, बुद्ध और ईसा तथा मोहम्मद और गांधी
 की जननी के रूप में जिसकी मरिमा का संगीत निरन्तर गुँजता
 रहता है, उत मातृत्व के गौरव में विभूषित वीर-पुत्र विद्या-भों
 को अपने हृदय के समस्त प्रेक्षा-सुमन शत अंकन के साथ
 अर्पित करें कि मातृ का कोई बेटा कायर बनकर माँ की
 मौल को कलंकित नहीं करेगा।”

शहीद-माता को कंगूर की पूँजी की भाँती दिखाने रखने के
 लिए हम लोग उन्हें इन्दौर और रायपुर भी ले गए जहाँ
 भावों-भावों भाँगी ने उत साकार तीर्थ के दर्शन किए। हम
 भाँगी में विदा लेते समय उन्होंने आग्रहपूर्वक कहा -

“बेटे! हम बहुतशीघ्र दिल्ली पहुँचकर बड़केष्टक दत्त से
 मिल लेना।”

इस आग्रह के पीछे श्री दत्त की दिन-ब-दिन बिगड़ती हुई
 हालत थी, जिसकी खिन्ता भों को बहुत थी।

दत्त जी से भेंट: पहला सागत फटकार द्वारा

खर-खर-खर

समदरजंग अस्पताल के प्रयवेट वाई के अक्कर के दरवाजे पर मैंने
 एक हल्की सी दस्तक दी, जिसने श्री बड़केष्टक दत्त को। दरवाजा
 खुला। दरवाजा खोलते वार्डन व्यक्ति को देख कर मैं कोड़ा-चोंका
 की बड़े अदब के साथ मैंने उन्हें नमस्का किया। मुद्राष्ट
 के साथ उन्होंने नमस्कार का उत्तर दिया और मेरे भ्रम
 को दूर करने के लिए कहना प्रारम्भ किया।

“मैं जालबहादुर शाही नहीं, इस अस्पताल का एक
 डॉक्टर हूँ। बड़का भी लोग मुझे जालबहादुर शाही

तुम्हारे पास है।"

"जी अजिया, मैं दत्तजी से मिलना चाहता हूँ।" मैंने कहा।

"अपना परिचय दीजिए, मैं दत्तजी से पूछकर बताता हूँ।" उत्तर मिला।

"मेरा नाम श्रीकृष्ण सराव है और मैं मध्यप्रदेश के उज्जैन नगर से आया हूँ।" मैंने उन्हें बताया। मैं वहीं बड़े दाकने के बाढ़ी की

दिशा रहा। वे दत्तजी से पूछने के बाद चले गए। मैं कुछ शर्तों के परभाव से लौट कर उन्होंने कहा -

"कहिए आप दत्तजी से मिल लीजिए।"

मैं अन्धा गया और मैंने देखा कि एक गौरवर्ण कृशकाय सज्जन शरदा पर खड़े हुए हैं। चेहरे पर हल्की दाढ़ी के साथ सफेद कपड़े।

मैंने उन्हें गौरवपूर्वक किया। मेरा नाम-दान वे जान ही चुके थे। मैं भी मैंने कहा -

"मैं उज्जैन से आया हूँ। शहीद भगतसिंह जी माताजी ने आप से मिलने के लिए बुलाते कहा था। उज्जैन के लोगों ने कुछ राशी आपकी लिए भेजी है। वही आपको देने आया हूँ।"

मेरे हाथ कमान को छुकर दत्तजी ने चेहरे पर मुस्कान दिखाई। मैंने उन्हें आभार प्रदर्शित किया -

"मुझे आप से मिल कर कोई प्रसन्नता नहीं हुई। मैं एक लापरवाही व्यक्ति हूँ। किसी के दान से अपना इत्माज कराने के बजाय मैं करना बेहतर समझूंगा। माताजी की बुद्धि का आपने अपना पुण्य-पुकार कर लिया, पर यह नहीं सोचा कि अगर उसे कुछ हो जाता तो आप क्या कर लेंगे?"

दत्तजी की वक्तव्य से मुझे यह समझने में नहीं लगी कि ये किसी राजतमहसी के शिखर हुए हैं। मैंने हाथ जोड़कर विनम्रता से अपना कर्पण प्रस्तुत किया -

"दत्तजी, आप जितना भी चाहें, मुझे डाँट-फटकार लीजिए लेकिन पहले मेरा जोड़ा निवेदन सुन लीजिए। मैं आपकी राजतमहसी से कर देना चाहता हूँ।"

"कहिए क्या कहना है आपको।" उन्होंने मुझे बताना दिया। मैंने उन्हें इसका जवाब दिया -

“मैं कोई राजनीतिवादी नहीं हूँ और न किसी प्रचारवादी
-मैंने माताजी को बुलवाया था। मेरी संस्था में एक अध्यापक हूँ और
लेखन-रानी की इच्छा है मैं एक राष्ट्रीय कार्यकर्ता हूँ। शहीद भगत सिंह
पर मेरा एक महाकाव्य प्रकाशित हुआ है और उसी के विमोचन
के लिए माताजी उद्योग पढ़ती थीं।”

मैंने देखा कि वह पीछे-चेरें में गाराजगी के गाय-घोड़े-घोड़े
दूर हो रहे थे। अपने स्वर में कुछ गारगी गायकर उल्टे-कहा-

“फिर आप उद्योगवादी की ओर से यह पैसा मेरे लिए
बंदो आए हैं। मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता।”

मैंने कहा -

“आप इसे स्वीकार करें या न करें, यह तो आपकी मर्जी है। मैंने
मैं यह भी स्पष्ट कर दूँ कि यह पैसा उद्योगवादी का नहीं, शहीद
भगत सिंह की माताजी का है। ~~यह~~ भगत सिंह महाकाव्य की जितनी
-उत्ति मैंने उन्हें पैसे में दी थी, वह तीन हजार रिंगित है। पैसे
-मैं भीजाम हुई थी और वह राखी अपने लक्ष्यों में न लेकर
माताजी ने मुझे आदेश दिया था कि मैं आपका दे जाऊँ।
मैं तो माताजी की आज्ञा का पालन करने आया हूँ, आगे-आपकी
मर्जी।”

मेरा यह वक्तव्य सुनकर अब तो दत्त जी एक दम हीले पड़
-गा। गाराजगी ने अपने लारे खिंचा अन्तर्गत हुए उल्टे-कहा -

“अजीब पगली मैं हूँ आप पड़ें हैं। ऐसा लगता है कि
मेरे लिए वे अपनी जान देकर रहेंगे। मुझे पता है कि मैंने
आपको बहुत सिखाया। यह राखी स्वीकार करने के लिए आती है
मेरे पास कोई-कारा नहीं है। यदि मैं इसे स्वीकार कर दूँगा
तो आप उसे लीजें देंगे और मेरे कान खिंचने वह फिर यहाँ
-दौड़ी-दौड़ी आएगी।”

इतना कहकर उल्टे ने अपनी पत्नी को आवाज दी। वह अन्दा
-के दगरे में थी। उनका लिय उनकी पुत्री भारती भी आई।
दत्त जी ने उन दोनों में मेरा परिचय कराया और अपनी पत्नी से

बोले -

"माताजी ने कुछ ऐसे मेरे लिए भिजवाए हैं। वह राखी सरसजी अपने हाथ आए हैं, बोली लूँ को नहीं?"

छिपती दत्त ने मुसकरते हुए कहा -

"आदि आप में कलिया करने का लहस है, तो अष्टपक्षीकार कर दीजिए।"

छिपती दत्त ने यह मानूस का कि थोड़े महत्वाही की माताजी दत्तजी को कितना प्यार करती हैं। उन्हें यह भी मानूस का कि दत्तजी सिद्धी भी प्रकाश उन्हें ताराज करने का लहस ही दिया सकते। छिपती उन्होंने कहा कि आदि आप में लहस है तो वह राखी लीने -
हैं कलिया कर दीजिए।

मुझे यह अस्तर सिद्धा की पर राखी मैंने छिपती दत्त के हाथों में रख दी। उन्होंने उसे अपने अस्तर में लगाया की प्रेमी की मुलातेन लेने बोली -

"मई महिना, मैं आप ^{पूने सामने} माताजी की ममता का एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहूँगी और वह यह कि जब माताजी अर्जुन से मिली तो कलिया देने के लिए हम लोगों के पास भी आई। वे अपने हाथ कुछ वस्त्र और नकद राखी भी लाई थीं। क्या ये वस्तुएं आप लोगों ने उन्हें दी थी?"

मैंने कुछ सोचने का अभिनय करते हुए उसी कहा -

"जहाँ तक मुझे स्मरण है, वहाँ के महिना वरग ने कुछ वस्त्र माताजी को भेंट में दिए थे। ~~वे~~ राखी पुष्प नकद राखी का वह उन्हें लाया, अर्जुन की इन्दी की विभिन्न हाँवाओं में मिली थी। वह हाथ पैरों के मुँह को छो देती जाती थी। विदा करते समय वह समस्त राखी मैंने माताजी को सौंप दी थी।"

मेरा कर्णज पुनः छिपती दत्त ने फिर कहना प्रारम्भ किया -

"मैं उसी से बात कर रही हूँ। जब वे हम लोगों के पास आई तो तारे वस्त्र मुझे ~~वे~~ यह कह कर दे गई कि मैं इनका अपना उपलोग करूँगी, ये हमलोग आप को जाएंगे। नकद पैसा बड़ी माताजी की हाँवा उन्होंने हम लोगों को दिया। वे दत्तजी

को फिराने देई गई थीं उनको बालों से उंगलियाँ फिराने लगीं।
 कुछ देर बाद उन्होंने कोबाज देकर मुझे कहा कि तुम जाओ।
 मैं बोली - बहू! देव तो इसके तलिये को जिम्माफ किन्ना भेज होगा
 है, कोई हाथ जिम्माफ लादे, मैं इसे बदल देती हूँ। मैं कहा कि
 तुम जा तुम जिम्माफ ले कोई की ओर बदलने का उपक्रम स्वयं करोगी।
 मुझे राग आते हुए देव माँ ने कहा - बहू जिम्माफ मैं बदल देती हूँ, तू तो
 मेरे लिए एक आमी-चाय बना ला। मैं कहा चामी गई। माँ ने
 उन्हें दूसरी ओर करके बदलने को कहा कि तलिये लींच कर अपना
 जिम्माफ बदल दिया। जब मैं चाय लेके आई, तब तक वे अपना
 काम पूरा कर चुकी थीं। कुछ देर बाद उन्होंने आने की इच्छा प्रकट
 की। उन्होंने कई बार इसका मन्ना-पूमा की। कुछ बारीकियों को
 हिलाते देकर चली गई। ११

इतनाकर की प्रीमती दत्त को ने कुछ इस तरह का आशय दिया
 मैं ने कुछ भूल गई हूँ। इससे पहले उन्होंने अपनी पुत्री माँ की
 को कोबाज लगा कर कहा कि अपने चाचाजी की लिए चाय लेकाओ।
 मेरे लिए चाय का आदेश देकर उन्होंने कि कहना प्रारम्भ किया -

आपने सोचा होगा कि अपने दो पहलू माँ ने इनके तलिये को
 जिम्माफ बदल दिया, तो इस में क्या लफ्फा बात हुई। मैं कहती हूँ कि
 जो बात हुई थी, वही तो अब आपका कहने आ रही हूँ। लगभग
 एक लफ्फे बाद जब इनके तलिये को जिम्माफ कि भेज होगा
 तो मैं एक हाथ जिम्माफ लाकर उसे बदलने लगी। उसी ही मैंने
 पुराना जिम्माफ लींचा तो अभी दूर तोर ही तोर दिख गई।
 उनमें ज्यादा तर तो ही-माँ सुधारने ही तोर थे। नोर्वे की इस
 बारी में हम अभी लोग प्रयोग कर चकित थे कि ये कल में काए।
 उन्हें यह समझते ही नहीं लगी कि यह मेरी कारगुजारी माँ की
 है। उस दिन को नक्शा हमारी आँखों में ^{प्रतीक} जया जब माँ ने
 कोबाज को जिम्माफ बदलने को को-चाय बनाने को बहाने मुझे
 कहा भेज दिया था। वे तलिये को लींच को कहा लगभग तीन
 लफ्फे सुधार के तोर सब गई थीं। ११

प्रीमती दत्त का यह संस्करण हम को दिखाने होगा।

मैं सोच रहा था कि अलौकिकियों ने मैं को जो कुछ दिया
 वो, वो सब वो जगह से लेते जो बहुत ही दूर है और जो कुछ देना
 था वह उन्होंने मेरे द्वारा निज निज दिया । मैं तो एक भाग्यी को कुछ
 देकर ही गई । उन्होंने अपने अर्ध शरीर से दुर्गम यात्रा करके
 पार करके हमें दर्शन दिए, अपने-पुनः एक काशीय हम भाग्यी
 को दिए जो हमें जो सब करने का अवसर दे गई कि हमने
 शरीर-आत्मनः भगवत्सिंह की पूजनीयता का दर्शन किए
 हैं जो अन्तः सामर्थ्य प्राप्त किया है ।

दत्तजीका मैंने नामी सम्बन्ध लिखा था । दत्ता-सम्बन्ध को
 जब मैंने अपने अनुमानों में ही उन्होंने कहा -

“ भोड़ी देर को ठहरिए, मेरे आत्मिकी सामर्थ्यों के साथ काम
 का सिद्ध हो गया है । आप अपने ही दत्ताकातेकर भीजिए ।
 यह विचार मुझे अच्छा लगा जो मैं कर गया ।

कुछ देर बाद जो सम्बन्ध आए, यद्यपि अपने पहले जैसी -
 मुग्धता नहीं हुई थी, पर मैं उन्हें दोबारा ही पहचान गया । मैं
 जो श्री योगेशचन्द्र चटर्जी । श्री चटर्जी को काशी-काशी के
 अन्तर्गत सजा हुई थी । काशी में भगवत्सिंह ने इन्हीं
 निर्देशों में काम किया था । भगवत्सिंह महामन्त्र के लोचन-क्रम
 में मेरा अपने वन-व्यवस्था से मुक्त था जो अन्तः एक चित्र में
 मेरे पास था । दत्तजी ने मेरा नाम उन्हें बताया तो बड़ी काशीयता
 के साथ उन्होंने कहा कि मैं इन्हें जानता हूँ । जब मैं उनके
 चरण-स्पर्श करने मुक्त हो बीच में ही रोके तो उन्होंने बाहुओं में
 भरकर मुझे गले से लगाया जो बोले - आत्मिकी-भोग
 यह तरह से मिलते हैं ।

बाद-बाद के क्रम में श्री योगेशचन्द्र चटर्जी ने मुझे पूछा -
 “ सरलजी, आप-दिग्गी मैं ठहरें कहां हैं ? ”

उनके इस प्रश्न को सुनकर मैं हकपका गया । कुछ ही क्षणों में
 मुझे देते नहीं बना । मुझे अस्मत्त्व की स्थिति में दोष का भी
 चटर्जी ने - दत्तजी भी -

“क्या आप किसी ऐसे स्थान पर ठहरे हैं, जिनके विषय में हमें
बताना उचित नहीं समझते?”

“नहीं, उत्तर था -

“जी नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है। मैं अपने ठहरने का स्थान
बताने में इतना ही संकोच कर रहा था कि बात देने पर मुझे खबर मिली जहाँ
की आशंका है। अभी-अभी सिर्फ दत्तजी बाप मेरी माइ-जेन्चर हो चुकी
है। जी, बात यह है कि मैं लेटल कशोका में ठहरा हुआ हूँ।”
लेटल कशोका में ठहरने की बात सुनकर श्री चतुर्वर्ती ने कुछ
गिराते पैर तक देखा। वे कुछ कहें, शक पहने ही श्री बड़केश्वर दत्त
बोल उठे -

“आतिथ्यारोहों पर मिलते हैं और लेटल कशोका में ठहरते हैं। और
मैं तो कुछ कुछ नहीं करूँगा। आप ही इनसे कुछ कहिए योगेश दा।”

इसका बारी भी श्री योगेश दा की। उन्होंने कहा -

“लेटल जी, आपने यह अच्छी बात नहीं की। यह मान कि श्री दत्तजी
सुनने ही कलमाल ने एक छोटे से बाई में हैं और आप इनसे यहाँ नहीं रिक मिलते
थे, पर आपको मेरे भावात्ता का पता तो था, आप मेरे पात्र क्यों नहीं आए?”

इसका उत्तर मुट्ठी में भी बारी मेरी भी। मैंने कहा -

“मुझे मानूँ कि योगेश दा कि आप हाँ सदा हैं और आपने पात्र
बाप लेने में अच्छा व्यवहार भी है, पर मुझे मत भी तो मानूँ कि आप
अनेक प्राणी हैं और एककियों का प्या भूतों का डेरा कहलाता है। यदि
मैं वहाँ पहुँचता और मन्त्र या कर्मों का ताला लटकता हुआ दिखाई
देता तो मैं क्यों जाता?”

मेरी बात सुनकर योगेश दा खूब हँसे। वे कुछ कहें, शक पहने ही
मैंने अपनी मुँहाई घरी करती-धारी -

“सच बात तो यह है योगेश दा कि कुछ वर्ष पूर्व एक मित्र के हाथ दिक्की
आया था और एक मित्र के हाथ एक लेटल में ठहरा था। उस समय उसके
किराया आधी के नहीं था। इसका उबन आया तो किराया दुगुना बढ़ा
हुआ पाया। मैंने सोचा कि यदि ऐसी मेरे बँहकर लेटल का किराया
पूछता फिरा तो अपना तो दिनामा ही पिट जायगा। इसीलिए मैंने
निर्णय लिया कि लेटलों में रेट पूछकर बड़े पय में आने के
बजाय जीवन में एक बार एक बड़े लेटल में ठहरने का ही आनन्द
उठा लिया जाय। यही कारण है कि मैं लेटल कशोका पहुँच
गया।”

मेरा तर्क सुनकर दोनों में से किसी ने प्रतिवाद नहीं किया,
लेकिन श्री बड़केश्वर दत्त ने अपना दिनामा सुनाते हुए कहा -

"मातृ बहूँ सरलजी कि आप हम लोगों के बीच का नाता
 कर हमारे उन सभी मामलों से परिचित हो लें जो यहाँ दिल्ली में
 हैं। इसलिए मेरी राय में यह है कि आप होटल का शोका में
 चौबीस घण्टे रह लीजिए, जिसका किराया आप दे चुके होंगे। अपने
 पश्चात् आप योगेश दा के पास पहुँच जाइए। मैं यह दायित्व
 योगेश दा को देता हूँ कि काम के आपका समाप्त होटल का शोका
 में उठाकर आपकी कंपनी के लिए पर लो जाएँ।"
 योगेश दा ने इस दायित्व को भी अपनी सहमति प्रकट की-
 "मुझे भी आपकी सहमति देने में कोई आपत्ति नहीं थी।
 मैं उसे दिवाजिती देर भी दोषी के साथ रहा, अतः मिलने
 कोई आपत्ति नहीं होगी पहुँच रहे। उन लोगों में से भी जो जेल
 न्यायिशासक विभाग, भी प्रकटीष्ट, भी मन्त्रालय गुप्त और
 भी विष्णु शरण कुबालिसे। मुझे वह एक मरीज का कहना भी,
 किसी कर्मचारी का काम भरा रहा था। उसे कोई काम रहे
 अपने साथ शक्ति की कोशिश का काम जाता की वह लोग
~~आपसे के बीच मिलने मिलने का कारण उठाते दिवाजि दे रहे थे।~~
 दत्तजी से अगले दिन मिलने का समय लेकर मैंने उसे आदिन
 को लिए दिया भी।

दत्तजी के बलबले

अगली सुबह भी योगेश चन्द्र-दत्तजी मुझे होटल का शोका में
 आकर आपने सांत्वना-मिला पा लो गए। आपत्तिकारी-आन्दोलन के सम्बन्ध
 में उन्हें भी बातचीत होती रही। सुबह ग्यारह बजे मैं फिर दत्तजी के
 पास पहुँच गया।

दत्तजी ने मुझे आपकी की अवाध सत्य देने की दृष्टि में
 खोजना बना रखा भी। उन्होंने भीतर दत्त से कहा -

"दिल्ली में सर्वस आर एर बहुत दिग लेगा है। ऐसा करो कि
 आज तुम भारती को सर्वस दिवा दो। मेरी चिन्ता मत करो। जब तक
 तुम लोग लौट कर आओगे, तब तक सरलजी मेरे पास रहेंगे।
 दवाएँ आदि देने के लिए सिस्टर से आती ही रहती हैं।"

श्रीमती दत्त अपनी पुत्री को लेकर सर्वस देने के लिए
 चली गई। दत्तजी के पास मैं अकेला रह गया। एक ही

“बात यह है सरलजी कि आप हम लोगों को बीच दो-तीन दिन सू-
कर हमारे उन हमी हाथियों से परिचित होने जायें जो यहाँ दिल्ही में
हैं। इसलिए मेरी राय में यह है कि आप होटल अशोक में
जोबीत प्यारें रह लीजिए जिसका किराया आप दे-चुके होंगे। उसके
पश्चात् आप योगेश दा को पास पहुँच जायें। मैं यह वायित्व
योगेश दा को देता हूँ कि काम के आपका हाथान होटल अशोक
में उठाकर आपका कपने निवास पर ले जाएँ।”

योगेश दा ने इस वायित्व के प्रति अपनी सहमती प्रकट की-
और मुझे भी अपनी सहमती देने में कोई आपत्ति नहीं थी।
मैं उस दिन जितनी देर भी दूतजी के साथ रहा, उतने मिलने
की कामेकारी लोग पहुँच रहे। उन लोगों में से श्री प्रोफेसर
गन्धकिशोर निगम, श्री प्रतापी सिंह, श्री मन्मथनाथ गुप्त और
श्री विष्णु शरण कुवालिया। मुझे वह एक मरीज का कहना नहीं,
किरी कमरे हाउस का कमरा लग रहा था। जहाँ कोई काम पर
अपने साथ शर्त की कोठाल का काम जाता और वह लोग
~~काम करने के बीच~~ जाने-घरने का आनन्द उठाते दिखाई देते थे।
दूतजी से अगले दिन मिलने का समय लेकर मैंने आगे आदिन
को लिए निदा ली।

दूतजी के बलबल

अगली सुबह श्री योगेश-चन्द्र-वरजी मुझे होटल अशोक में
आकर अपने सांघ-निवास पर ले गए। कामेकारी-कार्यक्रम के सम्बन्ध
में उन्हें भी बातचीत लेनी रही। सुबह ग्यारह बजे मैं फिर दूतजी के
पास पहुँच गया।

दूतजी ने मुझे काफी कौतुकपूर्ण समय देने की दृष्टि से
सौजन्य बना रखा था। उन्होंने भीमती दत्त से कहा -

“दिल्ली में सर्कस आए हुए बहुत दिनों से हैं। ऐसा करो कि
आज तुम भारती को सर्कस दिखा दो। मेरी जिज्ञासा है कि जब तक
तुम लोग और कर-काओगे, तब तक सरलजी मेरे पास रहेंगे।
दवाएँ आप देने के लिए सिस्टर से आती ही रहती हैं।”

भीमती दत्त अपनी पुत्री को लेकर सर्कस देखने के लिए
चली गईं। दूतजी के पास मैं अकेला रह गया। इससे

प्रार्थना। कामोत्पत्ति ने पदम में कृष्ण जी से कुछ व्यक्तियों को निराकर
में चाहता था। उनसे अनुमति लेकर मैंने उनसे पूछना था। उन्होंने वताना
प्रारम्भ किया। मेरा पहला प्रश्न था -

इस जोड़ी को बनने का कारण क्या है। अगर हम इसे देखें तो यह एक बहुत ही अच्छी जोड़ी है। इस जोड़ी में बहुत सारे अच्छे गुण हैं।

मगतासिंह के पास मेरी पहली भेंट कानपुर में हुई जब मैं पारदर्शक प्राणिकारी आन्दोलन में ^{कानपुर} कानपुर पहुँचा। उस समय कानपुर के प्राणिकारी श्री योगेशचन्द्र वर्मा जी और श्री सुरेश महोपाध्याय के निर्देशन में कार्य कर रहे थे। सुरेश दा ने ही मेरी भेंट मगतासिंह से कराई। कानपुर के दूसरे लोग भी हम लोग पहुँचे। मगतासिंह पहले ही एक भाड़ी में बैठा हुआ सुरेश दा की प्रतीक्षा कर रहा था। सुरेश दा के सामने पहुँचते ही मुझे पास पहुँचा गया। उस समय वह सरदारों के निवास में था। ^{एक अप्रतिम दृश्य था} मैंने कहा - सुरेश दा के तेवर बदल गए। उसके चेहरे का रंग भाला हो गया और जम्बुने झूम गए। ऐसा लगा, जैसे वह मुझा हाथ कर मुझे मारने के लिए मचलने लगा हो। मैं उसके क्रोध का कारण समझ गया और उसका क्रोध शान्त करने के उद्देश्य से मैंने कहा - मुझे यहाँ सुरेश दा ने भेजा है। वे दा। सिनेट के अन्दर ही यहाँ आने वाले हैं। मैं अपना कबज आगे आ पारी राखता, उसके पूर्व ही सुरेश दा वहाँ पहुँच गए। सुरेश दा ने हम दोनों का परिचय करा दिया और उसके पश्चात् हम लोगों के दिल मिलते ही चले गए।”

मेरा अगला प्रश्न था -

“सुनी यह बताइए कि दिल्ली की केन्द्रीय असेम्बली में क्या-
विमोटे करने के लिए आप दोनों की जगहें क्यों बनी ?”

यह भगवद्गीता का ही प्रभाव था कि केन्द्रीय-कमेन्सनी में
बम फेंका जाय। पार्टी के दो सदस्यों को वहाँ जाना था। मेरा
नाम तो लगभग निर्विवाद रूप से तय हो गया। मेरे साथ
जाने के लिए भगवद्गीता ने अपना नाम स्वयं प्रस्तावित किया। पार्टी
के लोग भगवद्गीता को खाना ली-चाहते थे, इसलिए भगवद्गीता
को नाम छोड़ दिया गया। बाद में मुवदेव भी भगवद्गीता में
कहातुनी हुई थी। भगवद्गीता ने इतना आग्रह

किंवा किं तब तक जानें के लिए उसे कुछ चुन लिया गया। क्योंकि
भगताहिने के स्थान पर अपना नाम जुड़वाने के लिए राजकुल ने
आकाश-पाताल एक कर दिया गया, पर उसे सम्मति नहीं मिली। मरने
मरने के लिए राजकुल बहुत उतावला रहता था।

“कतजी, मैं उन छोटी-छोटी बातों की तरह में नहीं जाना चाहूँगा
जो बहुत-बहुत हैं। लोगों की चारणा है कि दोनों बम भगताहिने
ही फेंके। हमने सच्चाई क्या है को आप लोग इतने बड़े कर्तों को
दिखा कर कैसे लेंगे?”

“सच्चाई यह है कि एक बम भगताहिने ने फेंका था और दूसरा
मैंने। आगेम्बली की दरमि-दीर्घा में जाने के लिए हम लोगों को
अगुमारी-पत्र हमारे साथी जयदेव कपूर ने उपलब्ध करा दिए थे।
जब हम लोग अन्दर पहुँच गए तो एक परिचित सदस्य द्वारा वे
दोनों अगुमारी-पत्र हमारे बाहर निजवा दिए। यदि वे हमारे ही-
पास रहते तो हमारी गिरफ्तारी पर पुलिस को शक मालूम हो
जाता। आगेम्बली के किन्तु सदस्य ~~हम~~ की अनुशंसा से हमें
अगुमारी-पत्र मिले हैं। दरमि-दीर्घा में जाते समय हम दोनों
को लिखा था कि की नेकर को सफाई करीज। हम लोगों ने
दोनों नेकर पहले हुए थे, जिन्होंने उनकी जेबों में बम फासानी से
रखे जा लेंगे। जेबों में बम रखने के पश्चात् हम दोनों ने उसे
दिग के ताजे आवका भी पोंगा बना कर जेबों में फुल्ले डाले
थे, जिन्होंने झुली हुई जेबों को को लोग कमजोर लगा लेंगे कि
आवका रखने के कारण ही वे झुली हुई हैं। पहले बम भगताहिने ने
फेंका और कुछ क्षण पश्चात् ही उसी स्थान पर दूसरा बम मैंने
फेंका।”

“कतजी, यह तो मुझे मालूम है कि आपकी योजनानुसार
बम-विस्फोट करने के पश्चात् आप लोगों ने अपनी गिरफ्तारियाँ की,
पर मैं यह पूछना चाहता हूँ कि यदि आप चाहते तो क्या
आप लोगों को वहाँ से भाग निकलाने के अवसर थे?”

“हम लोग बहुत आसानी से वहाँ से बच निकल सकते थे।
प्रधान बम प्रहार के पश्चात् ही हमारा बम में इतना धुँआं भर

गया था और इतनी भादड़ मच गई थी कि भंडों में सिमक कर हों
लोग बहुत आसानी से बाहर निकल सकते थे। बाहर निकलने पर
सारी चन्द्रशेखर आजाद किसी गाड़ी में होंगे तो उड़ सकते थे, और
कि उनका विद्या था और वे इसके लिए तैयार थे। कच भागने
के अवसरों का हम लोगों ने जान-बूझ कर लाभ नहीं उठाया।”

आग्नेवाही-आन्दोलन की आगों की धरनाओं का बहुत कुछ फायदा
मुझको था, शिवाय इसके सम्बन्ध में मैंने कभी भी कुछ नहीं
सूँचा। उसी सम्बन्धित प्रश्न में प्रस्तुत किया -

“क्यों, जब आप आजीवन-व्यापार की राजा बान्धवा बूढ़े तो
आपकी क्या प्रतिक्रिया थी?”

एक गहरी साँस भरकर कृष्ण ने कहना प्रारम्भ किया -

“जेल में बूढ़ने की मुझे खुशी नहीं हुई। अपने लारे सारी
भगतीत है चिर-विद्योह हो चुका था। जेल में बूढ़ने के बाद
मैं दिग्गि पहुँचा और उस जेल के दर्शन करने की इच्छा जाग्रत
हुई, जिसमें बग-विस्फोट के पर्याप्त मुझको और भगतीत के
बन्द किया गया था। मैंने देखा कि वह जेल समाप्त हो चुकी थी
और उसके स्थान पर कोई नई इमारत खड़ी हो रही थी। उस स्थान
पर पुरानों की तरह मुझे बूमते-फिरते देव का एक इंजीनियर
ने मुझ से पूछा कि मैं क्या लोग रहा हूँ। मैं क्या लोग रहा था, यह मैंने
उसे बताया। उसने जेल की उस कोठरी का स्थान लोजने में मेरी
बहालगी। उसने जेल का पुराना नक्शा निकाला और नई
इमारत के नक्शा के नक्शे से उनका सिमाना किया और एक
स्थान पर उँगली रखकर अने कहा कि यहाँ आपकी कोठरी थी।
फिर उस स्थान पर वह मुझे ले गया। जेल की उस कोठरी के
स्थान पर अब बेल का मैदान था और कुछ युवक-युवतियाँ वहाँ
बैठमिन्तन खेल रहे थे। मैं बड़ा हैदर उस मैदान की तरफ देखा
रहा। उन युवक-युवतियों ने तब तक कि मुझे खेल में रुचि है,
शिकाएँ मैं उनका खेल देव रहा हूँ। खेल की समाप्ति पर
उन लोगों ने मुझसे पूछा कि क्या आप

से मिलने कायें रहते हैं। मैंने उन्हें बताया कि मुझे विश्वास है
 खान्सी नहीं है, मैं तो उस स्थान को देख रहा हूँ जहाँ जेल की
 कोठरी में किसी समय भगत सिंह की बटुके रख रखे का
 बन्द किया गया था। मेरा यह कहना सुनकर उन लोगों ने
 बड़े आश्चर्य के साथ पूछा कि ये भगत सिंह की बटुके रख रखे
 कौन थे। यह जानकर कि यह गड़ माली को यह भी नहीं मालूम
 कि भगत सिंह कौन था, मैंने सोचा कि अब इस दुनिया में रहने से
 कोई लाभ नहीं जिसमें लोग आपने शहीदों को इतनी जल्दी भूल गए।
 मैं उन लोगों से यह कह कर चला गया कि आप लोग अपने घर
 के बुजुर्गों से या अपने भ्रातृजन से पूछना कि भगत सिंह की
 बटुके रख रखे कौन थे।"

दत्तजी का यह कहना सुनकर मुझे भी यह सोचने में लिए
 विवश होना पड़ा कि यह भूतदत्त पीढ़ी देश का क्या भला
 कर सकेगी। उसके बाद अगला प्रश्न था -

"दत्तजी, इस बदलाव का मूल कारण क्या है और इसके लिए
 आप किसको उत्तरदायी मानते हैं?"

"मेरी अपनी समझ के अनुसार इस परिवर्तन का मूल कारण
 यह है कि हमने खून-पसीने और त्याग-बलिदान का मूल्य नहीं दिया
 और दुनिया भर में यह हिंदोस पीटने लगे कि खून की खूब खूब
 बहाए बिना ही भारत को आजादी मिल गई है। इसका परिणाम यह
 निकला कि देश में अवसरवादिता पनप गई और लोग उन लोगों
 को जय बोलने लगे जिनके हाथों में सत्ता थी। क्रान्ति कारियों के
 श्रावण मरते परिवारों के लिए कुछ कानून के स्थान पर लोग अब यह
 कह चाली लूटने लगे हैं कि हमने आमुक्त क्रान्तिकारी को इतनी
 आर्थिक सहायता की थी। यहाँ राष्ट्रपति में मुझसे मिशन
 के लिए भी कई लोग आते हैं और कुछ तो अपने साथ
 पीले शॉल को भी ले आते हैं जिसे मेरी वगल में पीले
 रिलिन्गवा का यह प्रचार कर रहे हैं कि हमने दत्तजी के लिए इतना
 कुछ किया है। इसी तरह की एक सज्जना पदना आपकी

हुना रहते हैं। कुछ दिन पूर्व ही दिल्ली के रहने वाले एक पंजाबी
संजयन मेरे पास आए और लगे सुस्कार को कोसने कि यह सुस्कार
क्रान्तिकारियों के आसक्तियों के भरण-पोषण के लिए कुछ नहीं
कर रही है। अपनी उकाता को बचाव करते हुए उन्होंने यहां
तक कह दिया कि शहीद भगतसिंह की बेका इन दिनों भूतों
में रह रही है और उसके गुजारे के लिए मैं प्रतिभात कुछ दे दिया
करता हूँ। उनकी यह बात सुनकर मुझे क्रोध आ गया
और उनको डाँटते हुए मैंने कहा कि भगतसिंह ने तो शहीद
ही नहीं की थी, कि उसकी बेका कहाँ है आ गई। अपनी
गलती पकड़ी जाने पर वे ऐसे सिट्पिट्ट कि कई कहानियाँ बना
कर नौ-दो-ग्यारह होगी। ऐसे-ऐसे बश-भोग्य भोग रहे गए
हैं आज कल।”

इसी प्रकार की बश-भोग्यता को कई उदाहरण में अन्य
कई क्रान्तिकारियों के मुँह से सुन-सुनाया। दत्त जी ने उनसे
एक आग्रहों और जोड़ दिया। समय बहुत लंबी हो गया
था। दत्त जी से विदा लेने के लिए मैंने उनसे कुछ
व्याख्यान प्रश्न किए। उनसे मेरा एक प्रश्न था -

“दत्त जी, बंगाली होते हुए भी आप इतनी उच्च और
साहित्यिक हिन्दी बोलते हैं कि हम हिन्दी-भाषियों को आपकी भाषा
हिन्दी बोलने में प्रेरित होता है। इसका कारण क्या है?”

संजय भाव से दत्त जी ने कहा -

“और आई बंगाली-जीवन में तो हम पैदा भर हुए हैं, हमारा पूरा
जीवन तो हिन्दी-भाषियों के बीच व्यतीत हुआ है और फिर उग्र प्रदेश
के संस्कारों की वजह से हम सबको न पड़ेगी। कानपुर में गणेशसिंह
विद्याजी और बालकृष्ण शर्मा जकीन और दिग्गज हिन्दी-सेवियों का
साहित्य हमें भरपूर मिला है। मुझे केवल हिन्दी तो
भगतसिंह बोलता था। वह तो एक प्रहंसा हुआ हिन्दी का भोला
और पत्रकार भी था। हिन्दी का बहुत कुछ अभ्यास मुझे उनके
साथ रहे का हुआ है।”

कुछ सोचने की मुद्रा में बिना कोई प्रश्न किए मैं कुछ क्षण
 मौन बैठ रहा। मुझे इस प्रकार मौन दोषकार क्षेपणी ने ही प्रश्न किया -
 "किन विचारों में लोगें सत्यजी काय?"

मैंने कुछ कहना शुरू कर दिया -

"मैं सोचने लगा था कि आपने अपने आजीवन जीवन में
 कोई-एक-उत्तर देते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता होगा जब
 भोजन है आपकी भेंट नहीं होती होती। मैं जानना चाहता हूँ
 कि क्या आपने अपने आजीवन जीवन में ऐसे दिन देखे हैं
 और उन स्थिति में आपको कैसा लगता था?"

मेरा प्रश्न पूरा कर क्षेपणी कुछ सोचने लगे। फिर बोले -

"कोई एक घटना है तो मुझे, हमारे आजीवन जीवन
 में तो ऐसे अवसर बार-बार आते थे जब कभी एक दिन कभी
 दो दिन कभी कभी तीन-तीन दिन तक हमें भोजन के दर्शन नहीं
 होते थे। उन हालात में भी हम लोग अपना काम नहीं बंद करते
 थे और जिसके जो दायित्व दिया जाता था, वह उसे पूरा करके
 दिया जाता था। मैं आपको आगरा की एक घटना सुना रहा हूँ।

"उस दिनों लखी अलीनगर नाम का हम लोगों को आगरा
 में बसेलाना पड़ा रहे था। उनके-वर्ग जाने के बाद भी हम लोग
 कुछ दिन आगरा में रहे। मुझे पता था कि एक मकान में
 मेरे साथ जयदेव कपूर, शिव वर्मा और विजय कुमार सिन्हा थे।
 भगत सिंह की-बन्धुओं का जन्म नहीं बल्कि-वर्गों में हम लोगों के
 पास जो पैसा था, वह खत्म हो गया। बराबर तीन दिन तक हम लोगों
 को भोजन नहीं मिला। चौथे दिन हमारे लखी शिव वर्मा होटल में
 रहने वाले अपने एक मित्र के पास गए और अपने फर्कवारी की
 बात उन्हें कह चुके।

"दोपहर के भोजन के लिए लखी ने शिव वर्मा को धावावात
 में पहुँचने का निपटारा दे दिया। वे दोनों सिनेमहा में भोजन करने
 गए। भोजन पर लखी का नाम जहाँ ही सुना, शिव वर्मा कुछ रोहिया -
 उठाकर अपने कोट की जेब में रख लेते। इस प्रकार उन्होंने अपना
 पेट भालिया और अपने लखीसों के लिए बार-बार रोहियाँ-पूरा कीं।
 भोजन समाप्त करने शिव वर्मा ने अपने लखी से दो आने दिये। लिए और
 एक-दूसरे में दही भरकर हमारे पास आ गए और बोले, हम लोगों को भोजन
 भोजन ले आया है। उन लखी में कच्चा-हो-कच्चा पानी और कोई कुछ कपड़
 रखा था। मैंने कहा कि इस लखी की यही राय थी, जयदेव और विजय के आने पर
 लखी ने। मैं किताब पढ़ने में लगे हो गया। आप लखी का एक बन्धु रोहियाँ-पूरा

द्वितीयः पक्षः समाप्तः पुनश्च श्री विद्यामते (भाग १) । भवने भाग १ ११३
 इन भागों में कैसे-कैसे दिन बिताएँगे । विद्यामते ने के पूछ में
 मैंने उगले आनेम प्रश्न किया -

“दत्तजी, मैं एक हिन्दी को मीठेन को कावै हूँ । आमी-आमी
 शरीर भगताहि पा मेरा महाकाव्य धन-मुक्त है । अब मुझ में
 आपकी क्या अपेक्षा है ?”

उगले उत्तरदा -

“आप है किसी अपेक्षा का हाको आवेना तो नहीं है, पर
 बुद्धि आप ने इन भागों पा एक महाकाव्य मिले समा है, तो
 आप है यह अपेक्षा कृता सामाजिक हो जात है कि आप क्रांतिकारी
 पर को कुछ भी लिखेंगे । यह आपकी इच्छा है कि आप
 गद्य में लिखें या पद्य में । मेरा परामर्श तो यही है कि आप
 स्वयं को इस आवेनाम से तटस्थ मानकर लिखें । आपने भोग में
 भी यश-लोकमता को आत्म-पुनर्जा की गंध नहीं आना
 चाहते । सिखा ही आप मुझे यह भी भगता है कि क्रांतिकारी पर
 लिखने के कारण आप मुसीबत में भी पड़ सकते हैं । आप अपने
 लिए तैयार रहिए । मेरी समस्त शुभकामनाएँ आपने साथ हैं ।”

आपकी निशातीक रूप में दत्तजी ने श्री अपना एक ताजा
 फूल भी मुझे दिया, जिसे पा उन्होंने मेरे सामने ही लगाकर
 दिया । उन्हें विदा लेकर मैं चला आया ।

इति पत्रम्

उगले इस मित्र के कुछ माफ़ पश्चात्त ही यह समझ पावने का
 कि दत्तजी इस दुनिया में नहीं रहे । उन्होंने आपकी यह इच्छा
 पहले ही पूर कर दी थी कि मेरा दाह-संस्कार श्रीसानी भगताहि
 की समाधि के निकट ही किया जाए । तब मेरी समझ में आया
 कि शरीर भगताहि की माताजी दत्तजी से शीघ्र मिल लेने का
 प्रबल कारण मुझ में क्यों कही रही थी ।

महाकवि आप के पद-चिह्नों पर

मोक्ष-क्रम जारी था । गद्य की कुछ पुस्तकें भी आरंभित भगताहि
 श्री ‘कलेस सेनाजी चन्द्र शेखर आपदा’ महाकाव्य प्रकाशित हो चुकी थी । पत्र में

द्वितीयः पक्षः समाप्तः पुनश्च श्री विद्यामते (भाग १) । भवने भाग १ ११३
 इन भागों में कैसे-कैसे दिन बिताएँगे । विद्यामते ने के पूछ में
 मैंने उगले आनेम प्रश्न किया -

“दत्तजी, मैं एक हिन्दी को मीठेन को कहूँ। अभी-आभी
 शहीद भगतसिंह का मेरा महाकाव्य छप चुका है। अब मुझ में
 आपकी क्या अपेक्षाएँ हैं?”

उगले उत्तरदा -

“आप हैं किसी अपेक्षा का हाथों आदिना तो नहीं हैं, पर
 बुद्धि काप ने हमलों का एक महाकाव्य मिले आता है, तो
 आप से यह अपेक्षा कितना स्वाभाविक हो जाती है कि आप क्रांतिकारियों
 पर कौन कुछ भी लिखेंगे। यह आपकी इच्छा है कि आप
 गद्य में लिखें या पद्य में। मेरा परामर्श तो यही है कि आप
 स्वयं को इस आन्दोलन से तटस्थ मानकर लिखें। आपके जीवन में
 भी यश-लोकप्रियता और आत्म-प्रकाश की गंध नहीं आता
 चाहिए। सिखा ली आप मुझे यह भी लगता है कि क्रांतिकारियों पर
 लिखने के कारण आप मुसीबत में भी पड़ सकते हैं। आप अपने
 लिए तैयार रहिए। मेरी समस्त शुभकामनाएँ आपसे हैं।”

आपकी निशातीक रूप में दत्तजी ने श्री अपना एक ताजा
 फूल भी मुझे दिया, जिसे मैं उन्होंने मेरे सामने ही हलका
 किया। उन्हें विदा लेकर मैं चला आया।

इति पत्रम्

उगले इस मित्र के कुछ माफ़ परश्चर ही यह समझा पढ़ने का
 कि दत्तजी इस दुनिया में नहीं रहे। उन्होंने अपनी यह इच्छा
 पहले ही प्रकट कर दी थी कि मेरा दाह-संस्कार श्रीलाली भगतसिंह
 की समाधि के निकट ही किया जाए। तब मेरी समझ में आया
 कि शहीद भगतसिंह की माताजी दत्तजी से शीघ्र मिल लेने का
 प्रबल कारण मुझ में क्यों कटती रही थी।

महाकवि सायब के पद-चिह्नों पर

मोक्ष-क्रम जारी था। शक की कुछ आतकों की आह्वित भावनाएँ
 और ‘कलेश सेनाजी चन्द्र शेखर आज़ाद’ महाकाव्य प्रकाशित हो चुकी थी। पत्र में

में न उगरी आनेम प्रश्न किया -
"दत्तजी, मैं एक हिन्दी का लोकरा को कहूँ। अभी-अभी
शहीद भगतसिंहों का महाकाव्य धन-मुक्त है। अब मुक्त है -
आपकी क्या अपेक्षा है ?"

उत्तर -

"आप है किसी अपेक्षा का हक तो आपकी नहीं है, पर
युक्ति आप ने हमलों में एक महाकाव्य लिख दिया है, तो
आप है यह आशा करना सामयिक हो जात है कि आप क्रान्तिकारियों
पर को कुछ भी लिखेंगे। यह आपकी इच्छा है कि आप
गद्य में लिखें या पद्य में। मेरा परामर्श तो यही है कि आप
स्वयं को इस आन्दोलन में तत्पर मानकर लिखें। आपकी भोजन में
कोई भी यश-लक्ष्मणता को आत्म-प्रकाश की गंध नहीं आना
चाहिए। हाथ ही हाथ मुझे यह भी लगता है कि क्रान्तिकारियों पर
लिखने के कारण आप मुसीबत में भी पड़ सकते हैं। आप उन्हें
लिखें तब रहिए। मेरी हमस्त शुभकामनाएं आपसे साथ हैं।"

आपनी निश्चयीकल्प में दत्तजी ने से अपना एक ताजा
कोले भी मुझे दिया, जिसे मैं उन्होंने मेरे सामने ही खाकर
किया। उन्हें विदा लेकर मैं चला आया।

इस प्रकार

उन्होंने इस निमित्त के कुछ साधन प्राप्त की यह समझा पढ़ने को
सिखा कि दत्तजी इस दुनिया में नहीं रहे। उन्होंने आपकी यह इच्छा
पढ़ने ही पकड़ कर दी थी कि मेरा दाह-संस्कार मेरी मातासिंहों
की समाधि के निकट ही किया जाए। तब मेरी हसल में कहा
कि शहीद भगतसिंहों की माताजी दत्तजी से शीघ्र मिलने का
प्रबल काग्रत मुझ में क्यों कटती रही थी।

महाकवि माधव के पद-चिह्नों पर

मोहन-क्रम जारी था। गद्य की कुछ पुस्तकों के आलोचिता भगतसिंहों
को "अजेयसैनानी-चन्द्रशेखर-अज्ञात" महाकाव्य प्रकाशित हो चुके थे। धर्म
जो कुछ था, वह इन पुस्तकों की भंड-चढ़-मुकाबल। पुस्तकों ने

कहना प्रारम्भ किया - हमें बेचो, नहीं तो हम तुम्हें बेच देंगे ।
 सुझावों में लिया गया नहुण भी 'आँखें' लाल-दीली करने लगा ।
 व्याज की रकम मूल धन है आगे बढ़ जाने के हीसले दिखाने लगी ।
 बच्चों ने लेंगला किया तो खुले में दूकान लगा डाली । दिन भर
 तपस्या की, एक पुस्तक बिकी । स्टाइलिक मित्र पाएँ तो एक-एक
 पुस्तक उठा कर-चल देते । कुछ तो ऐसे वरुणेंद लेते जो पुस्तक
 का पहला पृष्ठ खोज कर सामने कर देते वही कहते - 'इस पर
 प्रेम भेंट' लिखत । मुझे 'प्रेम भेंट' लिखना ही पड़ता ।

- विज्ञान ने सुझाव - बाहर निकलिये और बड़े-बड़े शहरों में
 पुस्तक बिक्रेताओं को पुस्तकें दिखाइए, वे अवश्य खरीदेंगे । बाहर भी
 निकलना । पुस्तक-बिक्रेताओं ने मरपुर कमीशन की अँग की की
 गवाह पैसे न देकर पुस्तकें विक्रयार्थ रखवाली । लगभग बीस हजार
 रुपयों की पुस्तकें बिकरी की । एक भी पैसा वापस नहीं आया । (काले
 काले को लिए धाँवर लगाने में जो पैसे खर्च हुए जो खर्च हुआ,
 वह कमजोर । यह प्रयोग असफल रहा ।

दूसरा प्रयोग किया । विभिन्न विद्यालयों में जाकर बिना पारिश्रमिक
 लिए यही दो पाँचों की गई कमितारें चुनाई । पुस्तकें भी दिखाई ।
 कमितारों की पुस्तकों की बहुत उथाल हुई । कुछ-कुछ पान्थों ने
 कुभाव किया - बच्चे पुस्तकें अवश्य खरीदेंगे । आप पुस्तकें छोटे
 पाँच-छोटे आइए । बिकने पर आपका पूरा पैसा भेज देंगे । हजारों
 रुपयों की पुस्तकें इतना ताल्लेड़ी । पुस्तकों के पैसे आना तो दूर,
 पत्रों ने उत्तर भी नहीं आए । यह प्रयोग भी निष्फल रहा ।

* पिछले दृष्टी में कही लिख आया हूँ कि मैंने मंच पर महाकाव्य
 माध्य की भूमिका को निर्वाह किया था । आपने महाकाव्य लेखन
 के कारण महाकाव्य माध्य को धीरे-विपन्नता में ही गुजारना
 पड़ा था । मुझे लगा कि वे स्थितियाँ मेरे जीवन में भी घटित
 होने लगी हैं । मेरी बहुकेश दत्त का कथन भी यह आगया कि अतिथियों
 पर लिखने के कारण मुसीबतों में भी पड़ सकते हैं ।

मुसीबत के दिनों में हीसला बगल रहा, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं
 में प्रकाशित महाकाव्यों की समीक्षाओं ने । समीक्षकों ने दिना लोच
 कर दोनो महाकाव्यों की पशंसा की । पाठकों के पत्र भी आए ।

कविता ने लिखा था - मैं भगवद्गिते महाकाव्य समझकर पढ़ चुका हूँ,
फिर भी मन नहीं भरता। किसी ने लिखा - भगवद्गिते महाकाव्य में
रोते-रोते पढ़ा है। मन्ना रोते-रोते क्यों नहीं पढ़ते, मैंने भी तो उसे
आँसुओं से सिंच-सिंच कर लिखा था। 'चन्द्रशेखर आजाद' महाकाव्य
के विषय में आदिनाथ पांडवों ने लिखा - इसकी पंती-पंती में
कविता है। इन छतिक्रियाओं ने हीतना बनाए रखा।

रहीम कृष्ण ने रास्ता दिखाया

उधारा ले न ले केर भरता है और न कर्ज-बुकाता है । यह आश्चर्यक
भाँति कर्ज-बुकाने के लिए कुद्वै करूँ । किसी समय पड़ह डुका रहीम
करी का एक दोहा याद आगया -

राहबन कुदिन के परे, दुरगाम और भाग, #
और अंशत पूर पर, अब घर भागत आग।

ब्रह्म किं कथा ना, 'मज्झिम' की 'चण्डिय' काजाद' महाकाव्यों
 के गढ़े बाँधकर राजस्थान के नगरों में जा पहुँचे। उदयपुर की
 कल्पना देख बनाया। सामान होने वाला चार पहियों का ठेला प्रतिदिन
 किराए से लेता, उसमें पुस्तकें सजाता और उसे ठेकता हुआ उदयपुर
 की गलियों की बाजारों में निकल पड़ता। लोगों का ध्यान आकर्षित
 करने के लिए कपड़े पर महाकाव्यों के चुने हुए उद्धरण लिखकर
 ठेलों के चारों ओर

नापड़ने पर पर्वतों पर ~~जिससे~~ सिखा कर देने की चारों ओर महका दिए गए थे।

पहले दिन तो पैर बड़ी मुश्किल से उठे। वही अनुभव हुआ जो
पहले दिन सुभाषचन्द्र बोस को कंधों पर बैठा लटकाने के लिए
लिए अन्त में गले के लिए निकालते समय हुआ था। अगले दिन
सैनिकों पर विजय पाई थी। निकल पड़ा। शहीदों के चित्रों को
उधर जोतें दर्शकों को आकृष्ट किया थी। ठेके के चारों ओर
भीड़ लगने लगी। कुछ सफेद पोश आते जो एक-दूसरे को
पुस्तकों का काफी भाग बढ़ाते थे। पुस्तक खरीदना न पड़े,
इतने लिए गुवाता-खिनी करते थे। पुस्तक को कोई लोभ दिया

कर उसे वहीं रख कर चले जाते। कुछ लाले लोग आते, जो बिना पूछे आपका परिचय देते और हठ कर अपनी कविताएँ सुनाते। जब मैं कहता कि भाई मैं कवि नहीं हूँ, मैं तो केवल फेंकी भगाऊ किताबें बेचने वाला हूँ, तो वे कहते कि कविताकी पुस्तकें बेच रहे हो तो कविताके विषय में कुछ समझते ही होंगे। गरज यह कि वे अपनी कविताएँ सुनाए बिना न माँगते। कुछ लोग आते जो पुस्तकोंके आवरण-पृष्ठों पर आंकित शहीदोंके चित्रोंके सामने हवा जोड़ते और कुछ पीस-पड़ा का चले देते। जब मैं उनके पीछे वापिस करने लगता, तो वे कहते—

“बाबू लाले, हमारे पास इतने पीछे नहीं हैं कि हम पुस्तकें खरीद सकें। जिन पुस्तकें भाईयों ने देव-दर्शन काले कुछ मेंट-पड़ाई जाती हैं, उही भावना से हम इनसे सच्चे राष्ट्र-देवोंके दर्शन करने के उपलक्ष्य में यह कीर्तियोग मेंट-पड़ा रहे हैं।”

कुछ लोग कहते—

“हम घर से सब्जी खरीदने के लिए पीछे लेकर चले हैं। एक दिन सब्जी नहीं पाई तो कोई बात नहीं, ये किताबें जीवन भर हमें काम देंगी।”

कुछ माधुरी किशोरोंके लोग आते जो बिना हीने हुनाले फिर पुस्तकें खरीदने के लिए पूछते—

“वधा आपके पास शहीदोंकी क्रांतिकारियों पर लिखी गई की भी पुस्तकें हैं?”

कभी-कभी पुलिस के कोई वीरगज्जी आकर चौक जमाते हुए कहते—

“को होने वाले। हटता है या नहीं, या चक्के देकर हलाके?”

जब मैं हटने लगता तो वे कहते—

“अच्छा जोड़ी के और खड़ा रहे, हैं यह किताबें मैं पढ़ने के लिए ले आ रहा हूँ, जोड़ी के बाद लौटा आऊँगा।”

एक दिन उदयपुर के प्रांति पर्वतन-स्वामि जल-बिलाक) निकट मैंने पुस्तकों का ठेला लगाया जहाँ संध्या समय बहुत भीड़ रहती है। वो प्यारे तक पड़ा रहा, एक भी पुस्तक नहीं बिकी।

मोह आ रहे थे, आश्चर्य की लहरें चले जाते, पर पुस्तकों की
और एक गजब भी नहीं फैलते थे। यदि फिल्म-कार्टूनिस्टों के
चित्रों वाली पुस्तकें होतीं तो शायद उनकी गजबें बरकतीं।

मेरे हंस के निकट ही एक उठाई गई जैसे व्यापक न एक-एक
बिंदु पर और पर कुछ-कुछ बुरियाँ रख कर अच्छे-बुरे भाषा में
अपनी सम्बन्धी जीमारेयों के नाम की वार्ताओं में गुण बताए। देखते ही
देखते उनके काफी गौरव का लिए। अपनी बुद्धि बढ़ा कर वह मेरे
पास आया और बोलों की गड़बड़ दिखता हुआ बोला -

“बाबूजी, यह मेरे एक चपटे की कमाई है। मैं आपको देव
रहा हूँ कि आप भी एक भी पुस्तक नहीं बिकी। मेरी तुलना मानिए और
आप एक माउड-स्पीकर खिरे से ले लीजिए और पाइकरी हुई भाषा
में किताबों की तारीफ शुरू कर दीजिए। आप देखेंगे कि कोई
ही देर में भीड़ एकटो हो जाएगी। कुछ शेरों-शायरी भी सुनाए।
आप देखेंगे कि किताबें हाथों-हाथ बिक जाएंगी।”

उस दस वाले की तुलना मान कर अगली सुंदरता को एक
माउड-स्पीकर भी खिरे से ले लिया, लेकिन अपनी पुस्तकों की तारीफ
करने के लिए एक शब्द भी मेरे मुँह से नहीं निकला। माउड-स्पीकर
के हाथ जो मिस्त्री-लड़का आया था, वह मेरी दयनीय दशा न
देख सका और उनके प्रस्ताव रखा कि मेरी कोर से वह आवाज
लग जाएगा। उनके कहना प्रारम्भ किया -

“शरीरों की आसुरी किताबें खरीदिए। उनकी मिहिनिसी
कहानियाँ पढ़िए। उनकी प्रेम-कथाएँ पढ़िए।”

इसने पहले कि वह आगे और कुछ ऐलान करे, मैंने स्पीकर
बन्द करके देखा कि वह बड़ा दिख। यह प्रयोग के सफल
रहा।

जब फिर से यहाँ तक आ गई कि भुजारा-चालना मुश्किल
होगया तो अगले दिन भगवान् महाकाव्य में कुछ पृष्ठ
इधर-उधर से मैंने जहाँ ही पाइ दिए और पॉप-बुक्स
बेचने वालों के पास जाकर उन्हें पुस्तकें दिखाने का कहना

की पुस्तकें कहीं-कहीं से जोड़ी धर गई हैं, बहुत सती देवूंग /
पन्द्रह-पन्द्रह रूपों की पुस्तकें के का एक-एक रूप देने के लिए
रखी हुका । मैंने उसे बहुत ही पुस्तकें देदी । वरुण ऐसा
भी काता तो जाता क्या ?

चार-पाँच दिन पश्चात् मिली एक प्रकाशित हुई कि
पुस्तकें की अरुत फैली लगी और किसी कच्ची-पल निकली।
तभी एक हदसा होगा । एक दिन भीड़ में ही एक युवक काया
और लपककर उसने मेरे पैर धू लिए । जिसका भीड़ की
प्रश्न-वाचक भाषाओं का समाधान करने इन शब्दों में किया -
“ ये हमारे गुरुजी हैं । वे मिंग कॉलेज में प्रोफेसर हैं ।
इन्होंने मुझे बी० ए० में पढ़ाया है । बहुत बड़े कवि और लेखक
हैं । ये सारी पुस्तकें इन्हीं की लिखी हुई हैं । ”

लोगों में कल-झुंसी होने लगी -

“ इतना बड़ा लेखक एक प्रकाश पुस्तकें क्यों बेच रहा है ? ”

“ लगता है, यह बेचारा मुरीबत का मार हुआ है । ”

“ और, पुस्तकें तो बहुत कच्ची हैं, और बेच भी बहुत सारी रह गईं । ”

वे लोग मुझसे कुछ पूछते, इसके पहले ही होना बड़ा कर
में क्यों है । सिक राया ।

अगले ही दिन चार-पाँच व्यक्तियों को एक विष्ट-मण्डल भेरे पास
काया । उन लोगों ने एक धरा हुआ बड़ा मुझे पकड़ा दिया ।
पढ़ा तो भालूम हुआ कि वहाँ की किसी साहित्यिक संस्था द्वारा
मेरा कार्यक्रम-समापन आयोजित था । कार्यक्रम ने लोग
मोहित कर चुके थे, मेरी स्तुति का प्रश्न ही नहीं रहा ।
उन् लोगों ने धूमधाम से मेरा कार्यक्रम किया । मेरी
साधनों की होमले का वातावरण बना गया । जो पुस्तकें वे लोग
विरिद-पुके के उनकी फीकाई भीकी गई । शाल की प्रीफल
भेंद का मुझे सम्मानित किया गया । कावे-गोखी भी हुई ।

अगले दिन मैंने वह नगा धोड़ दिया । जहाँ के लोगों ने
मेरा सम्मान किया था, वही फेरी लगा कर का पुस्तकें बेच

कर में उहे सम्मानित करेकरा । अब चला तो बहुत में
किराए के पीछे मुश्किल है ही मिलने । लगेज देने के लिए पीछे
ग्रीन, इलिय किताबों का एक बड़ा बंडल चर्मशाला के
चौकीवा की पुराना स्थान दे काया । उतने में लाख
कच्चा व्यवसाय किया था ।

कविता का आयु

देहरादून में विशाल मैदान पर क्रान्तिकारी-सम्मेलन
आयोजित था । क्रान्तिकारी लोग मुझे अपने परिचय का इस्तेमाल
मानते हैं । मुझे भी उह सम्मेलन में बुलाया गया । मरी संपत्ति
में क्रान्तिकारी लोग वहां पहुँचे । बहुत पुराने-पुराने क्रान्तिकारी
भी वहां पहुँचे । उतने दो लोग भी थे जिन्होंने प्रकाश-विश्व-मुक्त
के दिनों में अमेरिका की कलाडा में 'गदर-पार्टी' का निर्माण
किया था । कुछ क्रान्तिकारी पहले वहां पहुँचकर ठहर चुके थे ।
अब कोई नया क्रान्तिकारी वहां पहुँचता तो वहाँ हल्ले हुए क्रान्तिकारी
लपक कर पहुँचते की आगन्तुक क्रान्तिकारी को आँखों में
पड़कर उहे उठा लेते थे कि उन्हें उठा लेता की बड़े जोर के पार
में बालक होता - हम लोग बहुत-बहुत जेल में लाख रहे
थे । इतने मिलन में काफ़ी समय लग जाता की बड़ा कच्चा
भी लगता ।

देहरादून का क्रान्तिकारी-सम्मेलन तीन दिन चलने वाला था ।
वक्ताओं के नाम चुनने में बड़ी कठिनाई हो रही थी । किसी एक
चुरेदार वक्ता वहाँ मौजूद थे । कुछ लोग ऐसे भी थे जिन्होंने पैरा
कविता-पत्र पुनः रखा था । उनका थिए-मंडल सम्मेलन के अध्यक्ष
की कामेश्वर कामेश्वर राय ने पाठ पढ़ा की उन्हीं शब्दों का
किया कि सम्मेलन में हरलजी की काव्य-पत्र को बिना आवश्यक
दिया जाय । अध्यक्ष की कामेश्वर राय ने पहले तो हाफ इन्कार
कर दिया कि एक मिनिट का समय भी नहीं दिया जा सकता । फिर
कुछ होश-हम-मोहर ने बोले कि सम्मेलन के पहले दिन कार्यवाही
प्रारम्भ करने के पहले जो राष्ट्र-गीत गाया जाएगा, उसके

स्मान पर सरलजीकी एक राष्ट्रीय कविता पढ़ने का अवसर दिया जा सकता है। ऐसा ही हुआ। ~~पुनः~~ कार्यवाही को प्रारम्भ करने के पहले अध्यक्ष महोदय ने सांक्षेप वक्तव्य देते हुए कहा -

“सामान्यतः कार्यवाही को प्रारम्भ राष्ट्र-गीत के गायन से हुआ करता है लेकिन आजकी कार्यवाही को प्रारम्भ हम एक राष्ट्रीय कविता के पद्य से करेंगे। हमारे बीच की स्वरूप प्रीतिपूर्ण सरल भाव के एक कवि हैं जो केवल राष्ट्रीय विषयों पर ही कविता लिखते हैं। ये शहीदों की श्रुतिकविताओं की कविता हैं। अतः आज राष्ट्र-गीत के स्थान पर सरलजी की राष्ट्रीय कविता से ही कार्यवाही को प्रारम्भ होगा।”

कविता पढ़ने के पहले भिन्न कहा -

“कविता चार पदों की है लेकिन समय भाव के कारण मैं उनका एक पद ही पढ़ूँगा।”

जब मेरी कविता का पहला पद समाप्त हुआ तो अध्यक्ष महोदय ने खड़ा हो कहा - पूरी कविता सुनाइए। मैंने पूरी कविता सुना दी। हमी जी डाग बहुत प्रशंसित हुईं और अध्यक्ष महोदय ने कहा कि अगर भी प्रतिदिन की कार्यवाही राष्ट्र-गीत से न होकर सरलजी की कविता से हुआ करेगी। यह मेरे वाक्य को सर्वोच्च सम्मानों मेरी कविताओं को राष्ट्र-गीत के समकक्ष माना गया, इसके बड़े सम्मान की कवि को क्या अपेक्षा कर सकता है। जो कविता मैंने पहले दिन पढ़ी थी, जो पूरी की पूरी यहाँ उपस्थित कर रहा हूँ।

मैं आगर-शहीदों का चरण

मैं आगर शहीदों का चरण
उनके शेष भाग्य करता हूँ,
जो कर्ज राष्ट्र ने जमाया है,
मैं उसे चुकाया करता हूँ।

यह सत्य है, याद शहीदों की हम लोगों ने दफनाई है,
यह सत्य है, उनकी लाशों पर-यत्न कर काजा दी काई है,
यह सत्य है, हिन्दुस्तान आज जिन्दा उनकी कुबर्नी है,
यह सत्य, अपना अस्तक अँचा उनकी वामि वाम-कहाणी है।
वे अमृत न होते, तो भारत मुर्दा का देश कहा जाता,
जीवन रोता को मा होता, जो हम से नहीं रहा जाता।
यह सत्य है, दाग मुल्गामी को उनसे मोह हाँ-चाए है,
हम लोग बीज बोते, उनसे चरती में गन्तव्य को है।

इस पीढ़ी में, उस पीढ़ी के
 मैं भगव जगाया करता हूँ।
 मैं अमर-शहीदों का चरण
 उनके यश गाया करता हूँ।

यह सच, उनके जीवन में भी रंगीन बहारें आई थीं,
 जीवन की स्वनिर्मित निधियाँ भी, उनके जीवन में पाई थीं।
 पर, माँ के आँसू भाव उनके सब सरस कुहरों लौटा दीं,
 माँ के पण का वरण किया, रंगीन बहारें लौटा दीं।
 उनके चरती की हवा के वादे न किए लम्बे-चौड़े,
 माँ के अर्चन हित फूल नहीं, वे निज भक्तक लेकर दीड़े।
 भारत का पुन नहीं पतला, वे खुन बहा कर दिया गए,
 जग के इतिहास में कपनी, वे गौरव गाथा लिखा गए।

उन गाथाओं से हृदय पुन को
 मैं गरमाया करता हूँ।
 मैं अमर-शहीदों का चरण
 उनके यश गाया करता हूँ।

हैं अमर-शहीदों की पूजा, हर एक राष्ट्र की परंपरा,
 उनसे है माँ की कोव चान्य, उनको पाकर है चान्य चरा।
 गिरता है उनका रक्त जहाँ, वे हँस तीव्र कहनाते हैं,
 वे रक्त-बीज, अपने जौलों की गई फल दे जाते हैं।
 इसलिए राष्ट्र-कर्म, शहीदों का समुचित सम्मान करे,
 भक्तक देने वाली जगत् पर, वह युग-युग अभिमान करे।
 होता है रोता नहीं जहाँ, वह राष्ट्र नहीं टिक पाता है,
 आजादी खण्डित हो जाती, सम्मान सभी बिक जाता है।

यह धर्म-कर्म यह मर्म
 जमी को मैं गरमाया करता हूँ।
 मैं अमर-शहीदों का चरण
 उनके यश गाया करता हूँ।

पूजे न शहीद गए तो फिर, यह पंथ कौन अपनाएगा ?
 तोषा के मुँह से कौन आकड़, अपनी क्षतियाँ अड़ाएगा ?
 दुश्मन फन्दे कौन ? गोश्लियाँ कौन वध पर लाएगा ?
 अपने हाथों अपने भक्तक फिर आगे कौन बढ़ाएगा ?

पूजे न शहीद गए तो फिर, आत्मा की कौन बचाएगा ?
 फिर कौन मौत की वज्र में, जीवन के रास्ते बचाएगा ?
 पूजे न शहीद गए तो फिर, यह बीज कहां से काएगा ?
 चरती को भौं कह कर, मिडी भाव से कौन लगाएगा ?
 मैं चौरहे-चौरहे पर
 ये प्रश्न उठाया करता हूँ ।
 मैं अजर-शहीदों को - चरण
 उनके वेश गाया करता हूँ ।

आगले दिन की कार्यवाही के प्रारम्भ में 'खून की ज्वाला' शीर्षक
 की प्रस्तुत स्वनामिका पसन्द आई -

खून की ज्वाला

कौन कहता है, हमारी बाहुओं में जल नहीं है ?
 कौन कहता है, हमारे खून में ज्वाला नहीं है ?
 कौन कहता है, प्रलय के ही पुजारी हम रहे हैं ?
 कौन कहता है, प्रलय हमने कभी पाया नहीं है ?
 - कौन कहता है, अहिंसा भीरुता का अवरण है ?
 कौन कहता है, समर में हम न लड़ता जानते हैं ?
 - कौन कहता, शत्रुता का हृदय जो देते रहे, वे
 तोप की, तलवार की भाषा न पढ़ता जानते हैं ?

विश्व के इतिहास में अक्षय्यतुल्य पढ़ा तो हमारा
 - यमकाले स्वर्णक्षरों से लिखा 'भारतवर्ष' होगा,
 - एक पन्ने पर अहिंसा की लिखी वाणी मिलेगी
 दूसरे पर गरजता संचार का अक्षर होगा ।

अतिदलित पद-वाप से करते रहे हम विश्व-प्रांगण
 निम्न प्रिय सम्बन्ध भी बन्धुत्व के जोड़े गए हैं,
 किन्तु, जिसने भी उगई आँख है धामातृ-भू पर
 दाँत भी उस आततायी के यहाँ तोड़े गए हैं।

मौन है वह सहासी, जो कर सके अघराध गति का
 बट गए जो माँन, अंजित तक कभी मुकते नहीं हैं,
 क्यों न जाने है हमारे खून की तासीर ऐसी
 शीघ्र कर जाते हमारे, किन्तु वे मुकते नहीं हैं।

शत्रुओं की व्याधियों में, हिन्द के नर-नाहरो के
 युद्ध-रत भान्ने-दुखों युद्ध ही भोंके गए हैं,
 गरियाँ भी कम नहीं अग्निदान-गरिमा में नरों से
 पुत्र, पति, भाई, सगर की आग में भोंके गए हैं।

हैं नहीं वीरांगणाओं की कभी इस देश में कुदर
 वीरता की ज्वाला-ही रणभूमि में ये धूमती हैं,
 छाँह भी सम्मान की कोई न ~~न~~ दूर सुकता कभी है
 लाल लपटों को विहँस कर ये स्वयं ही धूमती हैं।

बाल-वीरों की कथाएँ विश्व को बतला रहे हैं
 गितागिताते, नील-नभ के वक्त्र पर अंकित सितारे,
 वाप से बेटा सवाया ही यहाँ होता रह है
 दाँत जोरों के गिता करते यहाँ बालक हमारे।

इसलिए संकल्प हम दुहरा रहे दुःख-चंतना से
 देश का सम्मान हम, निज प्राण देकर भी रखेंगे,
 सुनिर्गो के फूल भी चुनने पड़े, तो हम चुनेंगे
 देश के हित मौत के भी फल खुशी से हम चखेंगे।

— मध्य प्रदेश के राजापुर नगर में 'स्वर्गीय बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की स्मृति में एक कवि-सम्मेलन का आयोजन था। कवि-सम्मेलन एक सिनेमा-हॉल में आयोजित था। कवि-सम्मेलन के अध्यक्ष थे अमलपुर के सुकावे श्री भवानी प्रसाद तिवारी और प्रमुख अतिथि थे प्रदेश के राज्य-मंत्री श्री गौतम शर्मा। दूर और पास के अनेक सम्मानित कवि आमंत्रित थे। कवि-सम्मेलन चलते हुए जब काफी समय हो गया तो एक कविकी कविता की समीक्षा के पश्चात् मुख्य-अतिथि श्री-गौतम शर्मा ने कवियों को उकसाया -

“ यह कवि-सम्मेलन क्रान्तिकारी कवि स्व. बालकृष्ण शर्मा नवीन की स्मृति में आयोजित है, लेकिन कवि-सम्मेलन बड़ी शीघ्रता गति से चल रहा है और इसमें जाड़वाली हुई कविताएँ चुनने का नहीं किया रही। ”

— कवि-सम्मेलन के अध्यक्ष दादा भवानी प्रसाद तिवारी ने मेरी ओर देखा। मैंने संकेत देकर उन्हें आश्वस्त कर दिया कि यह चुनौती स्वीकारने में तैयार हूँ। उन्होंने कविता पढ़ने के लिए मेरा नाम चुनार दिया। उन दिनों मैंने एक नई कविता लिखी थी, जिसका शीर्षक था - 'चन्द्रशेखर आज़ाद की माँ का अन्तिम वक्तव्य।' इस कविता की पृष्ठ-भूमि यह थी कि चन्द्रशेखर आज़ाद ने स्वयं भी माँसी में बहुत समय तक ज़रात-वास किया था और उनसे शहीद होने के पश्चात् जब माँसुका जिने के मावरा ग्राम में उनकी माताजी भूतों मरने लगीं तो आज़ाद के क्रान्तिकारी साथी आज़ाद की माताजी को अपने साथ माँसी ले गए और उन्हें बहुत आराम के साथ रखा। उन लोगों ने आज़ाद की माताजी को तीव्रता से भीकराया। आज़ाद की माताजी का देहवसान माँसी में ही हुआ। सन् १९५५ में हुआ। आज़ाद के साथी क्रान्तिकारियों ने आज़ाद की माताजी की स्मृति में माँसी में एक प्लाक का निर्माण कर दिया और कुछ दिन बाद माताजी की एक मूर्ति स्थापित करने का संकल्प कर लिया। माताजी की मूर्ति का निर्माण किया आज़ाद के

माँसी-निवासी सभी मास्टर रुद्रनारायण सिंह ने । जब आजाद की
 माताजी की शक्ति-स्थापना की विवर शासन के कारों तक पहुँची
 तो अपने इस कार्य को अर्पण कर देते हुए नगर में निवेदना
 मांग कर दी । प्रतिक्रियाओं ने सोचा कि हमारे सभी आजाद
 तो उस समय शहीद होगे और हम लोग इसे गौरव से स्वीकार
 गए । उन्होंने निश्चय कर लिया कि हम लोग -बन्दू शोकर आजाद
 की माँ की शक्ति स्थापित करके रहेंगे, मने ही इस कार्य में हमें
 अपनी जान गंवाना पड़े । माताजी की शक्ति अपने अस्तर
 पर रख कर वे लोग निवेदना मांग करके निकल पड़े और
 जुलूस व्याकुल-स्वल्प पर जो पहुँचा । वहाँ आजाद की माँ की
 शक्ति की स्थापना कर दी गई । शासन ने इसे अपना अपमान
 समझा और पुलिस को गोली-बारूद की आह्वान दी गई । पुलिस
 ने ~~मिडिया~~ लोगों पर गोलियाँ बरसाई और देते ही देते
 पाँच व्यापारी वहाँ शहीद होगे । पुलिस ने शक्ति को गिरा दिया
 और उसका एक अंग पंडित होगया ।

इस घटना की छठ-दो महीने में वही कविता लिखी थी,
 जिसका शीर्षक था - 'बन्दू शोकर आजाद की माँ को आर्तिमन्त्र' ।
 यद्यपि वास्तविक रूप से आजाद की माँ ने भरने के पूर्व कोई
 वक्तव्य नहीं दिया था, पर वही तो कवि की कल्पना थी कि यदि
 आजाद की माँ से आर्तिमन्त्र वक्तव्य लिया जाता, तो वह क्या कहती ।

अपना नाम पुकारा जाने पर कविता-पढ़ने के पूर्व मैंने संक्षिप्त
 वक्तव्य देते हुए कहा -

"कभी-कभी मुख्य-आर्तिमन्त्र महोदय श्री शास्त्रीजी ने कवियों
 को सज्ज कर देते हुए कहा था कि कवि-सम्मेलन विचलित
 गति से चल रहा है और पढ़ी जाने वाली कविताओं में यह नहीं
 लगता कि वे एक क्रान्तिकारी कवि की स्मृति में पढ़ी जा
 रही हैं । मैं एक कविता पढ़ कर इस विचलितता को तोड़ने
 का प्रयत्न करता हूँ । कविता का शीर्षक है -

"बन्दू शोकर आजाद की माँ को आर्तिमन्त्र"

चन्द्रशेखर आज़ाद की माँ का जानीम वक्तोप

मैं दीपक की बुझने वाली लौ जैसी वृद्धा हूँ,
पूजा कोटती हूँ दम जिसका, मैं ऐसी वृद्धा हूँ।
दिए विधाता ने जो हैं, मैं वे दिन काट रही हूँ,
जीवित रह कर, मैं अपनी ही किम्मत-काट रही हूँ।

पेट-पीठ हैं एक, भला क्या कोई भूख रही है?
पकी फासल-ही, अरे भूख भी दिन-दिन भूख रही है।
दूध भर गया आँचल का, पौरुष के पानी जैसा,
वर्तमान ही मुझे लगे रहा, दुखद कहानी जैसा।

देशभक्ति के जोश सरीखी, देह ~~ख~~ लट रही मेरी,
सिंह-सपूतों की गिनती-सी, उमर पट रही मेरी।
धूलनी में डाले पानी-सी आस-चुक गई मेरी,
दुर्दिन के सम्मान सरीखी, कमर झुक गई मेरी।

मन की विकृतियों जैसी पड़ गई मुर्रियाँ तन पर,
बुझी-बुझाई धूनी जैसी रात जमी चिन्तन पर।
चिर-अतृप्त अभिलाषाओं से, बाल पक गए मेरे,
जीवन-पथ पर-चलते-चलते, पाँव थका गए मेरे।

देशद्रोहियों की संख्या-सा, बढ़ दुर्भाग्य रहा है,
कैसे पुन्हें बताऊँ, जैसे क्या-क्या दुःख रहा है।
मैं माँ हूँ, जिसने अपना बेटा जवान/बोया है,
उठ न सकेगा, कई गो नियाँ लाकर वह सोया है।

बेटे के तन में भी जितनी मातृ-दूध की चारे,
रण-धूल में वन गई धून की वे सब प्रखर फुलारे।
लड़ते-लड़ते खेत रहा था, सिंह-सूरमा मेरा,
देख नहीं पाया, आज़ादी का वह स्वर्ण-सवेरा।

926 ~~927~~
बोलने लोग, चिन्ताओं पर मैंने हर बरस लगेंगे,
मेरे वतन के लिए, फूल उनकी स्मृति पर बरसैंगे ।
पर अब मैंने कलें लग रहे, कोई मुझे बताए ?
कौन मद रह फूलों में, कोई मुझको सम्झाए ?

जिन लोगों की लाशों पर चल कर आज्ञा दी काई,
उनकी याद बहुत ही गहरी, लोगों ने दफनाई ।
उनको अपने, आज रीटियों के दर्शन को तरसें,
स्वर्ण-मेख, पर और किसी ने आँगन में जा बसें ।

पता नहीं था, इस चरती पर ऐसे दिन आएंगे,
नोच-नोच कर आज्ञा दी का मांस गिद्ध खाएंगे ।
पता नहीं था, समय बदलते आँखें बदल जाएगी,
मानवता की अर्पण, इतने शीघ्र निवृत्त जाएगी ।

एक ओर नंगी लाशों का कफन नहीं मिल पाए,
और दूसरी ओर, दिवाली नित्य मनाई जाए ।
क्यों न दलित-पीड़ित की आहों में उद्गम फिरकार ?
क्यों न किसी की फुटन आग अभिशापों की बरसाए ?

क्यों न किसी की कोल, पूत फिर है ऐसा जन्माए,
जो कि गरुड़ बन, महा-भयंकर नागों को खा जाए ।
लगता, भारत की नारी का फिर मातृत्व जगैगा,
शलिदानी वीरों का मैला फिर है यहाँ लगेगा ।

फिर मुझ जैसे कोई माँ, कोई आज्ञा दी जनेगी,
किसी-चन्द्रशेखर की, फिर खौवन-गंगा अफनेगी ।
पाप-पुंज पर, फिर विनाश-ज्वाला वह लहराएगी,
आधी श्राप, किसी अन्यायी को फिर है खराएगी ।

अन्यायों के अस्तव्यस्त पर वह फिर गोली दागेगा,
पुन उसकी विस्फोट-गर्जना, फिर यह भुग जावेगा ।
शोषण करने वालों का अपमान फिर है डोलेगा,
नया हवेश इस चरती पर तब आँखें खोलेगा ।

यह भी वह रचना जो मैंने गीत-नोक के साथ सुनाई। कविता की पंक्ति-पंक्ति पर दाद मिली। हारा माहौल क्रान्तिमय हो गया। कविता समाप्त होने पर बहुत देर तक शान्तियों की गड़गड़ाहट से भवन गूँजता रहा। उसके बाद सुन्नाटा छा गया। अचानक महोदय सोच रहे थे कि कविता पढ़ने कि सुनने में क्या जाय। उन्होंने सभी कवियों की ओर प्रश्नचिह्नक दृष्टि से देखा। सभी के चेहरों पर उन्होंने 'नहीं-नहीं' लिखा पाया। कवि-सम्मेलन को समाप्त घोषित करने के आतिथी को कोई उपाय नहीं था। (अध्यक्षीय सिंग) हारा में लहराया -

सरसजी की कविता - चन्द्रशेखर आपाद की माँ का अन्तिम वक्तव्य 'कविता पर आज का कवि-सम्मेलन न्यौछावर किया जाता है।'

यह कवि-सम्मेलन की समाप्ति की घोषणा थी। लोग उठ-उठ कर जाने लगे। मुख्य अतिथि महोदय ने अच्छी कविता सुनाने के लिए मुझे बधाई दी और विभ्राम-ग्रस्त बन गए। मैं एक चित्र को धर ठहरा हुआ था, उनके साथ उनके घर की ओर-वत्ने दिया। हम लोग सड़क पर जा रहे थे कि मुझे आता हुआ कि हम लोगों के विलकुल पीछे पुलिस के कुछ आदमी चल रहे हैं। पीछे मुड़ कर देखा तो पाया कि एक पुलिस-इन्स्पेक्टर को कुछ सिपाही हमारे पीछे थे। उन्हें आगे निकल जाने देने के लिए हम लोग रुक गए। हम रुका हुआ देखकर पुलिस-दल भी रुक गया। हम फिर चलने लगे तो पुलिस-दल भी फिर चलने लगा। आसिर में पीछे मुड़ कर पुलिस-इन्स्पेक्टर सहब से पूछा - आपका हरादा क्या है?

पुलिस इन्स्पेक्टर का उत्तर था -

“आपको हमारे साथ पुलिस-स्टेशन तक चलना होगा।”

“किस जुर्म में? मेरा प्रश्न था।

“आपतिजनक और हिंसा भड़काने वाली कविता सुनाने के जुर्म में।”

मैं अपने चित्र के साथ पुलिस-स्टेशन चला गया। पुलिस-इन्स्पेक्टर ने मेरे चित्र को अलग बिठा दिया और मुझे आदमी के कमरे में ले जाकर मुझसे वह पूछताछ करता रहा। उसे यह जानकारी बहुत आश्चर्य हुआ कि मैं एक सामाजिक महाविद्यालय में प्रोफेसर

“इ वास्तविक महाविद्यालय के प्राध्यापक होते हुए आपने इतनी आपत्तिजनक कविता सुना दी। आपको अपनी नौकरी का मोह नहीं है क्या? यदि आप प्राध्यापक नहीं होते तो मैं आपको आजीवन न कर देता।”

इसके पश्चात् अरु फुल्लिङ्ग इन्तरेक्टर ने ही सभी को कमरा में जाकर उसके व्यास लिए इलाक़े लिए कि वह इन लोगों के व्यासों का मिलान करके यह देवे कि मैंने अपने विषय में उसे कितना गलत तो नहीं बताया। फुल्लिङ्ग ही चुपकी थी। उसने होठों पर हाथ रखा। उन्होंने पहचानने पर यह काण्ड की मैंने कुछ मित्रों से बर्चा की। बात कई दिनों तक चलेगी। जन-आन्दोलन उमड़ पड़ा। इन्दौर नगर के एक भोक्ताप्रेम नेता श्री लाडिली मोहन निगम ने आप-सभाओं में भावों को साज्य लिए गए दुर्जनहा का उद्घोष किया। मध्य प्रदेश विद्यालय-सभा में भी प्रश्न प्रचल गया। उस समय पं० क्षारिका प्रसाद मिश्रा मध्य प्रदेश के मुख्य-मंत्री थे। उन्होंने उचित कार्यवाही करने का आश्वासन देकर मामले को खान्त किया।

इसी कविता ने एक और स्थान पर गूँज सिन्धिया। मध्य प्रदेश के भादवा जिले के आँदला नामक स्थान पर सूचना एवं प्रकाशन विभाग की ओर से एक कार्य-सम्मेलन आयोजित किया गया। मैं भी उस कार्य-सम्मेलन में कार्यरत था। आँदला जाते हुए एक निम्नीय घटना घटित होगई।

आँदला जाते ही लिए वस्तु की वस्तु यात्रा करना होती है। मैं भी वहाँ में बैठा हुआ जा रहा था। उस समय तक मेरा ‘चन्द्रशेखर आज़ाद’ महाकाव्य छप चुका था। उसकी कुछ प्रतियाँ मैं एक दोस्तों में बाँट कर इस उद्देश्य से ले जा रहा था कि वे आगत कीमत में मैं इसे चन्द्रशेखर आज़ाद के क्षेत्र में बेच दूँगा। आज़ाद की प्रतियों का बन्दल ऊँची तरह से छुतली है बाँध कर बस में उभार रखा गया था। यात्रा के दयकों के कारण बन्दल की छुतलियाँ मोहकी चढ़ गईं रगड़ जाती रहीं और वे कट गईं। बन्दल की छुतलियाँ एक-एक करके नीचे गिरने लगीं। किसी यात्री का ध्यान गया और उसने कहा कि कोई वस्तु नीचे गिर रही है। वस्तु को रोका गया। सभी यात्री नीचे उतरे। मैंने देखा कि ‘चन्द्रशेखर आज़ाद’

महाकाव्य की प्रतियाँ हड़क पर बहुत दूर तक बिखरी हुई थीं चार-
पाँच गाड़ी की पीछे चकला गया था। कुछ सह-यात्रियों की सहायता
से मैंने वे बिखरी हुई प्रतियाँ बटोर लीं। वहाँ से बँकी हुई प्रतियों
से कहा -

“आपने सुना होगा कि चन्द्रशेखर आज़ाद की प्रतिमा भी कि-
कोई मुझे जीवित गिरफ्तार नहीं कर सकेगा। आपने जीवन में तो आज़ाद
ने अपनी प्रतिमा पूरी की थी, पर उनके शहीद होने के पश्चात्
उस पर निर्वहण गर महाकाव्य ने भी आपकी प्रतिमा पूरी करके
दिवादी। आप सभी लोग गवाह हैं कि आज़ाद का क्षेत्र आते ही
बंगाल में बँकी हुई प्रतियाँ आ आपने आप मुक्त हो गईं की
आज़ाद की प्रतिमा है ~~मैंने~~ ^{वहाँ} बँकी हुई है बँकी नीचे
आ गए। कहिए, इतना न कामाल?”

इसे वक्तव्य का सभी लोगों ने तालियों से स्वागत किया। प्रत्येक
को आपने आप और का प्रकाश हो गया था। वहाँ सभी यात्रियों ने -
महाकाव्य की एक-एक प्रति खरीद ली। मैंने महाकाव्य की एक-एक प्रति
केवल एक-एक रुपए में दे दी। शहीदों के मामले में मैंने लोभशाही
इसी प्रकार मानुष होता रहूँ।

कवि-सम्मेलन वाली बात शेष रह गई है। आँदला में ~~कवि-सम्मेलन~~
कवि-सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। अपना क्रम आने पर मैंने वही रचना
पढ़ी - “चन्द्रशेखर आज़ाद की आँका आनीम वक्तव्य।” वह क्षेत्र तो
चन्द्रशेखर आज़ाद ही का था। वह कविता क्यों न पढ़ता? उम्मीद में
वह कविता आती ही पढ़ी थी कि पास ही बैठे ४ सूचना के प्रकाशन
आपकी मसौदाय ओं और मेरे सामने से भाइयों लींचते हुए उठते
कहा -

“इस मंच से आप यह कविता नहीं पढ़ सकते, यह आपत्तिजनक
कविता है।”

“यदि आप यह कविता पढ़ने से मुझे रोकते हैं तो इसी कविता
सुनने के स्थान पर मैं कविता न सुनाना ज्यादा पसन्द करूँगा।” यह
कह कर मैं अपने स्थान पर बैठ गया। कवि-सम्मेलन का संचालन
वीर राव ने प्रसिद्ध कवि श्री संपत-चतुर्वेदी कर रहे थे। उन्होंने

एक कवि-सम्मेलन मंडका देते हुए प्रोताओं से पूछा -
" भाइयों ! आपकी क्या राय है, क्या सरलजी यह कविता ज-
मुगारें ? "

समाप्त प्रोताओं की ओर से आवाजें आने लगीं -

" हम लोग सरलजी से वही कविता चुनेंगे, दूसरी नहीं । "

" सूचना-प्रकाशन-आयिदाही को क्या आधिकार है कि वह किसी-
किसी को कविता चुनाने से रोकें ? यह आधिकार तो अद्वयक महोदय
का है । "

सूचना-प्रकाशन-आयिदाही ने स्थिति का स्पष्टीकरण देते हुए कहा -

" देखिए, यह कवि-सम्मेलन सूचना और प्रकाशन विभाग की ओर से
आयोजित होने के कारण शासकीय आयोजन है और सरलजी जहाँ
कविता पढ़ रहे हैं वह शासकीय इमारत है आपने जाना कविता है, शीघ्र
उन्हें कविता पढ़ने से रोका गया है । "

एक प्रबुद्ध प्रोता ने उठ कर कहा -

" हम यह कवि-सम्मेलन खरीद लेते हैं । कवियों का भुगतान हम
करेंगे । अब यह शासकीय कवि-सम्मेलन नहीं, जनताजी ओर से
आयोजित कवि-सम्मेलन है । सरलजी वही स्वयं प्रारम्भ हैं फिर
चुनारेंगे । "

जिसे प्रोता ने यह प्रस्ताव रखा था, उसे हम जानते हैं कि सूचना-
प्रकाशन-आयिदाही महोदय मंजूर हैं नीचे उतरे । स्थिति का लाभ उठा
कर सुनवतों का एक दल भाटा और आयिदाही महोदय को ^{दाका देते} ~~आयिदाही~~
हुए एकत्र में उनका स्वागत करते के लिए ले गए । स्थिति की मंजूरिता
को देख कर मैं स्वयं उस ओर भाटा और सूचना आयिदाही महोदय
को बुला कर मंजूर पर लाया । वही इतने स्तुभ से गए थे कि उनके
पश्चात् उनके कुछ कहते-सुनते नहीं बना । संजालक श्री हंसराज चतुर्वेदी
ने मेरा हाथ फिर पकड़ लिया । वही कविता मैंने प्रारम्भ से पढ़ी ।
कविता की पंक्ति-पंक्ति पर मुझे दाय लेखी । कवि-सम्मेलन बहुत अँधेरी
पर पहुँच गया । उसके पश्चात् तो हमीदाही कवियों ने
बड़े जोश-खरोश के साथ आज्ञा की कविताएं चुनवाई । कवि-सम्मेलन
अंतिम रूप तक रहा और लोगों ने कहना पड़ा कि इतना अच्छा कवि-
सम्मेलन मैंने पहले कभी नहीं देखा ।

शहरों पर कीर-काव्य लिखना, उसे अपने पैरों से चरपटाया और
नगर-नगर घूम कर शहरों और ग्रामिकारियों की गाथाओं की तैयारी
करने के साथ-साथ अपनी पुस्तकों का वितरण करते रहना मेरी
वृत्ति बन गई थी। इसी संदर्भ में एक बार मुझे मध्य प्रदेश
के भुरेता नगर में जाना पड़ा। कई विद्यालयों में मेरा कविता-पाठ
हो चुका था। एक दिन मैं एक विद्यालय के प्राचार्य महोदय के साथ
बातचीत कर रहा था कि एक लड़कियाँ सज्जन मुझे खोजते हुए
वहाँ पहुँचें। उन्होंने कहा कि पहले तो मैं इस विद्यालय में आपका
कविता-पाठ सुनने की अनुमति-चाहूँगा, फिर आपकी हराने के आन
पर-चाय कर अपना परिचय आपको दूँगा और आपकी साथ
कुछ समय बिताऊँगा। मैंने उनसे कहा -

“इस विद्यालय में मेरा कविता-पाठ सुनने की अनुमति तो
आप इस विद्यालय के प्राचार्य महोदय से लीजिए।”
प्राचार्य जी ने मेरी बात सुनकर कहा -

“ठाकुर साहब तो हमारे नगर के सम्माननीय-यात्री हैं। यह
विद्यालय भी इनकी का सम्मान। अपने ही विद्यालय में किसी-
की अनुमति की क्या आवश्यकता।”

प्राचार्य जी की इस बात को सुनकर तथा ठाकुर साहब की वेश-भूषा
तथा उनके प्रधानशाली व्यक्तित्व को देखकर मैंने यह अनुमान
लगाया कि ये सज्जन यह तो यहाँ के विद्वान या कोई अन्य
कौशल कार्यकर्ता होने चाहिए। विद्यालय में मेरा कविता-पाठ हुआ।
ठाकुर साहब मेरे साथ थे - मेरे ~~हैं~~ हराने के स्थान पर पहुँच
गए। पहले तो मैंने हम लोगों के लिए चाय का आदेश दिया
और फिर ठाकुर साहब से बातें होने लगीं। मेरे मन में
उत्सुकता तो थी ही, मैंने कहा -

“ठाकुर साहब, पहले तो आप मुझे अपना पूरा परिचय
दीजिए, फिर आगे बातें होंगी।”

ठाकुर साहब ने अपने विषय में बताते हुए कहा -

“जी, मैं इसी जिले के एक गाँव का निवासी हूँ। मेरा नाम ----- है।
पहले मैं डाके डाला करता था। जयप्रकाश नारायण जी की प्रेरणा से

समर्पण करने के पश्चात् अब आपने फैसले का इन्तजार कर रहा हूँ। इस समय मैं चैरोल पर दुरा हुआ हूँ और अगर मैं आपके नाम की चूम छुन कर आपकी सेवा में उद्यमित हुआ हूँ।"

ठाकुर लख का परिचय प्राप्त कर मैं दस प्रकाशपूर्वक उनकी ओर दोषने लगा। मुझे इस प्रकार उनकी ओर दोषने हुए दोष का उन्होंने प्रश्न किया।

"कहीं आपके यह जानकर कि मैं एक डाकू हूँ, आप डर तो नहीं गए?"

मेरा उत्तर -

"जी नहीं मैं आप से बिल्कुल नहीं डर हूँ। आपके हाथ में तो बन्दूक भी नहीं है और अगर होती, तो भी डाकू लोग अकारण तो किसी भी जान लेते नहीं मिते। मुझे तो आपके विषय में ज्ञान और आधिकारिक जानने की अकारण जाग्रत हो उठी है। यदि आप अनुमति दें तो मैं आपसे कुछ पूछूँ।"

मेरा यह कथन छुन कर ठाकुर लख ने कहा -

"आप मेरे विषय में जानने के लिए कुछ पूछना प्रारम्भ करें, उसके पूर्व आपके इस तरह में आपके आगमन और विभिन्न विद्यालयों में बिना पारिभाषिक लिए आपसे तक कविता-पाठ करने के आपके उद्देश्य के विषय में मैं स्वयं जानना चाहूँगा।"

मैंने बहुत संक्षेप में उन्हें बताया -

"ठाकुर लख, यह हो आप का विदित होत कि हमारे देश में शहीदों और उनके परिवारों की पोर अपेक्षा हो रही है। कवि और लेखक इन विषयों पर इतनी चर्चा नहीं लिखते, क्योंकि उनके लिखे हुए को प्रकाशक लोग छापने को तैयार नहीं हैं और प्रकाशक लोग इन पुस्तकों में अपना पैसा इतनी नहीं काँटते क्योंकि आसन्न उन पुस्तकों को प्रसीदता नहीं है और शासन के द्वारा इन पुस्तकों को इतनी नहीं प्रसीदते क्योंकि लोगों को यह प्रतिकारियों के उज्ज्वल चरित्र सामने आने से डरने चरित्र चुराकर लेने लगेंगे। इसी सब बातों को सोचकर मैं स्वयं इन देशभक्तों को निहता हूँ, अपने जैसे ही दसपनाता हूँ और पुस्तकों के गढ़े बाँध-बाँध कर और अपने कण्ठ के जगह से बिना पारिभाषिक लिए स्थूल-स्थूल में पाठों तक कविताएँ छुनाऊँ केवल जागत मूल्य में पुस्तकें बेचकर धारों में राष्ट्रीयता उत्पन्न करने का प्रयत्न करता हूँ। ईश्वर मैं अपने को कविताइयों आती हूँ, लेकिन मैं सोचता हूँ कि जब शहीदों ने अपने प्राण दिए हैं तो मैं अगर कुछ कविताइयों भेज लूँ, तो कोई बड़ी बात नहीं होगी।"

मेश यह कहकर मुनकर हाकुर लाहब ने ज़ोर की 'हूँ' की ध्वनि की ओर बोले -

"यदि पहले आप से परिचय हुआ होता तो हम लोग आपकी लिए बहुत कुछ कर सकते थे। अब तो व्यापारी रूप से आपको मेरी एक सेवा प्रोत्साहित करनी ही होगी और वह यह कि जब तक आप शीतलपुर में हैं, आपके प्रस्तावों को मैंने उठाने का काम में करूँगा और आपकी यहाँ से प्रवास का तारा [प्लान] में उठाऊँगा और यह भी बता दूँ कि मैं अपने इस प्रस्ताव को उत्तर में 'ना' नहीं चुनना चाहूँगा। अब कहिए आपका क्या उत्तर है?"

मेश उत्तर था -

"जब आप अपना पैतृक मुनकर लाहब ही-मुने हैं और आप उत्तर में 'ना' नहीं चुनना चाहते तो मैं हूँ, किए देता हूँ, लेकिन मैं यह हूँ, मजबूरी में कर रहा हूँ, यह भी आपकी वला है।"

मेश उत्तर मुनकर हाकुर लाहब प्रसन्न हुए। फिर बोले -

"अब आप मेरे विषय में क्या सूचना चाहते हैं, सूच सकते हैं।"

मैंने कहा -

"मैं आपके डाकु-जीवन के विषय में जानना चाहूँगा कि आप लोग जिन लोगों को यहाँ डाके डाकने की योजना बनाते थे और जो कुछ आपकी भूट का माल मिलाता था, उनका बँटवारा किस तरह होता था?"

मेरे प्रश्न को मुनकर हाकुर लाहब ने कुछ ध्यान उत्तर सोचने के लिए लिए और फिर बोले -

"पहली बात तो यह कि मैंने हमेशा ही दूसरे तरफों के दल में एक सहायक के रूप में काम किया है। हम लोग मुनाब और सुन्चगारों के बीच और हमारा तरफ निर्णय लेता था। इतना अवश्य है कि हम लोग उन लोगों के पक्षों पर ही डाके डाकते थे जो समेद-जेश लोक भी-भूट-सहारे, शोषण और अत्याचारों के बलायत दल संग्रह करते हैं। वे लोग भी समेद डाकुओं से कम नहीं होते, जिन पर हम डाका डाकते थे। रही बात भूट हुए माल को बँटवारे की, तो मैं उदाहरण देकर आपको समझाऊँगा -

"मान लीजिए कि सरदार सिंह हमारे दल में दल सदस्य हुए और हमने डाका डाक कर एक लाख रुपए प्राप्त किए। इन एक लाख रुपयों में से आधा भाग अर्थात् पचास हजार रुपए हमारा

सरकार अपने सामूहिक कोष के लिए अलग निगम लेता था। अब
वंचे और पचास हजार रुपए, तो उनके बराबर-बराबर उतने भाग
लिए जाते थे, जितने हम लोग लेते थे। मैंने बताया कि मान लीजिए
कि हमारी संख्या दस हुई तो प्रत्येक सदस्य को पाँच-पाँच हजार
रुपए मिलें। हमारा हरका भी अपने लिए हमारे बराबर ही हिस्सा
लेता था। अब रहा वह सामूहिक कोष जो भूट को चान चो से पहले
ही काया उठा कर अलग रात दिया जाता था। उस कोष को
इस्तेमाल करने का पूरा आदीकार हमारे हरका को होता था। उस कोष
में ही वह अच्छे से अच्छे हाथियाँ खरीद कर हमको देता था,
हमारी रात का पूरा खर्च वह उठाता था और हमारी सुरक्षा के
लिए जिन लोगों को देना होता था, वह उही कोष से ले देता
था। हम लोगों को तो जो अपना हिस्सा मिलता था, उसमें ही
हमको एक पैसा भी खर्च नहीं करना पड़ता था। उसे हम अपने
परिवार वालों के भरण-पोषण के लिए भेज दिये करते थे।

ठाकुर साहब ने बीच में टोक कर मैंने उनसे प्रश्न किया -
“आपने कहा है कि आप लोगों को अपनी सुरक्षा के लिए भी
मिली कोई कुछ देना पड़ता था। वह आप किसको देते थे?”
मेरा यह प्रश्न सुनकर ठाकुर साहब ने मेरा हाथ दकाते हुए कहा -
“बुढ़ा समझदा होकर आप इसका उत्तर हम से न पूछिए। यह तो
जग-जगह की बात है।”

मेरा अगला प्रश्न था -

“जो सदस्य डाकू-दल में भरते होता है, उसकी परीक्षा कैसे भी जाती
है और यदि वह अपने साथ कोई हाथियाँ ले जाता है तो उसका क्या
किया जाता है?”

उत्तर था -

“यदि सदस्य भरोसे मन्द हुका और यदि पहले ही किसी को खून करने
पहुँचा है तो उसकी कोई परीक्षा नहीं भी जाती, अन्तर्गत उससे
कहा जाता है कि अमुक व्यक्ति को खून करने दल के लिए अपनी
योग्यता का प्रमाण दे और उसे शेर कर देना पड़ता है। यह प्रश्न उसके
सब हाथियाँ लेने का, तो दल के लोग उस हाथियाँ का परीक्षण
करते यदि उसे काम का पाते तो सामूहिक कोष से उसका मुआम
पुका दिया जाता है और वह हाथियाँ उसकी आत्मीयता संपर्क

नहीं रहती । ११

—मैंने आज्ञाकारी की शहराष्टों में न जाकर हाकुर साहब से एक प्रश्न उनके मनोरंजन के साधनों के विषय में किया। उनके उत्तर में उन्होंने बताया —

“जैसा कि आप लोग फिल्मों में देखा करते हैं, हम लोग महाद्वितीय ~~महोत्सव~~ मुजरात का आयोजन नहीं करते। अभी-कभी कोई सदस्य सरकारी अनुमति से किसी नगर के सिनेमा हॉल में भेष बदल कर कोई फिल्म देव लेता है। किंतु हम लोगों में भी कुछ सदस्य गीत गाकर या चुटकुले सुनाकर एक-दूसरे का मनोरंजन कर लिया करते थे। हम में से कुछ लोगों को पुस्तकें पढ़ने का शौक भी था। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि हम में से कई लोगों ने ~~आपकी~~ लिखी हुई चन्द्रशेखर आज़ाद पर लिखी हुई ^{आपकी} पुस्तक पढ़ी है। मैंने तो यहाँ तक सुना है कि हमारे दूसरे दल के बहुत बड़े सरदार लावनसिंह जब पुष्पाब्ज सप्ताह संवत् में मारे गए थे, तो उनके सामान में चन्द्रशेखर आज़ाद पर लिखी गई आपकी पुस्तक मिली थी। ११”

हाकुर साहब की यह बात सुन कर मैं चौंक पड़ा कि शहरियों पर लिखी गई ऐसी पुस्तकें हाकुर लोग पढ़ते रहेंगे और विशेष रूप से चन्द्रशेखर साहब ने पढ़ी होंगी। अपनी ~~आपकी~~ याददाश्त को सुदृढ़ करने पर मुझे वह परनायाब आ गई जब कुछ हाकुरों ने मुझ से भी ऐसी पुस्तकें खरीदी थीं। विवरण सहित वह परनायाब यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ: —

सन्-संवत् से याद नहीं है, इतना अवश्य याद है कि एक बार मुरेना जिले के ली श्यापुर परगने के बड़ौदा ग्राम (मुजरात के बड़ौदा से भिन्न) में एक कवि-सम्मेलन के अंतर्गत मुझे बुलाया गया था। शान्ति के कवि-सम्मेलन हुआ। प्रचार काफ़ी किया गया था और काफ़ी लोगों को कई गाँवों के व्यक्ति श्रोता के रूप में वहाँ पहुँचे थे। श्रोताओं की अच्छी खासी भीड़ वहाँ देखी गई।

कविता सुनाने के लिए जब मेरा क्रम आया तो मैंने बड़े जोश के साथ अपने चन्द्रशेखर आज़ाद महाकाव्य का एक अंश सुनाया। श्रोता-समूह की ओर से मुझे बहुत अच्छी दाद मिली। जब

जैसे कविता-पाठ समाप्त हो गया तो मैं अपने स्थान पर बैठ गया।
मेरे बैठते ही एक इराज्य कोने से एक श्रोता ने परमाइश की -

“आप यही कविता दुबारा सुनाने की कृपा कीजिए।”

उसकी यह परमाइश सुन कर मुझे कुछ अचरस आया और
मैंने पुनः वही लेका परमाइश करने वाले सज्जन को सुना कर कहा -

“सामान्यतः लोग और-और कविताएँ सुनने की परमाइश
तो करते हैं, लेकिन सुनी हुई कविता को दुबारा सुनने की परमाइश
कोई नहीं किया करता। आप स्पष्ट बताएँ कि यही कविता
दुबारा सुनना चाहते हैं या कोई अन्य कविता।”

उत्तर आया -

“हम यही कविता दुबारा सुनना चाहते हैं।”

उसने इस आग्रह को सुन कर मैंने उन्हें समझाया -

“देखिए, एक बार सुनाई गई कविता को दुबारा उनी जोर-जोर से
न सज्जन मैं नहीं सुना सकता। आप अपनी रुचि को लिए दूसरे श्रोताओं
को सज्जन अनुरोध कर रहे हैं। मैं गई कविता सुनाने तैयार हूँ,
पर जो कविता अभी सुना चुका हूँ, वह नहीं सुनाऊँगा।”

“हम यही कविता सुन कर रहे हैं।” उस श्रोता ने एड़े होकर कहा।
विवाद को बढ़ा हुआ देखा कर संयोजक महोदय ने चिरी से मेरे स्थान
में कहा -

“अरे यही कविता सुना लीजिए। मुझे तो लगता है कि उल कोने
के श्रोताओं ने कुछ डाकू भाँगा है। हमारी खातिर उनसे ज़िद मत
कीजिए।”

सज्जति मेरी समझ में आ गई। मैंने शहीदों की कविता की पसन्दगी
पर वाद बंद हुए वही कविता को सुना दी। मेरे विषय में संयोजक
महोदय यह सूचना दे चुके थे कि कवि-सम्मेलन की समाप्ति पर
जो लोग शहीदों की आत्मीयता पर किस्मिती गई सरलाजी की
सुलतनें बरीदना चाहते हैं, बरीद सकते हैं।

कवि-सम्मेलन की समाप्ति पर मंच पर आकर लोगों ने मुझे
सुलतनें बरीदना प्रारम्भ कर दिया। मैंने देखा कि जितने कोने से

एक ही कर्मिता को दुबारा चुनाने की परमादेश आई थी, उसको
को लोगों ने तब तक पुस्तकें खरीदीं और यन्त्रशाला आचार्य
महाकाव्य की तो मेरे पास एक भी प्रति नहीं बची। बाद में
संयोजक जी ने मुझे बताया कि इस प्रकार के कार्यक्रम में
डोकुमेंट को आना कोई आवश्यक बात नहीं है क्योंकि इस
क्षेत्र में न निर्भय होकर विचरण किया करते हैं और पुस्तक का
अर्थ तो उनका होता ही नहीं है।

इस घटना की याद आते ही मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि
उसी वर्ष-सम्मेलन में डोकुमेंट ने मेरी पुस्तकें खरीदी होंगी।

जिन ठाकुर साहब का मैंने उल्लेख किया है, वे भी लाख
तीन दिनों तक पुस्तकें के बाँटते उठते हुए दूर दूर और भी
सार खरी भी न उठते रहे। जब मुरेना छोड़कर मैंने अंत
विदा भी तो मेरा स्वाभिमानी तक का टिकित भी उठी न लिया और
आग्रह पूर्वक एक निवेदन किया -

“आपसे यह सानुतेय निवेदन है कि यदा कदा आप इस क्षेत्र
में आकर हम लोगों को तृप्त करते रहें।”

मैंने भी मन्त्राक में लक्ष्मी में उगाने कहा -

“यदि मैं दुबारा इस क्षेत्र में आऊँ तो आप मुझे यही पौधों-
या किसी जंगल में।”

होते हुए उन्होंने उत्तर दिया -

“आप प्रकाश बाबू और सुबबाराव जी का इतना गहरा प्रभाव मुझ
पर पड़ा है कि दुबारा जंगल में आने की बात मैं सोच ही नहीं
सकता।”

ठाकुर साहब से हुई इस मुलाकात की कई वर्ष व्यतीत हो चुके हैं, मैं
और अपनी बीमारी ने मुझे इतना भयभीत किया है कि याददाश्त
तो अभी जवाब ही दे गई है। बहुत से जो देने में भी उन ठाकुर
साहब का नाम याद नहीं आ रहा। इतना अवस्था लगता है कि
खुदबखार हमने अपने नाम इस वर्ग में भी कुछ अच्छे संस्कार
होते हैं और अच्छे व्यक्तियों का उन पर प्रभाव भी पड़ता है।

੧੩-੮ A ਜੇ ੧੩-੮ L

ਨਿਯਮ ਪੁਸਤਕ ਪੌੜ੍ਹੇ

ਗਾਏ

— ਵਧੇ ਹੋਏ ਪੁਸਤਕਾਂ ਦੇ

ਪੁਸਤਕਾਂ ਦੀ ਸਾਂਝੀ ਸੰਗ੍ਰਹਿ

ਸਾਂਝੀ-ਪਾਠ



जब मैं पाकिस्तानी जासूस समझा गया

दर पकड़ा गया

मेरी अपनी ही कविता ने मुझे कभी सम्मान दिया था
हैं और कभी-कभी मुश्किल में भी डूबा है। प्रसृत कर
रहा हूँ यहाँ एक उदाहरण जिसमें दोनों ही पक्षितियाँ
एक साथ मिलेंगी।

बात उन दिनों की है जब पाकिस्तान ^{साम. हमारी} ~~हमारे देश~~
^{बन गई।} ~~पर विदेशी जासूसों के प्रभाव से अक्रिय कर दिया था।~~ पाकिस्तानी
खानेपान सैनिक-दोरी-दिप हमारे देश ने महत्वपूर्ण स्थानों
पर उतरते और आसानी तब तोड़फोड़ की वारदातें करते
रहे थे। उनके कारण देश भर में बहुत आतंक फैल गया
था। देशभक्ती की लहर भी उन दिनों हर व्याक्ति के दिल
में थी। ऐसे कई उदाहरण भी देखे गए जब पाकिस्तानी
खानेपान सैनिक उतर कर बेतों में दिप जाया
करते थे। बेतों के मालिक किसान लोग हमारी मौज
को यह आश्चर्य दे देते थे कि पाकिस्तानी ~~जैसे~~ जासूसों
को पकड़ने से उनको बचाने के लिए हमारी बड़ी
फासलों में आग लगा दी जाय। ऐसा कई कोर हुआ
था जब किसानों ने अपनी बड़ी हुई फासलों अपने सामने
पलती हुई देवी की ओर सलाम के स्थान पर कुश
ही हुई थी।

देश के कवियों ने भी उन दिनों देशभक्ती-पूर्ण कविताओं
की रचना करके देश के मनोबल को बढ़ाया था। मैंने भी
कुछ-कुछ कविताएँ उद्देष्टा रचनाएँ लिखकर अपने
कावे-कविय की पूर्ति की थी।

हमेशा की तरह उन दिनों भी मैं अपनी फुलकों लेकर
बोलाबोल की तरफ निकल गया। मैं जा पहुँचा राजधानी

—वै आपने नगर में। उस नगर में मेरे कई प्राचार्य
मित्र थे, इस कारण अपने कार्य को मैंने उस नगर
को चुना। वहाँ कई विद्यालयों में मेरा कविता-पाठ
हुआ और मेरी पुस्तकें बूख बिकीं। अचानक वहाँ
क्षेत्रीय-शिक्षा-महाविद्यालय में भी कविता-पाठ को
लिए मुझे आमंत्रित किया गया। वहाँ मैं एक आचार्य
श्री अग्रमोहनाथ स्वामी ने मुझे बहुत अच्छा
सहयोग दिया। महाविद्यालय के छात्र-मित्रों में मेरा
कविता-पाठ हुआ और मुझे बहुत सराहा गया। मैंने
देखा कि छात्रों में एक प्रौढ़ी-जवान भी आ जा
पांती-पांती पर उदल-उदलकर लड़के बहने।
अब मेरा कविता-पाठ समाप्त हो गया तो वह प्रौढ़ी
जवान मेरे पास आया और मुझसे बोला -

“ मैं एक प्रौढ़ी-जवान हूँ और मैंने
इन लड़कों को प्रौढ़ी-प्रशिक्षण देने का हूँ। आपकी
कविताएँ मुझे बेहद पसन्द आई हैं और मुझे विश्वास
है कि प्रौढ़ी लोग आपकी कविताएँ सुनकर उदल-
उदल पड़ेंगे। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप
मेरे साथ-बल कर हमारी कंपनी के प्रौढ़ियों को
आपकी कविताएँ सुनाने की कृपा करें। ”

मुझे हवालादार सार्व का यह वक्तव्य बहुत अच्छा
लगा, लेकिन अपनी विवशता बताते हुए मैंने उनसे
कहा -

“ हवालादार सार्व! आप लोगों को कविता
सुनाते हुए मुझे भी बहुत बुरी होती क्यों कि
ये कविताएँ आप लोगों को लिखी ही लिखी गई

हैं, लेकिन मुझे खेद है कि मैं आप लोगों के बीच उपस्थित नहीं हो सकूँगा क्योंकि आज मेरे अजमेर-प्रवास का अन्तिम दिन है और काम पहली ट्रेन से मैं यहाँ से बिड़वा की ओर प्रस्थान कर जाऊँगा। मुझे सचमुच खेद है कि मैं अपना कार्यक्रम परिवर्तित भी नहीं कर सकता।"

मेरा कम्पन सुनकर खलसा जलन की बहुत निराशा हुई। उन्हें निराश करते हुए मुझे भी बहुत अपमान हुआ।

अगले दिन बिड़वा की ओर जाने वाली ट्रेन पकड़ने के लिए मैं अजमेर स्टेशन पहुँचा तो रिकेट वरीसों के लिए बसू में भाग गया। मैंने देखा कि पूरे स्टेशन पर फौज के लोगों की चहल-पहल भी थी। उनकी नज़रें बतार रही थीं कि वे लोग किसी की खोज कर रहे हैं। मेरे पास ही बसू में भागे एक व्यापारी का अनुमान था -

"लगता है कि ये फौजी लोग किसी पाकिस्तानी जासूस की खोज में यहाँ आए हैं जो इफे गाड़ी से जाने वाला होगा। यदि वह पकड़ा जाय तो हमें भी तमाशा देखने को मिलेगा।"

उस व्यापारी के कम्पन का समर्थन करते हुए मैंने भी कहा -

"हाँ किसी भी कीमत पर उन पाकिस्तानी जासूस को पकड़ा ही जाना-चाहिए और उसकी अच्छी मरम्मत भी होना-चाहिए।"

हम लोगों से इसी प्रकार की बातें चलती

रही थीं। कि कुछ मौजियां भी मौजी नज़रें हमारे
 वयू पर भी पड़ीं। एक मौजी ने ध्यान में वयू
 की ओर देखते हुए अपनी डोंगली उठा कर कहा -
 "वो तो हैं।"

मौजियां की भीड़ हमारे वयू की तरफ अपनी ओर
 उन लोगों ने मुझे पेल लिया। वयू में बड़े कि
 दानी ने व्यंग्य-पूर्वक कहा -

"मियां कितना अच्छा नाटक कर रहे हैं और जिसने
 खुद ही पाकिस्तानी जासूस। अब मजा आएगा
 अपनी सरझत गंते देकर।"

पाकिस्तानी जासूस को उल्लेख सुन कर मौजी हल्ला
 ने उत्सुकता में पूछा -

"आप कि पाकिस्तानी जासूस की बात कर रहे हैं?"
 वह कहाँ है?"

उत्तर मिला -

~~"अरे वही तो जिसे आप लोगों ने पेल"~~

"अरे वही तो, जिसने तलाश आप लोगों को
 भी और जिसको आप लोगों ने पेल रखा है।"

हल्ला ने स्पष्ट किया -

"हमें किसी पाकिस्तानी जासूस की तलाश नहीं
 थी। हमने जिन्हें पेल रखा है, ये कोई पाकिस्तानी
 जासूस नहीं हैं। ये तो बहुत बड़े कारे हैं जिन्होंने
 हिन्दुस्तानी मौजी कीरी पर बहुत अच्छी कसियाएं
 लिनी हैं। वजह मैं तो रीजनल-कॉमिशन में इनकी
 कारे तहें सुनी थीं और इनसे निवेदन किया था

भा कि हम मौजियों के बीच पहुँच कर हम लोगों को
 से अपनी कविताएँ सुनाएँ। इन्होंने अपनी मजबूरी
 बता कर आज दूँगे है जाने की बात करी। हम लोग
 खास भी तरतु बुद्ध ही इनके पास अपनी कविता की
 खास बुझाने आए हैं।”

हमारा मुख्य दो कथन है मेरे वक्ता में जो
 सिद्धि बनी, वह यह भी कि लोगों की वक्तव्य हमें
 दूर हो गई जो उन्होंने मुझे पाकिस्तानी जासूस
 समझ लिया था। इस बीच मैं वक्तु में सफल
 आगे पहुँच गया था। मैंने अपना इन्हीं का
 टिकेट बरीदा और मौजियों ने प्रभाव राख दिया—

“गाड़ी अपने से अभी पञ्चीस

“गाड़ी चलते में अभी पञ्चीस मिनिट भी दे रहे।

चाहिए हम ~~आपके~~ गाड़ी में आपका सामान राख
 देते हैं और वहीं डिब्बे के सामने (नोटफार्म पर आप
 हम लोगों से वे कविताएँ सुना दीजिए जो आप
 आपने रीजनल-ऑफिस में सुनाई थी)।”

प्रभाव है सचमुच होने में मुझे कोई आपत्ति
 नहीं थी। उन लोगों ने पहले से खड़ी हुई सिंडका
 अजमेर-खंडवा ट्रैन के एक डिब्बे में मेरा सामान
 जमा दिया और नोटफार्म की कार्य-संयोजना
 लिया। फर्क इतना था कि वे लोग बड़े-बड़े मेरी
 कविताएँ सुनने वाले थे। यानी और कुच्छाये
 के कमिन्गी भी प्रीत-समय में सामाजिक।

उन दिनों मैं युद्ध-सम्बन्धी दो कविताएँ लिखी-
 थीं, जिनमें से एक रचना साहित्यिक थी और दूसरी
 मात्र तुकबन्दी थी जो मौजियों के मनोरंजन के
 लिए लिखी गई थी। इस दूसरी कविता की विशेषता
 यह थी कि उसका हर पद एक छंद में छन्द
 पर जादू जैसा प्रभाव उत्पन्न होता था और
 प्रीति भाग उच्चल-उच्चल पड़ते थे। जो कविताएँ
 मैंने छुगाई, वे थीं —

(व)

जवानो हिन्दू के।

जवानो हिन्दू के, जौ हर दिन कर जंग में तुमने
 हमारे देश का गौरव बहुत अच्छा उभाया है।
 हमारे प्रति हुई संसार की आलोचना लौंगड़ी
 हमारे दुश्मनों का हौसला क्या लड़खड़ाया है।

दिखाया विश्व को तुमने, हमारी हड्डियाँ हैं वे
 कि जिनसे शत्रु का संहार करने वज्र बनता है,
 हमारा खून ऐसा लून है जो खौलता ऐसे
 कि ज्यों जवाना मुर्खी के गर्म से भावा उफनता है।
 सुनी लालकार दुश्मन की, दिया तलवार से उत्तर
 चमकती चार से उसकी खिजावी शान को की है,
 दिया नापाक हरकत, पाक बाँट कर रहा था जो
 कि उसकी जाक में तुमने बड़ी कौड़ी पिरा दी है।

गले में खुद होने का बना हैसिया अटक बैठा
 भिड़ा तुम है, वही का दुख उसकी याद आया है।
 जवानों हिन्दू के, जौहर दिया कर जंग में तुमने
 हमारे देश का गौरव बहुत ऊँचा उठाया है।

बहुत ही शेर पैरन हैंकों का चुन रहे हैं हम
 तुम्हारी मार ने उनका कब्र मर ही निकाला है,
 कसर ही तोड़ कर राख दी, उड़ा दीं धाँजियाँ उनकी
 मसल कर चुटकियों में क्या उन्हें तुमने उछाला है।
 अभी भी चाक जिसकी चौधराहट की जमाने में
 अभी तुमने निकट आत चाक की बखिया उछड़ी है,
 उठा कर अकल का परी कि यह साँसार ने देखा
 हमारी सूँघ टेढ़ी, और उसकी सूँघ टेढ़ी है।
 लमाई मार तुमने, मूत उसके भाग बैठा है
 इधर है वह उधर अब फिर शत्रुओं को सजाया है।
 जवानों हिन्दू के, जौहर दिया कर जंग में तुमने
 हमारे देश को गौरव बहुत ऊँचा उठाया है।

तुम्हारे नैट, पैरजेट के - चाचा सगे निकाले
 पटक कर पाँव नीचे, और क्या चुरे उड़ाए हैं,
 पहन कर शेर की जो साल, गुराँज - चाला तुम पर
 कि उसकी बाल लीची, खुद में दूँके दूँडाए हैं।
 दबोचा शत्रु का, तगड़े कई रगड़े लगाए ज
 दिलेरी का मुलममा होगया काफ़ूर दुश्मन का,
 तुम्हारे बून ने नाबून कुंठित कर दिए उसके
 विजय के खिल हूँ, गर्व चकनाचूर दुश्मन का।

तुम्हारे सामने प्युटने टिका, मस्तक झुका बैठा
विजय का पर्व यह निज देश का, तुमने दिखाया है।
जवानों हिन्दू के, जौहर दिया कर जंग में तुमने
हमारे देश का गौरव बहुत अँचा उठाया है।

लकीरें लाल लोहूरीं दिवा दीं (वींचकर ऐसी
कै जित है विश्व का भूगोल भी इतिहास भी बदला,
बदल कर चौरियाँ, जब झुझ में निज पैतरे बदले
जमाने की हवा बदली, चार-काकाश भी बदला।
सिसकती-सुबकती इंसानियत के पाँव कर आँसू
विजय की, मुर्तियों की तुमने उसे मुस्कान दे डाली,
नया ही राष्ट्र, तुमने राष्ट्र कुल का एक दे डाला
हमारे शौर्य की तुमने नई पहचान दे डाली।

तुम्हारी कीर्ति के लो रहे चर्चे जमाने में
खिल निज बहुरंगों से विश्व को तुमने लिखाया है।
जवानों हिन्दू के, जौहर दिया कर जंग में तुमने
हमारे देश का गौरव बहुत अँचा उठाया है।

शहीदों ! हम तुम्हारी शान की साँगंध लाते हैं
शिरादत यह तुम्हारी, हम न सदियों तक भुलाएँगे,
भुलाएँगे हमारी पीढ़ियों में हम तुम्हें फिर-फिर
तुम्हारी याद हम अविशम साँसों पर भुलाएँगे।
तुम्हारा धून चरती को बना है उर्वरक ऐसा
कै अब बलिदान की फासलों निरन्तर लहलहाएँगी,
ग्रहण कर भेंट प्राणों की, हमारे देश की लड़कियाँ
कै न पूतों ललेंगी और अब दुष्टों लहलहाएँगी

शहादत को तुमहारी, हम मरण कहव्यों फुकारें, जब
जिनाया देश को हमने, नया जीवन जगाया है।
जवानो हिन्द के, जो हर दिना कर अंग में हमने
हमारे देश का गौरव बहुत उँचा उठाया है।

— x —

(२)

युद्ध आया बनकर त्यौहार

युद्ध आया बनकर त्यौहार ।
स्वर्ग का खुला हुआ यह द्वार ।

शत्रुकी सुन रणकी ललकार
गुदित हों की हमने लीकार
हुआ कण-कण जलता अंगार
कै साँसें बनीं धुध धुंकार
हुई द्रुत जीवन की रफ्तार
कि बन्धन दौड़ा सरपट मार
कि जीवन लपटों का आतार
बुढ़ापे पर जीवन बलिहार
प्रलय को बनकर पारावार
रक्त को लगा उफाने ज्वार

युद्ध आया बनकर त्यौहार ।
हमारे शोणित का भुंगार ।

वीरता लेकर सभी दुखार
शत्रु ने किया हिन्दु पर नार
येहाँ बच्चा-बच्चा है नार
सान पर-चढ़ी हुई भी-चार
म्यान से भयका पड़ी तनवार
भगाई कसकर ऐसी मार
शत्रु-सेना को-चढ़ा बुवार
मन्य गया भीषण हाहाकार
हिल गई अन्यायी तरकार
दिनेरी में पड़ गई दार

युद्ध आया बनकर लौहार ।
युद्ध ही केवल एक विचार ।
युद्ध आया बनकर लौहार ।

देव कर हैंक दे त्यागार
सुरमा हर्षित हुए अपार
किए जन्म-जन्म कर स्वल्प पार
तोड़ कर दिया उन्हें बेकार
एक भेजा दिव्यी उपहार
भगा दर्शक-दल का दरवार
हैंकों का बहू ठेकेदार
पिट गया उसका सब त्यागार
हुआ बिलकुल गन्दा बाजार
न्यायित ही दोन रहा संसार

युद्ध आया बनकर लौहार ।
हमारे बल को आर न पार ।
युद्ध आया बनकर लौहार ।

गर्व में शत्रु-जेट सरसाए
लगे करने नभ में संचार
हमारे नैट उठे हुंकार
तुम्हारे सँ करके संचार
कर दिया जेटों का संचार
किया निज गौरव का विस्तार
हमारे वीर रुद्र अवतार
मौत की करते बेलोंप्यार
ध्वस्त कर दिए सैन्य-भंडार
भंग कर दिए खिलवाड़ार

युद्ध काया बन कर लौटार ।
शत्रु-आक्रमणों का पतमार ।
युद्ध काया बन कर लौटार ।

जवानों की हो जय-जयकार
देश के से हृदय परेकार
हृदय में मातृभूमि का प्यार
नीरता में विद्युत का प्यार
विश्व जन-मन पर हुए खार
सुयश के लँग बन्दनवार
पहन कर जवानाओं के तार
मृत्यु में किया अनन्य-आभार
देश पर किया अकण्य उपकार
उड़ा कर शत्रुओं की दीवार

युद्ध काया बन कर लौटार ।
युद्ध का लीए नभन तामार ।
युद्ध आया बन कर लौटार

आज सब ही अनुमान लगा सकते हैं कि जब
सेना के अंगरक्षकों ने इस स्वयं को चुना होगा तो
उन्का क्या हाल होगा। हर सैनिक खुशी
के मारे उछल-उछल पड़ता था और जब
पद के अन्त में "सुख काया बन कर लौटेंगे"
पढ़ा जाता था तो वे सभी के सब एक साथ
हाथ उठा कर चिल्ला पड़ते थे - "सुख काया
बन कर लौटेंगे।"

~~संस्करण~~
कविता-पाठ समाप्त होने पर सैनिकों ने
मुझे बहुत आदर के साथ गाड़ी में बिठाया। एक
पूरी बर्ग पर उन्होंने मेरा विस्तार फैला दिया
और सहायकों से निवेदन किया कि इन्हें
रास्ते में कोई कष्ट न हो। कुछ अज्ञान
दौड़-दौड़ गए तो फल-फूल और मिठाइयाँ
खरीद आए और एक सुराही भरकर भी मेरे
साथ रख दी।

मैं निश्चिंत हूँ कि यदि सुख में जानेवाले
सैनिक-दलों को इसी प्रकार की वीर-भावनाओं
से अनुप्रेरित किया जाय तो निश्चित ही
उनके हौसले बुलन्दी पर पहुँच सकते हैं
और देश के लिए वे बहुत कुछ कर सकते हैं।

मेरे पास सब कुछ है जो मैंने को कहना पड़ा कि इतना अच्छा
कैसे समझेंगे यहाँ पहले कभी नहीं हुआ।

शानीजे' की काव्य-रानी

मध्य प्रदेश के पार्लियम-निगड अंचल के सैंधवा नगर में
फदि-समेलन आयोजित था। व्यासदा के कारण मैंने वहाँ पहुँचना आवीकार
कर दिया था। १६ीं बालकाली बैरागी वहाँ दोपहर तक पहुँच गए और टेलीफोन
झाग उन्होंने मुझे सैंधवा पहुँचने के लिए जोरदार अनुरोध किया। सैंधवा
पहुँचने के लिए मुझे कहीं-कहीं और फिर समय बसें मिलेगी, यह सब
कुछ उन्होंने मुझे समझा दिया। जब मैं उज्जैन बस-स्टेण्ड पर पहुँचा
तो इन्दौर जाने वाली बस मुझे अपने हाथों धूँटती दिखाई दी। बस-
स्टेण्ड के टेलीफोन से मैंने गुंगी-गाँव के सूचित किया कि इन्दौर
जाने वाली बस को रोककर रखा जाए, मैं टैक्सी से वहाँ पहुँच रहा हूँ।
इस प्रकार गुंगी-गाँव पर मैंने वह बस पकड़ ली और आश्चर्य से
होगा कि इन्दौर पहुँचने पर सैंधवा जाने वाली बस मुझे मिल
जाएगी। दुर्भाग्य से उस दिन सड़क पर मारवाड़ियों के गाड़ों और
वैलों के रेवड़ इतने निकले कि जब मैं इन्दौर बस-स्टेण्ड पहुँचा तो
मुझे बताया गया कि सैंधवा जाने वाली बस अभी पाँच मिनट पहले
ही धूँटी है। मैंने एक टैक्सी के वाले से कहा कि तुम उस बस को
पेछा करो और जहाँ भी वह बस मिलेगी, मैं तुम्हारा पूरा किराया
पुका दूँगा। टैक्सी वाला मुझे लेकर चले पड़ा। नगर के कुछ
बाहर ही वह बस मुझे मिला गई। मैं समय पर सैंधवा पहुँचने
के लिए पूर्ण रूप से काश्त हो गया।

मैं जिसे बस में यात्रा कर रहा था, वह मध्य प्रदेश परिवहन-
निगम की थी। उसने परिचालक ने मुझे बताया कि यह बस तो
सैंधवा नहीं जाएगी, पर यह आपको जुलवानिया पर छोड़
देगी, जहाँ सैंधवा जाने वाली प्रायवेट बस इन्वैली स्वारियाँ
लेकर ही जाती है। जब उस बस ने मुझे जुलवानिया पर
उतरा तो मैंने देखा कि एक प्रायवेट बस वहाँ खड़ी थी। टिकिट

काबू में मैंने सेंचवा का एक टिकिट देने में लिए कहा। आने
कहा -
"काबू साहब, आप क्या में बैठ जाइए, वही आपका टिकिट
मिल जाएगा।"

मैं क्या में बैठ कर ~~आइए~~ काबूवात लोग का काबू में
सेंचवा जानेवाली बात मिलती गई। पूरी बात भर जाने पर का-
बूवात भी। लगभग बीस किलोमीटर चलने के पश्चात् जब
एक एक किरीटियन पर रुकी तो मैंने परिचायक से पूछा कि
यह बात सेंचवा किस समय तक पहुँच जाएगी। सेंचवा पहुँचने
की बात सुनकर परिचायक मेरे मुँह की ताप देवने लगा
और बोला -

"साहब, यह बात सेंचवा नहीं जा रही है, यह तो
विरगोन जा रही है।"

अब उनके मुँह की ताप देवने की वारी मेरी थी। मैंने
बहुत परेशान होकर कहा -

"कहा यह बात सेंचवा नहीं जा रही थी तो आपने मुझे
इसमें बैठने के लिए कहा" कहा और जब मैंने आपसे
टिकिट माँगा तो आपने कह दिया कि टिकिट वह में ही
दे देंगे। यदि आपने टिकिट दिया होता तो मैं पढ़ तो
लेता कि आपने मुझे कहाँ का टिकिट दिया है।"

उत्तर उत्तर -

"कहा आज तक किसी काजी ने किसी कब्जवादी लिखावट
पढ़ी है जो आप मेरी लिखावट पढ़ लेंगे। कि आप काही-
गए हैं तो सा तो यहाँ उतर जाइए या खरगोन 19
चलिए।"

"कहा यहाँ उतर जाने पर जुगवाविया जाने के लिए
मुझे कोई बात मिल जाएगी?"

"नहीं, किसी ताप भी जाने के लिए यह काबू
बात है।"

मैंने कुछ अकड़ के साथ उत्तर कहा -

“ देखिए कन्डक्टर साहब, गलती आपकी है जो एक तो आपने मुझे मुझ मूँहको टिकित नहीं दिया और दूसरी बात यह कि वाक के सामने आपने यह नहीं लिखा रहा कि यह वाक कहां जा रही है । आपकी गलती का इलाज यही है कि आप गाड़ी ज़ुलवानिया वापिस ले-वालिए । मैं कहां से किसी ट्रक द्वारा हेंचवा पहुँच जाऊँगा । ”

मेरा यह प्रभाव मुझको कन्डक्टर मझा कर बोला -

“ आप कोई मोट साहब हैं जो मैं आपके लिए वाक वापिस ले जाऊँगा । यह गाड़ी मैं यं जो पचास सवारियाँ बैठी हैं क्या इनका समय बरबाद नहीं होगा ? यह होगई है, इन लोगों को भी तो समय पर अपने ठिकाने पर पहुँचना है । ”

यद्यपि मुझे किसी अच्छे नतीजेकी आशा नहीं थी, पर मैंने कन्डक्टर की बात को पकड़ते हुए कहा -

“ अगर ये पचास सवारियाँ वाक को लौटा कर ज़ुलवानिया तक ले जाने के लिए सहमत हो जाएँ, तब तो आप वाक वापिस ले-वालींगे या नहीं ? ”

उसका उत्तर था -

“ पचास सवारियाँ और वाक को वापिस ले जाने के लिए राजी हो पाँय, यह मुमकिन ही नहीं है, आप इनसे पूछ कर देख लीजिए । ”

आशा की श्रृंखला एक क्षण फिर मुझे टूट गई थी । मैंने चतुरे पर अटकत विनम्र भाव लाते हुए हाव जोड़ कर सार्वियों से कहा -

“ मैं एक बर्षी हूँ । मेरा नाम श्रीकृष्ण सरल है । एक बर्षी-सम्मेलन के लिए मुझे हेंचवा पहुँचना था । वहाँ हजारों लोग मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे । मेरे न पहुँचने पर वचन-भंग हो जाएगा, उन लोगों का कार्यक्रम बिगड़ भी सकता है । आप लोग यदि इस वाक को ज़ुलवानिया तक लौटाने के लिए राजी हो जाँय तो मेरा और हेंचवा वालों का काम बन जाय । आप लोग यही समझ लीजिए कि किसी बरसी को सुधारने के लिए वह एक प्यारें तक नहीं रुकी रही । ”

मेरा बकाना मुझको सवारियों में कुछ छुर-छुर आरम्भ हुई । उनमें से एक बोला -

"क्या आप वही कवि जी हैं, जो शहीदों की क्रांतिकारियों पर कविताएँ लिखते हैं?"

"जी हाँ, वही हूँ।" मेरा उत्तर था।

उस सत्री ने अपने कुछ सार्विकों से कानाझूँगी की ओर मुझोंको -
"हम लोग आपकी उठ प्रार्थना से प्रेरित हो सकते हैं कि इस माइ गाड़ी को जुलवानिया वापिस लौटाया जाय, लेकिन हमारी कि शर्त है?"

"आपकी क्या शर्त है?" मैंने पूछा।

उसकी शर्त थी -

"वापिसी-यात्रा में जब तक यह बात जुलवानिया पहुँचें, आपकी पूरे समय हमें कविताएँ सुनानी होंगी।"

उस लोगों की यह शर्त मैंने तुरन्त स्वीकार कर ली और फन्डक्टर से गाड़ी लौटाने के लिए कहा। फन्डक्टर परेशान कि क्या किया जाय। वह बोला -

"सहब, हमारी ही बात क्या, काज तक किसी भी भी बात उस मुकाम पर नहीं लौटी, जहाँ से वह चली गई। हेरत तो यह है कि ये पच्चास स्वारियों आप की बात मान गई, जिसकी कतई उम्मीद नहीं थी। हमक से बात निकाल कर मैं खुद ही फैल गया हूँ। चलिए, वापिस ही लौटी।"

फन्डक्टर ने इरादा को आदेश दिया की गाड़ी वापिस जुलवानिया के लिए चलेगी। राते पर मैंने शहीदों पर लिखी गई फड़कती हुई कविताएँ सहयात्रियों को सुनाई। जुलवानिया पहुँचने पर उस स्वारियों ने अपनी गाड़ी उठ समय तक वापिस नहीं की, जब तक मुझे सेंचवाकी ओर जाने वाले ट्रक से बिछा नहीं दिया।

जब मैं सेंचवा पहुँचा तो कवि-सम्मेलन प्रारम्भ हो चुका था। काका हाथरसी कविता पढ़ रहे थे। उसकी कविता समाप्त हो जाने पर मैं मंच पर अपासीत लोगको ही बालकवि बंगाली को बताया कि मैं किन परिस्थितियों में से गुजर कर सेंचवा पहुँचा हूँ। कवि सम्मेलन का संचालन वे स्वयं ही कर रहे थे। उन्होंने यह कह कर प्रार्थित किया -

“आप लोगों को यह जानकारी एवं होगा कि सरलजी मंच पर उपासित होगए हैं। मैं उनसे अनुमति करता हूँ कि वे कविता न सुनाकर वह कतानी सुनाएँ कि कितनी परीक्षिकाओं में से गुजर कर वे मंच पर पहुँच सके हैं।”

मैंने बड़ी मन्त्रवैदा भाषा में आप-कीती कह सुनाई। लोगों को बड़ा आनन्द आया। जब मैं आप-कीती सुनकर अपने स्थान पर बैठ गया तो श्री बालकवि बैरागी ने माइके से घोषणा की -

“अभी तो सरलजी ने आप-कीती सुनाई है। इनसे कविताएँ सुनना तो अभी बाकी है। कुछ समय पूर्व ही इनका ‘मगतसिंह’ महाकाव्य प्रकाशित हुआ है। मैं आपको बताऊँ कि इन्होंने पुल-स्त्रैप साइज में इतने पृष्ठ लिख दाने हैं कि हम लोग जीवन भर उतने पोस्ट कार्ड अपनी प्रेमिकाओं को नहीं लिख सकते।”

उनसे इतना कलम को चुनकर समा-मण्डप में हँसी के कहकरे गुँजने लगे। स्त्रिका नाम उठते हुए मैंने - पुटकी ली -

“मैं समझता हूँ कि आप लोगों में से कोई भी प्रेमी ऐसा सुवि गी होगा, जो अपनी प्रेमिका को खुला पोस्ट कार्ड लिखे।”

मेरी इस पुटकी को सुनकर समा-मण्डप में हँसी को इतने जोर का बहका उठा कि बहुत देर बाद शान्ति स्थापित हो सकी। जब लोगों ने जी भरकर हँस लिया तो बालकवि बैरागी ने माइक पर घोषित किया -

“आप लोगों ने देखा कि कीर राव का कवि कितना अच्छा हास्य उत्पन्न कर सकता है। मैं दादा सरलजी से अनुमति करता हूँ कि वे इस कीर में कीर राव की कविता न सुनाकर हास्य राव की कविता सुनाएँ क्योंकि वे हास्य राव की कविताएँ भी लिखते हैं और वातावरण हास्य राव का बन गया है।”

विवश होकर मुझे हास्य राव की कविता सुनानी पड़ी। मोहन शर्मादियों का जो और कहीं दूर शादी का बँड जीवज रहा था। उसी की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करते हुए मैंने एक चतुष्पदी जो आपना भाव्य-पाठ पारम्भ किया -

" भयंकर बाद में व्यास दिनारा रह न पाएगा,
 न लड़की लामकी, लड़का हमारा रह न पाएगा ।
 जिंदर देवे उचर दुलहा, जिंदर देवे उचर दुलहिन -
 अरे, इस साल कोई भी कुँकारा रह न पाएगा ।"

इस चतुर्थकी को पुनः लोनों को सजा आगया । काका
 हाकासी ने जी जी बोल कर दाद दी । मैंने आज कहल आरम्भ
 किया -

" आदियों के ऐसे सौजन में भी जो आगया कुँकारा रह पाये,
 वह भगवान से किहू ठरु लड़का-भगइता है, अली गिले-गिलने
 की कविता में कापकी चुना रहतूँ, (जिह्वा शीर्षक है -
 मैं बैठा अभी कुँकारा हूँ ।"

शीर्षक पुनः कर ही लोनों को सजा आगया । कुँकारा लोनों ने
 पास बैठे अपने कुँकारे मित्रों को कोहलियाँ मार कर उनके साथ
 दोड़प्यड़ की । मैंने वह पूरी कविता लगते हुए 6 हफ्तों के बीच
 चुना डाली । कविता इस प्रकार थी -
 मैं बैठा अभी कुँकारा हूँ

क्या चुनते हो भगवान कहीं
 मैं बैठा अभी कुँकारा हूँ ।
 संगी-सानी फल-फूल रहे
 मैं ही किल्लत का मारा हूँ ।

ढल गई उम्र इतनी मेरी, यह देर नहीं है तो क्या है ?
 शादी न एक भी हुई अरे, अंचेर नहीं है तो क्या है ?
 क्या बिगड़ेगा तेरा, मुझको यदि कोई दुलहिन मिल जाए ?
 क्या बिगड़े तेरा, कभी-कभी यदि मेरे मनकी लिल जाए ?
 अब तो हर रूप मुझे प्यलता, हर चितवन मुझको लगती है,
 हर भली शक्ल मुझको अपनी भावी पत्नी-सी लगती है ।
 प्रतिदिन-प्रतिपल मुझको शादी की चिन्ता छार जाती है,
 दुलहिन तो दूर रही, शादी मुझसे शरमार जाती है ।

इस चिन्ता में ही सूख-सूख
 बनता जा रहा प्युहार हूँ ।
 क्या चुनते हो भगवान कहीं

तुम तो नटूनीजी को लेकर करते होगे रोमांस कहीं,
या बनें कन्हैया, राधा संग तुम करते होगे डांस कहीं।
पर, कीत रही क्या इतना दिन पर, इतना तुमको अंदर नहीं,
जो मैं परसों था, काल न रहा, जो कल नामें वह आज नहीं।
अन्याय तुम्हारा अब मुझसे, बिलकुल भी नहीं सहा जाता,
रेह चुका कुँआरा इतने दिन, अब मुझसे नहीं रहा जाता।
जागी चित्तर हो गए तुम, जो कल तक ने कलवार बने,
क्या खेड़ रहे हैं सीढ़े स्वर, सारंगी और सितार बने।

यह मेरा ही दुभाग्य

अभी तक बना हुआ इकतारा हूँ।

क्या सुनते हो भगवान कहीं

मैं बैठा अभी कुँआरा हूँ।

बादल के बिना नहीं लाइल, अनुभवी सभी यह कहते हैं,
कोई दो, कोई तीन-तीन तक लिए सारा में रहते हैं।
भगवान बता तो दे, उनसे तो क्या रिश्तों में लेता हूँ?
शादी पर शादी करने के उनको परामिट दे देता हूँ।
आपराध किया है क्या मैंने, क्या तेरा कभी बिगाड़ा हूँ?
जो मेरा घर ही बृहन्नर का अब तक बना आनाड़ा हूँ।
मैं हूँ वह सुनी डाल, नजिह पर कोई पंचली लाल-चाया,
मेघवती न एक भी फाँसी, जाल में ते सदैव ही फैलाया।

जिसको चारा ने छुआ नहीं

मैं प्यासा वही किनारा हूँ।

क्या सुनते हो भगवान कहीं

मैं बैठा अभी कुँआरा हूँ।

घिर कर तो आई बहुत, किन्तु बरसी कोई भी पटा नहीं,
क्यों रेपन का बादल ऐसा धाया, जो अब तक हटा नहीं।
आवश्यकता है गृहिणीकी, ये विरापन भी व्यपवार,
पच्चीहं-चलीं बहुत, अवसर इन्तरव्यू के अगणित आए।
हर बार नतीजा जारिजा, हर इन्तरव्यू में फैल हुआ,
बन गया तमाशा मैं जग को, किस्मत का ऐसा बिल हुआ।
पुटपुट सन्यासी नहीं, ओर है रासी नहीं मैंने दाढ़ी,

तुम तो लक्ष्मीजी को लेकर करते होगे रामाजी को,
या बने कन्हैया, राधा संग तुम करते होगे डांठ कलें।
पर, बीठ रही क्या इतना दिन पर, इतना तुमको अंदाज नहीं,
जो मैं परसों था, काल न रहा, जो कल नामें वह आज नहीं।
अन्याय तुम्हारा अब मुझसे, बिलकुल भी नहीं सहा जाता,
रेह चुका कुँआरा इतने दिन, अब मुझसे नहीं रहा जाता।
नामी चित्तर हो गए तुम, जो कल तक ने कलदार बने,
क्या चेड़ रहे हैं सीढ़े स्वर, सारंगी और सितार बने।

यह मेरा ही दुभाग्य

अभी तक बना हुआ इकतारा हूँ।

क्या सुनते हो भगवान कलें

मैं बैठा अभी कुँआरा हूँ।

वाइफ के बिना नहीं लाइफ, अनुभवी सभी यह कहते हैं,
कोई दो, कोई तीन-तीन तक लिए साथ में रहते हैं।
भगवान बता तो दे, उनसे तू क्या रिश्ता ले लेता है?
शादी पर शादी करने के उनको परामिट दे देता है।
आपराध किया है क्या मैंने, क्या तेरा काम बिगाड़ा है?
जो मेरा घर ही ब्रह्मचर्य का अब तक बना आनाड़ा है।
मैं हूँ वह धुली डाल, न जित पर कोई पंखी लालचाया,
मेवली न एक भी फंसी, जाल मैंने सदैव ही फैलाया।

जिसको चारा ने ढुआ नहीं

मैं व्यास कलें दिनारा हूँ।

क्या सुनते हो भगवान कलें

मैं बैठा अभी कुँआरा हूँ।

घिर कर तो आई बहुत, चिन्तु बरसी कोई भी पटा नहीं,
क्वॉरेपन का बादल ऐसा धराया, जो अब तक हटा नहीं।
आवश्यकता है गृहिणीकी, से विरापन भी व्यपार,
पच्चीहं-पल्ली बहुत, अवसर इन्टरव्यू के अगणित आए।
हर बार नतीजा जरिआ, हर इन्टरव्यू में फेल हुआ,
बन गया तमाशा मैं अगली, किस्मत का ऐसा खेल हुआ।
पुटपुट सन्यासी नहीं, ओर है राखी नहीं मैंने दाढ़ी,
क्यों मुझको देरव बिचक जाती, मेरी होनेवाली लाढ़ी।

तू दाव जितादे शादी का
जिसको लदेव में हारा हूँ ।
क्या सुनते हो भगवान कहीं
में बैठा अभी कुँआरा हूँ

अब बन-ठन कर-चलता कोई मदमाता इल्लाता इल्ला,
तो अपना दिल हो जाता है, जैसे कोई जलता-धूल्ला ।
अब चूम-चूम से जाती है बारात किसीकी सजधज कर,
मन करता, दूल्हे को चक्का देकर आवे हूँ जोड़े पर ।
दुल्हाहिन जाती दिवली हो मन करता, बारात सब उड़ जाए,
दुल्हाहिन की जेली, अपने घर के दरवाजे में मुड़ जाए ।
सपनों में भी मुझको अपनी शादी होती दिवलाती है,
परमात्मा को दुल्हाहिन बढ़ती, बस नींद तभी खुल जाती है ।
शादी की चिन्ता में पिन्चका
में पंचर-ता गुब्बारा हूँ ।
क्या सुनते हो भगवान कहीं
में बैठा अभी कुँआरा हूँ ।

हे प्रभु! अब तो मेरी सुनने, कानों को बन्द किबाड़ न कर,
गठ-बन्धन जलती करवादे, अब चौरज से किबाड़ न कर ।
मुझ पर अपना घर है फिर भी कहना न सका मैं घरवाला,
मेरी किस्मत पर तो तूने, जड़ दिया उलीगढ़ का ताला ।
बॉन्ट मंडे-ठाबीज बहुत, की जन्तर-मन्तर की माया,
पर मेरे घर में आ न सकी, लड़की क्या लड़की की दया ।
अब यही एक कलियावा है, दिल में बस एक तमना है,
कोई बन्नी बन जाए तो, बैठा उच्चार यह बन्ना है ।
क्यों नहीं शर्चना सुनता तू ?
क्या समझ लिया नक्कारा हूँ ?
क्या सुनते हो भगवान कहीं
में बैठा अभी कुँआरा हूँ ।

वह शुभ दिन कब आएगा प्रभु, बाराह सजेगी जब मेरी,
 मैं दूला बन कुश होऊँगा, जब कृपा-दृष्टि होगी तेरी ?
 लम्बे-लम्बे कर गए वर्ष, कब दिन भी मुश्किल से कटते,
 भक गया जिन्दगी से मैं हूँ, शार्क-शार्क रहते-रहते ।
 हे दीनबन्धु ! हे दयासिन्धु ! मेरी जीवन-तरणी खे दे,
 गोरी-काली धोटी-मेढी, जैसी भी हो वैसी दे दे ।
 मैं बड़े प्यार से रखूँगा, उसके मन को बहलाऊँगा,
 सर-मालिश, चूतों पर पालिश करके गिर विनय पुनछेंगा -

मैं जनम-जनम के लिए देवि !

सेवक होगया तुम्हारा हूँ ।

क्या चुनते हो भगवान कहीं

मैं बैठा उभी कुँकारा हूँ ।

तुमने प्रह्लाद और ध्रुव को संकट में दिया सहारा है,
 भारी संकट में पड़ा हुआ पहलो तो भक्त तुम्हारा है ।
 तुम देते धरप्पर फड़-फड़, जिस पर प्रसन्न हो जाते हो,
 क्यों नहीं एक मेरे प्यार में तुम अच्छी-सी टपकाते हो ?
 तुम किसी-किसी को एम० एल० ए०, सचिव, मंत्री-पद देते हो
 पर मुझको पत्नी देने में क्यों हाथ खिंच तुम लेते हो ?
 तो चुनलो तुम भी, मैं बनता अब आप्तको परकाजी हूँ,
 मैं लिए कुँकारों की सेना, सत्याग्रह करने वाला हूँ ।

शादी करके ली मानूँगा

मैं लगा रहा यह नारा हूँ ।

क्या चुनते हो भगवान कहीं

मैं बैठा उभी कुँकारा हूँ ।

शायद तुमको डर होगा प्रभु, होगई अगर मेरी शायी,
तो और उगाते कर आयेगी मातृकी बढ़ती आवादी ।
विश्वास दिलाता हूँ तुमको, बच्चा प्यार में तब आएगा,
परिवार-निर्लेखन - आधिकारी का जब परमिट मिल जाएगा ।
सूना प्यार गुँज उठे, दुलहिन देवे पायल की रुनभुन-सी,
रुनभुन-सी तेरे पास न ले, तो चल जाएगी दुनदुन-सी ।
हर ऐरे-गैरे को तुने, सुन्दर पत्नी दे डाली है,
तुमको किसी भी देने में, तू दिलाता कांशाली है ।

तू सब को देता आया, क्या
में तैरा नहीं दुलारा हूँ ?
कदा छुनते हो भगवान कहीं
में बैठा अभी कुँआरा हूँ ।

हे मेरी भावी प्राणप्रिये ! तुम होगी जाने किस प्यार में,
आकर प्रस्थापित हो जाओ, प्रतिमा-सी मेरे अंतर में ।
विश्वास दिलाता हूँ तुमको, मैं सेवक-धर्म निभाऊँगा,
हूँ जितने पत्नी-भक्त वहाँ, सब का नेता बन जाऊँगा ।
दर्जनों सड़ियाँ निटम नई, तुम पर न्यौं व्यावर कर दूँगा,
बैठी-बैठी खाते रहना, रातगुप्तों से प्यार भर दूँगा ।
तो आओ मेरे जीवन में, हे मेरे सपनों की रानी !
भूगनयनी तुमको समझूँगा, चोहे तुम हो तिरपट-कानी ।

मत डरो, अफसोसी ही हूँ मैं
मत समझो मैं अंगारा हूँ ।
कदा छुनते हो भगवान कहीं
में बैठा अभी कुँआरा हूँ ।

हास्य की प्रस्तुत रचना आपने पढ़ी। आपके लगता होगा कि
गायक विषय होते हुए भी इनमें कमर्सीय और अश्लीलता नहीं है।
इसमें एक कुँआरे का युक्त मनोविश्लेषण है और इसी कारण यह रचना
चिर-स्थायी रहेगी। मैं इसी प्रकार का हास्य लिखने का प्रयत्न करती
रहा हूँ। हास्य की बात-चाल रही है तो एक और सत्य पहचान
का उद्घोषण करते एक कविता उद्धृत कर दूँ।
दुनिया में बस तुम्हीं गधे हो!

— क्योंकि नहीं, मैं किसीके प्रति यह प्रकार के शब्दों का
अपवायकानेकी भूल नहीं कर सकता। 'दुनिया में बस तुम्हीं गधे हो'
यह तो मेरी एक कविता का शीर्षक है, जिसे मुझे एक बार
सिंघाट में डाल दिया था। पहला यह प्रकार है—

मैं उन दिनों कवि-सम्मेलनों में हास्य-कवितारंग भी सुनाया
करता था। स्व० पं० साधनमाल-चतुर्वेदीजी ने नगर लण्डन में कवि-सम्मेलन
आयोजित था। जब कविता सुनाने का मेरा क्रम आया तो माइके
के सामने खड़े होकर मैंने कहा—

“कविता का शीर्षक है— ~~दुनिया में बस तुम्हीं गधे हो~~
यह शीर्षक सुनकर सामने की पंक्ति में ~~मुझे~~ महानदी के किनारे बैठे हुए
एक सिंघात सज्जन ने तपाक से खड़े होकर विरोध प्रकट करते
हुए कहा—

“आपने मेरी मजालिया में मेरा अपमान किया है। आपने मेरी
तरफ उँगली का इशारा करके कहा है— 'दुनिया में बस तुम्हीं गधे हो'।”
मैंने विनम्रता से उत्तर दिया—

“प्रियान! किसी का अपमान करने का मेरा कोई शास्त्र नहीं
था। यदि गंधकी से मेरी उँगली आपकी ओर उठ गई हो तो शर्मा
लिए मैं आपके प्रति क्षमा-प्रार्थी हूँ।”

सुनिवादी सज्जन ने आगे कहा—

“देखिए, आपने एक कॉन्वेंटर का अपमान किया है और उहाँ
को नगर के हज्जारी लोगों के सामने। यह अपवाद के लिए केवल
माफी माँगने से काम नहीं चलेगा।”

यह जानकर कि यह व्याक्ति तो इस नगर का कॉन्वेंटर

निकला, मैं भाड़ा (नफकाया)। मैंने उनसे निवेदन किया -
"आप कहते हैं कि केवल आपसे माँगने से काम नहीं चलेगा,
तो विकास की तृतीयता भी आप ही कीजिए।"

मेरा वाक्य सुन कर उन्होंने अपने पास बैठे सज्जन की ओर
इंगित करते हुए कहा -

"जो सम्मान आपने मुझे दिया है, वही सम्मान आप मेरे पास
बैठे डिप्टी-कमिश्नर महोदय को भी दीजिए, नहीं तो इनकी शिकायत
होगी कि मुझे किसी काविल नहीं समझा गया।"

उसका यह वाक्य सुन कर समा में ठहलने लूट पड़े। कमिश्नर
महोदय ने विनोद का वातावरण तैयार कर दिया था जो अब वहाँ
मेरी भी, लोगों का हँसाने की। जो कविता मैंने वहाँ पढ़ी थी,
उसे यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ -

दुनिया में वस तुम्हीं गच्छे हो

क्यों कितने लीचे-सच्चे हो तुम, जहाँ लड़े हो गए, लड़े हो।
कौन गच्चा कहता है कोना, दुनिया में वस तुम्हीं गच्छे हो,
काम परिश्रम का करने में, तुम सचमुच ही बहुत सच्चे हो।
स्वामीभक्त हो तुम महान, तुम बहुत बड़े आराधारी हो,
निर्विकार, निर्मितरुदा तुम, स्मृति-प्रसन्न बड़े भारी हो।
हो अवतार-धैर्य के तुम ही, जितना लड़ो, तुम लड़ जाते,
नहीं शिनायत-स्मिन्ने करते, जान-बूझ भी नहीं हिलते।

तुम सब की सब कुदृष्ट सुन लेते, नहीं किसी से तुम भागड़े हो।
कितने लीचे-सच्चे हो तुम, जहाँ लड़े हो गए, लड़े हो।

सादा जीवन उच्च विचारों के सन्तुल्य तुम ही प्रतीक हो,
जैसे बने, रहे वैसे ही, तुम पत्थर पर सिंचे लोक हो।
जो आ पड़ती, अद्भुत सहस्र दिवला कर रहे तुम रहते हो,
जब देलो, गंभीर विचारों में ही तुम डूबे रहते हो।
तुम संतोषी हो, मिल सकता नहीं तुम्हारा कोई हानी,
खोजा-सूखा ब्रह्म ही तुम ही लेते हो छंटा पानी।

आसानी हीरे हो, दुर्दिन वश किन्तु धूल में भज पड़े हो।

“ आप कहते हैं कि केवल आप ही माँगने से काम नहीं चलेगा,
तो विकास की तकनीक भी आप ही कीजिए । ”

— मेरा कामन चुन कर उन्होंने अपने पास बैठे सज्जन की ओर
इंगित करते हुए कहा —

“ जो सम्मान आपने मुझे दिया है, वही सम्मान आप मेरे पास
बैठे डिप्टी-कमिश्नर महोदय को भी दीजिए, नहीं तो इनको शिकायत
होगी कि मुझे किसी काबिल नहीं समझा गया । ”

उसका यह कामन चुन कर समा में कहाने खूब पड़े । कमिश्नर
महोदय ने विनोद का वातावरण तैयार कर दिया था जो अब वारी
मेरी थी, लोगों को हँसाने की । जो कविता मैंने वहाँ पढ़ी थी,
उसे यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ —

दुनिया में वस तुम्हीं गये हो

— मैं कितने ही धर्म-सच्चे होतुम, जहाँ खड़े हो गए, खड़े हो ।
मैं न गद्दा कहता हूँ लोगों, दुनिया में वस तुम्हीं गये हो,
काम परिश्रम का करने में, तुम सचमुच ही बहुत सच्चे हो ।
स्वामी भक्त हो तुम महान, तुम बहुत बड़े शायकरी हो,
निर्विकार, निर्मित हृदय तुम, स्मृति-प्रज्ञा बड़े भारी हो ।
हो अवतार-धर्म के तुम ही, जितना जानो, तुम लय जाते,
नहीं शिनायत-सिखे करते, ज्ञान-पुँध भी नहीं हिलाते ।

तुम स्वामी स्वकुक्ष्य चुन लेते, नहीं किसी से तुम भगड़े हो ।
कितने ही धर्म-सच्चे हो तुम, जहाँ खड़े हो गए, खड़े हो ।

सादा जीवन उच्च विचारों के सचमुच तुम ही प्रतीक हो,
जैसे वने, रहे वैसे ही, तुम पत्थर पर सिंची लीक हो ।
जो का पड़ती, अद्भुत साहस दिखाना कर वह तुम रहते हो,
जब दोषों, गंभीर विचारों में ही तुम डूबे रहते हो ।
तुम संतोषी हो, मिल सकता नहीं दुलारा कोई सानी,
खोजा-खोजा बिकार ही तुम जी लेते हो छंड़ा पानी ।

आसानी हीरे हो, दुर्दिन वश किन्तु धूल में भज्य पड़े हो ।
कितने ही धर्म-सच्चे हो तुम, जहाँ खड़े हो गए, खड़े हो ।

कई भाग्यशाली रहे भी हैं, जहाँ तुम जीता पद पाते,
 बने कर स्वप्न कभी तुम्हारे, वे अपना सम्मान बढ़ाते।
 सिंगीतदा कहते हैं जो, तुम भी हो क्या उगरे कुछ कम ?
 राग पुराना नहीं तुम्हारा, शत-प्रतिशत है मौलिक सरगम।
 जब तुम गर्म-राग चुनते, बड़े-बड़ों को चकाराते हो,
 शौका नहीं तुमको फिलमी का, रायद पक्का ही गाते हो।
 जो दुनिया में बड़े कहते, तुम उनसे भी बहुत बड़े हो।
 कितने सीधे-सच्चे हो तुम, जहाँ खड़े होगए, खड़े हो।

साध्यान् है दुनियावाले! बुद्धि तुम्हारी चकाराएगी,
 हैं कितने, उन सभी गव्यों पर जब मेरी भीसीतकारगी।
 सब का वर्गीकरण करूँगा, होगा मौलिक विशद-विवेचन,
 पयं विश्व-विद्यालय मेरा ग्रन्थ व्यापारगा चिर-चूतन।
 प्यारे गव्यों प्रेरणा तुमने दी, मुझको यह चान रहेगा,
 मेरा और तुम्हारा, जगदी जयचरो पर गुण-गान रहेगा।
 तुम प्राणी सामान्य नहीं हो, शत चरती पर रत्न जड़े हो।
 कितने सीधे-सच्चे हो तुम, जहाँ खड़े होगए, खड़े हो।

'प्रवर' शब्द यह 'स्वर' में ही तो 'प्र' उपसर्ग जोड़ कर जाता,
 प्रवर-बुद्धि स्वर-बुद्धि प्रणका क्यों, यह अंतर मैं समझ न पाता।
 मैं तो इतना कह सकता, तुम इन बातों से बहुत परे हो,
 यह निष्कर्ष निकाला मैंने, प्रियवर तुम खर नहीं, खरे हो।
 कलह समय, मैं गजदान को छोड़ तुम्हारा दान करूँगा,
 पूँछ तुम्हारी पकड़, करीब बैठे रहूँगा मैं सहज करूँगा।
 हलके-फुलके दुश्मन होंगे, तुम हदैव भासी पलड़े हो।
 कितने सीधे-सच्चे हो तुम, जहाँ खड़े होगए, खड़े हो।

नयन-निमीलित, अर्ध-मुकी हो, जब तुम हँस-ताक करते हो,
 लगता है ऊपर वाले का स्मिटर बहुत आद करते हो।
 सेंटों जैसा शीतल, -दोस्र तपसी-सा तुम में पाया जाता,
 अन्तर्मुखी दार्शनिक जैसा-ध्यान लगाना तुमको आता।
 जब तुम इतने बहु-गुण-भूषित, जब तुम सच्चमुच्य भुगकारी हो,
 जब तुम औरों के सम्मान ही, यश-गौरव की आधीकारी हो।
 होता है आश्चर्य मुझे फिर क्यों-कुनाव तुम नहीं बढ़े हो?
 कितने सीधे-सच्चे हो तुम, जहाँ लड़ेंगे, लड़ेंगे हो।

यही शर्मना करता हूँ मैं, तुम दिन-दूना आदर पाओ,
 तिकड़म भगा अगर जा सकते, समा-संसदों में भी जाओ।
 निगडित हो तुम पुज जाओगे, होगा शुभ-सम्मान तुम्हारा,
 और सुकवियों के आधारों पर, लेगा गौरव-गान तुम्हारा।
 आभिनन्दन के लिए तुम्हारे, होंगे कई विशद आयोजन,
 पग-पग हर-फूल पाओगे, होंगे तुम पर प्रण्य-समर्पण।
 आधीकारी के हित आइ जाओ, क्यों-कब तक तुम नहीं आइ हो।
 कितने सीधे-सच्चे हो तुम, जहाँ लड़ेंगे, लड़ेंगे हो।

जब कोई कहता है, यह कितना मोला-कितना निश्चल है,
 कितना सीधे-सच्चा है यह, सच्चमुच्य ही यह प्यारी सरल है।
 तब मैं यह सोचा करता हूँ, ये सब हैं पर्याय तुम्हारे,
 तुममें-मुझमें क्या अंतर है? इहीलिए तुम मुझकी प्यारे।
 सिद्ध भव है कह जाता है, जो कुछ मेरे मन में काया,
 तुम पर लिख कर कृपा नहीं की, मैंने तो कल्पि निभाया।
 आज आदमी बिगड़ गया है, नहीं-तनिक भी तुम बिगड़े हो।
 कितने सीधे-सच्चे हो तुम, जहाँ लड़ेंगे, लड़ेंगे हो।

— ४ —

यह रचना भी जो मैंने उरु कवि-सम्मेलन में पढ़ कर सुनाई।
 मुझे आद है लोगों को हँसने के पर्याप्त अवसर तो मिले ही,
 उन्हें अच्छे स्थलों पर दाद देने के भी पर्याप्त अवसर मिले।

हाथ-कविता में यदि हाथ दी जाय तो यह कवि की बहुत बड़ी सम्पत्ति है क्योंकि हाथ वही दी जायगी जहाँ वास्तविक काम होगा।

कवि-सम्मेलन की समिति ने उक्त कल्लेक्टर महोदय से कवियों को सम्पन्न दौंगले पर पुस्तक की-पाय का निमंत्रण दे दिया। मुझे यह कागजात, उक्त कल्लेक्टर महोदय को 11/12 भाव था।

जब हम लोग अगली पुस्तक कल्लेक्टर की भाव के दौंगले पर पहुँचे तो गुरु राव के कवि-सम्मेलन पर टीका-टिप्पणी होती रही। मैंने उसी प्रकार -

“गुरु राव की गद्य वाली कविता को शीर्षक बताते हुए जो आपकी तरफ़ात् मुजरा, उक्त लिए मैं पुनः क्षमा-प्रार्थी हूँ।”

उन्होंने मेरा हाथ दबाते हुए कहा -

“गली-गली, होती कोई बात नहीं, मैंने तो आपकी कविता के लिए अनेक चतारवा मित्रों करके की दृष्टि है ही विनोद की स्वीकृति उत्पन्न की थी। हम लोगों के जीवन में तो ऐसे भी अनेक होते हैं जब अच्छे-बुरे की गई गालियों को भी हम लोग हँस कर भोल भोलते हैं।”

यह सुनकर मैंने उन्होंने एक आप-कीही पहना कर मुगई। वह इतिहास भी -

“हम लोग एक गाँव के दौरे पर गए हुए थे। जीप में मैं स्वयं था। मेरे साथ एक डिप्टी-कल्लेक्टर, तहसीलदार और की. डी. ओ. भी थे। वहीं के दिन थे। वहाँ मैं चने की बहा थी। चने के धोड़ देकर उन्हें चुगने के लिए जी भाल्ला गया। हम लोग जीप में नीचे उतरे और यह देखते-च-पूछते कि कोई बेटा राखवाला है तो उसे पैसा देकर या उसके कंधे पर लेकर चने के कुछ भाड़ अवाड़े जाय। हमें कोई राखवाला दिखाई नहीं दिया। हम लोगों ने जोड़े-जोड़े में भाड़ अवाड़ का चने चुगना प्रारम्भ कर दिया। इतने में ही हम लोगों ने देखा कि बेटे की हाथी पैर पर एक भाड़ी है। बेटे का राखवाला निकलता और गालियों की बौचर धाड़ता हुआ हमारी ओर भपका। हम में मैं तहसीलदार सहक भी भपका की आँकी की गाँव की ओर। हमें कि कल्लेक्टर को डिप्टी-कल्लेक्टर सहक, की. डी. ओ. सहक और तहसीलदार सहक ने मेरे साथ में -

कावे-सम्मेलन की समाप्ति पर उक्त कल्लेक्टर महोदय ने
कविता को कल्पने के गंगे पर पुष्प की-पाय का निमंत्रण दे दिया।
मुझे आद कागया, उक्त कल्लेक्टर महोदय को यह भी भाव था।

जब हम लोग कागया-पुष्प कल्लेक्टर की भावने के गंगे पर
पहुँचे तो गुरु शक्ति के कावे-सम्मेलन पर टीका-टिप्पणी होती रही।
मैंने उनसे कहा -

“गुरु शक्ति के गुरु वामी कावेता का शीर्षक बताते हुए जो
आपको कागया-पुष्प, उक्त लिए मैं पुनः कृपा-प्रार्थी हूँ।”

उन्होंने मेरा हाथ दबाते हुए कहा -

“जहाँ-जहाँ, ऐसी कोई बात नहीं, मैंने तो हस्त की कावेता के लिए
अनेक वातावरण निर्माण करके की दृष्टि है ही विनोद की स्वीकृति
उत्पन्न की थी। हम लोगों के जीवन में तो ऐसे भी अनेक
आते हैं जब सचमुच ही गई गाँवियों को भी हम लोग
हैं कर भेज लेते हैं।”

इस संदर्भ में उन्होंने एक काग-कीरी पटना का पुराना वर देखा

हम लोग एक गाँव के दौरे पर गए हुए थे। जीप में मैं स्वयं था।
मेरे साथ एक डिप्टी-कल्लेक्टर, तहसीलदार और की-डी-ओ-सी भी। हमारे
दिन थे। वेताँ में चने की बहा थी। चने को धोड़ देकर उन्हें-भुगने
के लिए जी भाल्ला गया। हम लोग जीप में नीचे उतर कर अनेक देवता-
पूजन किया कि कोई वेत का सखवाना हो तो उसे पैरों केरु या आगे
आगुमारी लेकर चने को कुछ माड़ अवाड़े जाय। हमें कोई सखवाना
दिखाई नहीं दिया। हम लोगों ने कोई-कोई ही माड़ अवाड़ को चने
-भुगना आरम्भ कर दिया। इतने में ही हम लोगों ने देखा कि वेत की
बागरी में एक पर एक माड़ी में वेत का सखवाना निकलता और
गालियों की बौच्चर धड़ता हुआ हमारी ओर भपका। हममें में
तहसीलदार सहित भी आपक को अक्की को गए और उन्हें प्रभावित
कि कल्लेक्टर साहब डिप्टी-कल्लेक्टर सहित, की-डी-ओ-सी सहित और
तहसीलदार सहित वेत पर आए हैं और दूर हैं जो हम तक
गाँवियों भुग रहे हैं। वर सखवाना कल्लेक्टर सहित वेत के सामने

तलसीमवा लहवा के साज मेरे साजने का का की लहवा जोड़ का कतने
मग्य -

हुजूर जानजाने से मुझे गलती होगई जो मैं कुछ देना
कहे गया। मुझे पता नहीं था इतने बड़े-बड़े जेठान के यहाँ
आएँ। अब आप लोग जितने आड उपाड़ना-चाहेँ उपाड़
भीजिए, लेकिन आपसे मेरी यह प्रार्थना है कि आप इस मेंद की
वजह, उस मेंद से जितने आड-चाहेँ उपाड़ भीजिए।

हम लोग ने उल्लुकात नश पुछा कि इस मेंद से क्यों नहीं
आवई, तो उत्तर आ -

इस मेंद पर बैठकर मैं खेत की राववाली का काम करता हूँ यदि
यहाँ से-चने आवड़े हुए पार गए तो मेरा मामलेक मुझे डाँटेगा कीकहेगा
कि यहाँ तो तु बैठता है कीकि यहाँ से-चने क्यों आवड़ गए।

मैंने उस राववाली से पुछा कि खेत की दूसरी मेंद से-चने
आवड़े हुए दोबका तो मामलेक तुमसे कुछ नहीं कहेंगे? मेरे
शे प्रश्न का उत्तर तपाका है उत्तर दिया -

हुजूर, यदि खेत की दूसरी मेंद से-चने आवड़े दोबकर मेरा
मामलेक मुझे डाँटेगा तो मैं उससे कहूँगा कि रात को सोने
सूकर आए लेंगे की उनसे-चने आवड़े लेंगे।

खेत के राववाला हम लोगों ने मुँह पाली हने साज।
भी 'सूकर' की गालियाँ देगा की हम लोगों के पास हँसने की
सिवाय और कोई चारा नहीं था ॥

तो प्रियजन, यह कोई आववाली ~~मुझ~~ मुटकुआ नहीं, एक
अपनी कहानी, कलंकवस्त्री जवानी जो जो आपने पढ़ी की वर भी इस
प्रसंग में कि मैंने क्या हास्य-कवितारें भी लिखी हैं। स्वयं बात है
यह है कि हास्य-कवितारें लिखना की सुनाता दौड़कर मैंने क्या
अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारी है क्यों कि कवि-सम्मेलन में हास्य के
कवियों को ही आदिक दुआया जाता है की स्वयं के परिश्रमिक भी
उन्हीं को दिया जाता है। मैंने यह संकल्प नहीं किया है कि
अब मैं हास्य-कवितारें नहीं सुनाऊँगा। स्वयं बात है यह है
कि वीरता की बलिदान की बातें लिखते रहने के कारण
हास्य-संभव भी उभरने लगे -

हुज़ूर जानजान ने मुझे गलती खोजी जो मैं कुछ बजा
कह गया। मुझे पता नहीं था इतने बड़े-बड़े मेरे पास थे यहाँ
आए हैं। अब आप लोग जितने भाइ उठाइता-चाहे, उठाइ
भी जाए, लेकिन आपसे मेरी यह प्रार्थना है कि आप इस मेरे दो
बच्चे, उह मेरे ही जितने भाइ-चाहे उठाइ भी जाए।

हम लोगों ने उलझता न हो पूछा कि इस मेरे दो बच्चे नहीं
उठाइ, तो उसका उत्तर था -

“इस मेरे पर बैठकर मैं खेत की राववाली का काम करता हूँ यदि
यहाँ से-चने उठाइ हर पाए गए तो मेरा मामला मुझे डरेगा और जितना
कि यहाँ तो मैं बैठता हूँ कि कि यहाँ से-चने क्यों उठाइ गए।

मैंने उस राववाली से पूछा कि खेत की दूसरी मेरे से-चने
उठाइ हर दोबारा तो मेरा मामला मुझसे कुछ नहीं कहेंगे कि मेरे
इस प्रश्न का उत्तर तपाक है उत्तर दिया -

“हुज़ूर, यदि खेत की दूसरी मेरे से-चने उठाइ दोबारा मेरा
मामला मुझे डरेगा तो मैं उससे कह दूँगा कि रात को सोने
सूकर आए होंगे और उन्होंने से-चने उठाइ होंगे।

खेत का राववाला हम लोगों को भुलवा ले होंगे सोना।
और सुकर' की गालियाँ देगा और हम लोगों के पास होंगे कि
सिक्का और कोई चारा नहीं था।”

तो प्रियजन, यह कोई आवकरी ~~युद्ध~~ मुद्दकाला नहीं, एक
आपनी कहानी, कल्पित की जगहों को जो आपने पढ़ी और वह भी इस
प्रसंग में कि मैंने अभी हाल-कविताएँ भी लिखी हैं। स्वयं बात तो
यह है कि हाल-कविताएँ लिखना और सुनाना दो अलग-अलग चीजें हैं।
अपने पैर पर कुल्हाड़ी मारी है क्योंकि कवि-सम्मेलन में हाल के
कवियों को ही कालिक दुआया जाता है और सर्वाधिक परिश्रमिक भी
उन्हीं को दिया जाता है। मैंने यह निष्कर्ष नहीं किया है कि
अब मैं हाल-कविताएँ नहीं सुनाऊँगा। स्वयं बात तो यह है -
कि वीरता और बलिदान की बातें लिखते रहने के कारण
हाल-लेखन की ओर से मेरा मन उन्चट गया है। यद्यपि
आभी भी मैं व्यंग्य-कविताएँ लिखता हूँ और वे भी बहुत

तीली । मैंने ज़ोर-जबर्दस्ती ही तुम्हें मिलानी है, लेकिन यहाँ
मैं केवल एक उदाहरण ही प्रस्तुत करूँगा —

४६ न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी

उल्लू इसलिये कुरे नहीं किने गजरास लेते हैं
न इसलिये कुरे हैं

24 mth sets with 10

आर
उनकी बंदी हुई आर की आर काय

माशों की जीव प्रविडी हुई

आपकी भी मंजूर

इस तरह हाथी से जमीन

और कामेदानों के दृष्टा पर कवचवाय भी उमर-बेल।

उगातिशीलता की हवा में पल्ले हुए

ਅਕਾਲ ਨਾਮ ਤੇ ਤੇਰੇ ਨਾਮ ਤੇਰੇ

व। अकाममव्य लेनापि है

Feb 1971

* कृष्ण वंश की विस्तारवादी योजनाएं

वे पुरुष और पराक्रमी

भाषणों की कोष्ठीय विभाजा करवना है।

माँ सरस्वती के माध्यम से

युग के आगसका पहला

जब ठान्यास की चुनौती थी

पानी की वार वार छोड़ो ५.

12

या ते उनकी सत्परायी जिह्वा पर

सोने की कील जड़ दी जाती है

या

उत्पत्ति के - वसाय - वसायाद

ममकार कर अक्षर —

—कृप रहो!

बन्द करो कंपनी जवान-दराजी

मैंदनों की इस महामिलन में
पुम्मी बाँझुरी बे-सुरी है
और हाँ

कान जोल कर चुन लाँ
गुलामों के इस चमन की रातवाली
अब माँगी नहीं -

कैवटस करेंगे
और रात्रि पहलवे कि
रुन की पत्तीने से सींची गई
इस मेरे केशर-वर्गी को कोई रेंद कर सके
हम स्वयं ही इसे चर लेंगे
इसे वीरान कर देंगे
क्योंकि
न रहेगा बाँझुरी न बजेगी बाँझुरी ।"

इस प्रकाश की व्यंग्य-रचनाओं में मैं बहुत ही रचगार
समझाने के रूप में कारण को गई है। बाँझुरी के रूप में नहीं। मन्त्री
हैं। विद्यापी - जीवन में जब मैंने काव्य-लेखन प्रारम्भ ही किया
था, मेरी दो कविताओं ने बहुत धूम मचाई थी, लेकिन दुर्भाग्य से
वे दोनों रचगारों को चुकी हैं। उनका सांकेतिक विवरण इस प्रकार है -

(१) एक कविता की प्रथम पंक्ति थी -

"मोहन क्यों आज काहीला का तुम पाठ पाठ को पढ़ा रहे?"
इस कविता द्वारा मोहन की कविता मोहन का करमचय गाँधी है कहा गया
था कि तुम अपने युग के पाठ जवाहर लाल को काहीला को पाठ क्यों
पढ़ा रहे हो, जब कि मैं आप युग के मोहन ने अजुग को गाँधी के
उठा का उन्हें रात्रि-संहा के लिए प्रेरित किया था। इस कविता के
साध्यार्थ में गाँधीजी है कहा गया था तुम आज के प्रोवाचक हो और
अपने विषय अजुग (जवाहर) को प्रतिष्ठित करने के लिए इस युग के
वास्तविक-सुख चन्द्रागरी एक लक्ष्य (पुत्र) की उपेक्षा कर
रहे हो, जिसने अपने देश के शत्रुओं का संली करने की कल्पना है।

(२) दूसरी कविता की प्रथम पंक्ति थी -

"बना वह चित्र आज साकार।"

इस कविता द्वारा एक चित्रकार को प्रेरणा दी गई थी कि वह सा-रंग

किसी व्यक्ति के दृष्टि-क्षेत्र के वृत्त के भीतर ही
 जलवायु-वाग-मन-संज्ञा को 'कौमुदी' कहा जाएगा अन्य
 कल्पनाओं की हरी-पुष्प-कान्ति देखनेवालों को ही इसे को 'उपकाश' न
 प्रतिशोध लेने के लिए लिख लेते।
 इस प्रकार भी रचनाओं को जो जाने का कल्पना मुझे आज
 भी है, पर अब किसी भी रूप में लिखता हूँ -

कुछ बात प्रेम-गीतों की भी

आपना मूल स्वर वीर सदा होते हुए भी जिस प्रकार मैंने कुछ
 हास्य-व्यंग्य रचनाएँ लिखी हैं, उसी प्रकार प्रेम-गीतों पर भी अपनी कल्पना
 चलाई है। विभिन्न ध्व-पत्रिकाओं में तो मेरे प्रेम-गीत ही प्रकाशित होते
 थे। इसका कारण यह रहा है कि स्वामीजी पूर्व जो कविताएँ मैं लिखता
 था, वे इतनी उग्र होती थीं कि कई भी संपादक उन्हें छापने का सहो
 नहीं दिया था, बल्कि उसी प्रकार जैसे मेरी आज की उग्र रचनाएँ
 सत्यनारायण जीट का आ जाती हैं। प्रेम गीतों को छापने में किसी सरकार
 की नाराजगी का खतरा नहीं रहता, इसलिए वे छप जाती हैं।

प्रेम-गीत वैयक्तिक होते हुए भी सार्वजनिक होते हैं। हर प्रेमी यह
 समझता है कि ये गीत मेरे लिए लिखे गए हैं। यह आवश्यक नहीं है
 कि गीतों को भाव व्यक्त की स्वानुभूतियाँ हों। कवि समाज की अनुभूतियों को
 स्वानुभूतियों की भाँति लिखता है, तभी तो प्रत्येक प्रेमी उन्हें अपने लिए
 लिखा हुआ समझता है।

मेरे प्रारम्भिक प्रेम-गीतों का एक संचालन 'सिंह-सौरभ' नाम से
 छपा था। उसके पश्चात् ये गीत काफी परिमार्जित हैं, लेकिन उनका
 संचालन प्रकाशित नहीं हुआ है।

अपने गीतों में मैं केवल दो गीत यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ। पहला
 गीत जयन्त की शक्ति है सम्बन्धित है। सचलीन के दोहे की टक्कर का कोई
 पद अभी तक नहीं लिखा जा सका है। वह दोहा है -

अमिय, हलाहल, मद भरे, श्वेत-श्याम-रतनार ।

जिसत, भरत, भुका-भुकावरत, जेहि चितवते इक बार ।

प्रस्तुत दोहे में कहा गया है कि आँखों में अमृत, जहाँ शराब
 होती है जहाँ इन्हीं शक्तियों के अनुसृत्य उनका रंग सफेद, श्यामल
 और लाल होता है। इसी आँखों जिस व्यक्ति को देख लें वह

प्याही नव-जीवन प्राप्त करता है, (मरुही बुझाही) भर जाता है (जलही शक्ति)
और भूमने लजता है (मदिराही शक्ति) प्रबोधा की बात यह है कि कामि,
ललाहल और मय के काम की निर्वह शक्ति श्वेत-श्याम-रतनार और
जियत-मरत-भुक्-भुक् परत में भी दिया गया है। 'जियत-मरत-
भुक्-भुक् परत' में अंत्यानुप्रास का सौन्दर्य भी दर्शनीय है।
इस दोहे की आरंभ उतारने का प्रयास मैंने आपने गीत के
इसरे पद में उसी प्रकार क्रम-निर्वह और अंत्यानुप्रास की सार्थक-
साधन किया है। प्राप्ति-भावनाओं का कानि लेने के ताते आँकों की
शक्तियों में प्राप्ति का समावेश भी किया है। गीत प्रस्तुत है —

(१७)
तुम्हारे प्यारे-प्यारे नयन

तुम्हारे प्यारे-प्यारे नयन, और नयनों में प्यारे नयन।
तुम्हारे प्यारे-प्यारे नयन।

नयन, जैसे ये स्वप्न-विमान,
नयन, जैसे अमोघ वरदान,
मिलता जादू का इन्हें प्रभाव, हुए जब ये कजरारे नयन।
तुम्हारे प्यारे-प्यारे नयन।

खुश तो दिवस, बन्द ही रात,
विरह में तपें, अरुण जलजात,
शान्ति-विभ्रान्ति-प्राप्ति के रूप, चवक-श्यामल-रतनारे नयन।
तुम्हारे प्यारे-प्यारे नयन।

मिलें लीचें तो लीचा वार,
चलें तिरछे, तो लीक्षण-भटार,
भुक् तो मीठी-मीठी मार, बड़े तीखे-अजियारे नयन।
तुम्हारे प्यारे-प्यारे नयन।

प्रीति भी इनकी बड़ी कठोर,
 बैर इनका देता भयभीत,
 जमाने भर में इनका शोर, निरुज्ज्वल भी बेचारे नयन।
 तुम्हारे प्यारे-प्यारे नयन।

तुम्हारे नयनों में आकाश,
 चंद्र-सूरज का शुभ प्रकाश,
 किसी भी आशाओं के दीप, निन्ही आँसू के तारे नयन।
 तुम्हारे प्यारे-प्यारे नयन।

— — —

(२)

तुम्हारी कनक-लता-सी देह

तुम्हारी कनक-लता-सी देह कि जैसे वह जादू की छड़ी।
 तुम्हारी वह पहली ही धाप, बहुत गहरी मानस पर पड़ी।

तुम्हें देवा, देवा मनुमास,
 कि जैसे देवा दिव्य उजास,
 तुम्हें देवा तो ऐसा भगा-
 प्यार का पद डाला शिखास।

तुम्हारी प्रिय धरति उर के मध्य, जमीन जैसी आकर पड़ी।
 तुम्हारी कनक-लता-सी देह, कि जैसे वह जादू की छड़ी।

रूप, सम्मोहन का पर्याय,
 रूप जो देवे, नहीं अघाय,
 रूप, जैसे वह चढ़ता नशा-
 रूप, जिसका कोई न उपाय।

तुम्हारे उसी रूप की फाँस, बहुत गहरी अन्तस में गड़ी।
 तुम्हारी कनक-लता-सी देह कि जैसे वह जादू की छड़ी।

तुम्हारा रूप, स्वयं ही प्यार,
रूप, जैसे ही कारागार,
रूप, जैसे अमोघ ही मंत्र-
स्वान जैसे कोई साकार ।

तुम्हारी हाथी - फुलवन हाथी, तुम्हारी मालक - सुन्दर - शुभ - बड़ी ।
तुम्हारी कनक-लता-सी देह, कि जैसे वह जादू की बड़ी ।

-यही जन कभी तुम्हारी बात,
उदित हो जैसे पुण्य-प्रभात,
कभी उमरे मानस में याद -
सरोवर में जैसे जलजात ।

तुम्हारी सुखी के सम्भुत रंग स्नेह-सौगात बड़ी ही बड़ी ।
तुम्हारी कनक-लता-सी देह कि जैसे वह जादू की बड़ी ।

— ४ —

मेरा मूल फिर ब्रह्मा और विद्रोहकार

हमारे अंग प्रेम गीतों के कुछ आवाजों से वह स्पष्ट हुआ होगा -
कि इन क्षेत्रों में भी मेरा वाक्य रहा है । 'चन्द्रशेखर काव्य' महाकाव्य
में 'योग-माया' प्रसंग और 'सरकामासीत' महाकाव्य में पंजाब के
मेले के वर्णन के अन्तर्गत भूमिगत वातावरण की छवि को प्रयत्न
किया गया है और वह पाठकों को पसन्द भी आया है ।

मूल रूप से मैं कीर साक काव्य हूँ और ब्रह्मा और विद्रोह की
पंक्ति उग्रवादी रचनाएँ ही मेरी कलम की विशेषताएँ रही हैं । चन्द्रशेखर
काव्य के लिए मैं भैंसे से घाँस तक कहने का साहस दिखाया है -

राजसूय में हुए मदहोश दीवानो ! लुटेरो !

मैं तुम्हारे जुलम के आप्तात की ललकारता हूँ,

मैं तुम्हारे दंभ को पावण्ड को देता-धुनों की

मैं तुम्हारी जात को औसत की ललकारता हूँ ।।

और इसी प्रकार भगवद् गीत महाकाव्य में -

सारागर हो रहे अन्याय क्यों चुपचाप सहते हम ?
हमारी भावनाएँ क्यों नहीं बारूद बनती हैं ?
कालेजा चीर दें उनका, हमारा खून जो पीते
न क्यों वीरगंगाएँ आज ऐसे सिले जनती हैं ?”

इसी प्रकार का जीवन मेरी प्रवृत्ति के अनुकूल रहा है। ऐसे जीवन
ने लिए कोई भी सुलभ चुकाने के लिए मैं हमेशा तैयार रहा हूँ और
सुलभ मैंने चुकाया भी है, लेकिन कोई चुनौती मेरी कान्छा नी-
न्दार को कुण्ठित नहीं कर सकी है। एक चटना देख लें—

मेरी बहु-चर्चित रचना ‘सम्प्रसारण’ का प्रकाश की माँ का
आलोचनात्मक मेरे लिए मुसीबत का कारण बनी, लेकिन लोगों के
परामर्श पर तो मैंने उसे छुनाना नहीं छोड़ा। मेरे एक साहित्यिक
मित्र एक मंत्री जी के मुँह पर गे हुए थे। उन्होंने मुझ से कहा—

“मित्र! आपको मेरी नेक सलाह है कि आप इस रचना को
छुनाना बन्द कर दें। यदि यह रचना बड़े कानों में पड़ी तो आप
मुसीबत में पड़ सकते हैं।”

मैंने विनम्र उत्तर दिया—

“आपको इस नेक सलाह के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। कगली
बार जब हमारी भेंट होगी तो मैं आपको बता सकूँगा कि आपकी
सलाह पर मैंने नितना अमल किया है।”

अगली बार जब हम दोनों की भेंट हुई तो उसी नेक सलाह को
उत्तर में मैंने एक नई कविता उन्हें प्रेषित की। वह कविता थी—

कान्छा की चुनौती

क्या कहा, त्वरों में भरे अब, विप्लवी हवाएँ पछती हैं,
क्या कहा, मोहनी हैं मेरी अब चिनगारियाँ निकलती हैं ?
क्या कहा, किसी के भय से मैं दफन हूँ इसकी हलचल का ?
क्या कहा, बना दूँ मरघट मैं कवि के जीवित अन्तस्तर का ?

क्या कहा, चार कुण्ठित कर कर दूँ मैं बाणी की तलवारों की ?
क्या कहा, राव की पत्नी से ढँक दूँ ज्वाला आंगणों की ?
क्या कहा, जवानी का सपनों का गला घोट हत्या कर दूँ ?
खोरियाँ—पढ़ें, इसकी पहली में वाणी का मर्म कहीं चर दें ?

कहती अपने आकाशों से, यह संग्रह तब हो जाएगा,
जब मेरे अंतर का सक्रिय विद्रोही काँवे भर जाएगा।
भावों का अंधाड़ व्यवधानों से विवश नहीं रहने पाएगा,
मातृक कर जाए मज्जा, किन्तु भरा हो न कभी भुका जाएगा।

यह कलम प्रतिष्ठा करती है, लं शायद चन्द्रवरदाई की,
यह कलम उठाती है गंगा अब भूषण की तरुणाई भी।
अन्यायों के बड़े सम्राटों लेंगे शीतले तूफानों में,
सिंहासन-प्रभंजन भर देगी यह सौवन के अरमानों में।

यह राजमहल के पिनाकों, भोंपड़ियों में ली जाएगी
यह कलम, पत्तीने के गंगा-जमुना से आधिका पुजाएगी।
शेक जे शेका शेक लके, यह कलम उठी है चत्तन के,
शेकी विद्रोही गाते आकुल, अन्यायी शीघ्र कुचलने को।

तो सुनो, न मैं भावुकता की उषसी चारा में कहता हूँ,
अपनी धराती पर लिखाना तुम, जो वज्र-सत्य में कहता हूँ।
मैं नाबो हूँ, नाबो की भाषा नहीं, मुझ में जीवन है, गाता हूँ,
अपनी बारूक लिखाना तुम, मैं अंगारे भड़काता हूँ।

— X —

जीवन विवेकांजाली का

‘विवेकांजाली’ मेरे गीतों का संकलन है। इस संकलन में जीवन
की हर स्थिति पर गीत मिलेंगे, लेकिन प्रधानता शर्म आदरपातीक
गीतों की है। इन गीतों के जीवन में एक विचित्र प्रेरणा का हवाला
है। ‘विवेकांजाली’ के दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं, लेकिन किसी
भी संस्करण की भूमिका में मैंने अनुपपत्ता का उल्लेख नहीं किया है,
जो पढ़ना इस संकलन के गीतों को लिखने के पीछे प्रेरणा बनती है।
चुकी अनुपपत्ता है सम्बन्धित कुछ व्याप्ति अभी है, शायद उन्हीं
के प्रवल आग्रह के कारण मैं अनुपपत्ता का उल्लेख यहाँ कर रहा हूँ।
मैं लिखने आता हूँ लेकिन रहा हूँ, लेकिन शक्य अभी यह नहीं कि
मैं इस प्रकाश की बातों पर विश्वास करता हूँ।

यह घटना सन् १९७५ की रही होगी। एक कवि-सम्मेलन के लिए
अभ्यंत्रित होकर मैं मध्यप्रदेश के लखवा जिले के हरसूद स्थान पर
गया हुआ था। मेरे साथ उज्जैन के कविवर प्रकाश उषाल और मोहन
श्री मोहन जी भी थे। हरसूद की काव्य-प्रेमी जनता ने बहुत
तीन बजे तक कवि-सम्मेलन घुना। उनके पश्चात् हम लोग अपने
घरने के स्थान पर आकर सो गए। मैं लगभग एक घण्टा ही
सो पाया ही था कि मुझे रोना आया, जैसे किसी ने मेरे
चेहरे पर टॉर्च का तीव्र प्रकाश डाला हो। उस प्रकाश से मुझे
परेशानी जैसी महसूस हुई और उसने बचने के लिए मैंने करवर
बदल ली। उस समय अर्ध-आगत अवस्था में था। आँखों पर
प्रकाश अनुभव करने के पश्चात् मुझे किसी को स्पर्श सुनाई पड़ा-

“तुमने बहुत कुछ लीव डाला है। मैं चाहता हूँ कि अब तुम
स्वामी विवेकानन्द के विचारों पर भी कुछ लिखो।”

मुझे रोना आया, जैसे यह बात मेरे आसपास के ही किसी व्यक्ति ने
कही हो। मैंने आसपास देखा तो पाया कि प्रकाश भी सो रहा था
और मोहन भी। मैंने दोनों को जगाया और पूछा कि क्या
तुम मेरे किसी ने मुझे धुकार कर कुछ कहा था। उन
दोनों ने ही इनकार कर दिया। अपनी अनुभूत घटना मैंने उन्हें
कह सुनाई। दोनों ही बोले कि किसी दिव्य शक्ति ने आपको
प्रेरणा दी है, आप विवेकानन्द के विचारों पर अवश्य लिखिए।

बात अर्ध रात्रि हो गई। महाविद्यालय में मैं अपने छात्रों को
मनोविज्ञान विषय पढ़ाया करता था। मन से तार्किक भी रहा हूँ। मैंने
सोचा कि मन की दमित भावनाएँ ही स्वप्न बनकर उभरती हैं। मैंने
सोचा कि मैं जीवन के लिए गायकों की लोच करता रहा हूँ
और इसी कारण स्वप्न के जप में भ्रम की विचार उदित हुआ
होगा। मैंने अपने मन से विवेकानन्द का जिक्राल दिया।

इस घटना को भी बीते हुए लगभग एक वर्ष हो गया। सन्
१९७६ को वर्ष आगया। इस वर्ष मुझे सेवा-मुक्ति भी होना था।
अपने महाविद्यालयीन आवास-गृह में रात्रि में मैं सोया हुआ था।
वही लगभग कुछ ने चार बजे मुझे सेवा ही अनुभव हुआ।

जैसे हस्तुद में हुआ था। किसी ने उसी प्रकार कॉलेज पर नित्र प्रकाश डाला और फिर मुझसे कहा -

“ लॉगमन एक वर्ष हो गया है, जब मैंने तुमसे कहा था कि तुम स्वामी विवेकानन्द को विचारों पर कुछ लिखो। तुमने मेरे कथन पर कोई ध्यान नहीं दिया। वही बात मैं दुबस कर मैं तुमसे यह कहना चाहता हूँ कि स्वामी विवेकानन्द का जीवन वाले भारतीयों में बहुत ही लोग मिल जायेंगे, लेकिन उन पर गीत लिखने का प्रेम मैं तुम्हें देना चाहता हूँ और एक बात यह भी बता देना चाहता हूँ कि आज ही एक महीने के अन्दर तुमने कुछ लिख लिया तो मिल लिया, अन्यथा फिर कुछ नहीं मिल पाओगे। ”

यह मेरे प्रेरणा-कथन पुनः मैं उस वक़्त और कुछ विचार करने लगा। इस कथन में दो बातें गई थीं - एक तो गीत लिखने की और दूसरी बात एक महीने के अन्दर लिखने की। मैं दुबस होने पर मैंने इस परना का उत्तर देकर अपने दोनो पुत्रों से किया जो उन दिनों कॉलेज में पढ़ रहे थे। मेरा एक पुत्र मुझसे भी काफी तार्किक है। उसने कहा कि इन बातों पर मेरा तो बिल्कुल विश्वास नहीं है। दूसरा पुत्र कुछ साहित्यिक प्रवृत्ति का है। उसने कहा कि आज साइंस करने में क्या बुराई है।

जब उस दिन मैं कॉलेज गया तो सोचा कि कॉलेज के पुस्तकालय में यदि स्वामी विवेकानन्द पर कोई पुस्तक मिल जाय तो उसे पढ़ना प्रारम्भ करूँ। वैसे वह अध्यापकों का महाविद्यालय होने के कारण उसी पुस्तकालय में किसी व्यापिक पुस्तक को मिलने की मुझे कोई आशा नहीं थी। जब मैंने ग्रन्थालय महोदय से पूछा वह भी तो उन्होंने बताया कि अपने पुस्तकालय में तो स्वामी विवेकानन्द का पूरा सैट मौजूद है जो स्वयं उन्हीं का लिखा हुआ है और उस सैट के अतिरिक्त अन्य लेखकों की भी पुस्तकें मौजूद हैं जो उन्होंने श्री रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द पर लिखी हैं। इस तरह तुम्हारे मेरे आश्चर्य को दिकाना नहीं रहा। मैंने सोचा कि मेरा काम बनने वाला है। इस प्रकार के साहित्य

की लगभग बीस पुस्तकें मिलानवा कर मैं अपने घर ले गया।
घर पहुँचते ही चाय पीने के पहले मैंने उस धुंलका
की पहली पुस्तक उगई और उसके पृष्ठ पलंगे लगा। मुझे
लगा कि पृष्ठ पलंग ही उसकी सारी सम्पत्ती मेरे आँगन में
समा गई है। दर-मिन्दर के ऊपर मैंने अपने सारे पृष्ठ पलंग
डाले और मुझे लगा कि वह पूरी पुस्तक काटकर ले गई है।
कौलेंज से पढ़ा कर आका हुआ आया है भा, चाय पीकर मैं कोड़ा
विश्राम करने की बात सोचने लगा। लेकिन विश्राम मेरे आँगन में
नहीं था। मर सें ज़्यादा की एक दिना में मन में कोढ़ा
और गीत की प्रथा पंक्ती मेरे दिमाग में आ गई। उस पंक्ती पर
जब गीत लिखने बैठा तो पुराने गीत की तरह लिख डाला,
और वह मुझे पहले से ही याद हो गया उसे लिखना भी थोड़ा
रख ले। एक ही साँच में वह पुराने गीत लिखा होगा।
मैंने सोचा कि यहाँ प्रारम्भ तो होगा ही। लेने का समय होते-
होते इसी प्रकार गीतों की तीन और पंक्तीयाँ मेरे मानस में
आसीं और उन दिनों कुल चार गीत लिखे जाएंगे।

हर दिन शरीर कमजोर रहता रहा। मुझे कौलेंज से पढ़ाने के
लिए घर पर पढ़ना भी होता था। विवेकानन्द साहित्य भी पढ़ना पड़ता
था, लेकिन उसके अध्ययन में बड़ी कसर होती थी कि पृष्ठ पलंग ही
ही पुराने सम्पत्ती दिमाग में अंकित हो जाती थी। अपने सारे काम
करते हुए एक महीने में ऊपर एक ही चौंतीस गीत लिखे जाएंगे। जब
एक महीने की अवधि समाप्त होगई तो कमाले दिन बहुत
माया-मन्त्री करनेवाली मुझसे एक भी गीत नहीं लिखा गया।
गीत लिख चुकने के पश्चात् मुझे ऐसी अनुभूति हुई जैसे मुझे
बहुत तेज बुझा-पड़ा हो और वह उतर गया है। मैं स्वयं को
इतना हल्का महसूस करने लगा, जैसे हवा में उड़ सकता हूँ।

स्वामी विवेकानन्द ने लिखे गए इन गीतों को संकायन का
नाम मैंने 'विवेकांजलि' रखा। इन गीतों को लिखकर मैं
उसी वर्ष अर्थात् सन १९०६ की ३१ दिसम्बर को कौलेंज की सेवा

से मुक्त हो गया। सेवा-निवृत्ति होने के पूर्व कॉलेज में मैंने एक व्याख्यान दिया था, जिसका विषय था - "ईश्वर क्या है।" लोगों को लगन है कि ऐसा सटीक भाषण हमें कभी सुनने को नहीं मिला।

उन गीतों में पहले से मिले हुए अपने कुछ और गीत जोड़ कर सन् १९७७ में 'विवेक' नामी पुष्पाक्षित कर दी। उनका प्रथम संस्करण बहुत शीघ्र समाप्त हो गया। उसके दूसरे संस्करण में उस विशेष स्त्री-गीतों में मिले गए केवल १३४ गीत ही रहे एवं शेष गीतों को हटा दिया गया। मैं कह नहीं सकता कि ये गीत कौन से कब पड़े हैं।

પંચમ-સંચલન : ગદ્ય-પદ્ય

मूल रूप में मैं जानूँ हूँ और अपने कान्य-सुमती में मैंने
भारतीय शहीदों और प्रान्तिकारियों की ही अर्चना की है। एक स्थान
पर मैंने लिखा भी है -

“प्रान्ति के जल देवता, मेरे लिए आराध्य,
काव्य ज्ञान मात्र, उनकी वन्दना है साध्य।”

इस वन्दना-क्रम में शहीद भगतसिंह और चन्द्रशेखर आज़ाद पर
महाकाव्यों की रचना करके मुझे बहुत संतोष हुआ। लेकिन
मेरे लिए मेरे सामने एक बहुत बड़ा-परिचालक का कार्य है
जो सुभाषचन्द्र बोस। मेरी आशा रही है कि भारतीय जोई
हुई आज़ादी की प्राप्ति की दिशा में यदि किसी एक व्यक्ति ने
सर्वोच्च प्रयत्न किया है, तो वह है सुभाषचन्द्र बोस। आज़ादी
के इस दीवाने पर कल्पम-चम्पान का मेरा भक्त हुआ और मैंने
इस संकल्प की प्रार्थना की दिशा में बड़ा कदम भी उठाया।

नेताजी सुभाष पर मैंने-चारों-चारों काफ़ी प्रसंगी
संकलित कर ली और उनका अध्ययन भी किया। मेरे एक परम
मित्र श्री बी.पी.० शर्मा के पास नेताजी के सम्बन्धित काफ़ी
साहित्य था। मैंने उनका भरपूर उपयोग किया। आवश्यक
यह था कि मैं उन सभी स्थानों का भ्रमण करूँ जहाँ नेताजी के
कार्य-क्षेत्र रहे। बंगालका भ्रमण तो मैंने कर लिया और
नेताजी के परिवार के लोगों और उनके ज़ारियों में भी मिली, पर
इच्छा थी कि मैं समूचे दक्षिण-पूर्व-एशिया का भी भ्रमण
करूँ, जहाँ-जहाँ नेताजी के चरण पड़े और देश के दीवानों का
खून गिरा था। यह बहुत बड़ा काम था और मुझे भी
अवसरों की हेरिचर वाले व्यक्तियों के लिए तो यह आश्वासन
के तारे तोड़ने पड़े।

अपने परिचय-क्षेत्र के एक केंद्रीय मंत्री महोदय को पत्र लिख
कि इस दिशा में वे केंद्र में कुछ सहायता दिलाएँ। मैं उनका कृतज्ञ
हूँ कि उन्होंने मुझे आवश्यक देने के स्थान पर साधन उत्तर दे
दिया -

“मुझे हैद है कि इस विषय में मैं आपकी कोई
सहायता नहीं कर सकूँगा।”

जैसा कि ही एक इतरे मंत्री महोदय को पत्र लिखा। बड़ा चारा
उठा आया उनका। उन्होंने लिखा था -

“ मैं दूंगा कि मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ। ”
अपने प्रदेश की एक मंत्री महोदय को पत्र लिखा। उनका

उत्तर आया -

“ मेरी समस्त श्रमकामनाएँ आपके हाथ हैं। ”
आश्वासन की शी पुँजी है तो काम-चल नहीं सकता था
और मैं अपना विचार त्यागने के लिए तैयार नहीं था। मन
बहुत अँनाथा और साधन बिल्कुल शून्य। दो महाकाव्य
प्रकाशित कर देने के जवाब भी भर नहीं पाए थे। मैं हिम्मत
हारने लगा। अपने कमरे में हँसते नेताजी के चित्र को सम्मुख
में खड़ा हो गया। मुझे लगा, जैसे एक बार कलने सानियों से
कहे गए शब्दों को उन्होंने मेरे सामने फुरा दिया -

“ विद्रोही वह है जो सत्य में विश्वास शक्ता है और
विश्वास शक्ता है कि अन्त में सत्य और न्याय की ही विजय
होती है। जो असफलताओं से, शारीरिक असुखों से निराश
हो जाता है, उसे अपने को विद्रोही कहने का कोई हक नहीं।
विद्रोही का बाना है - 'आँवों में आशा के सपने, लक्षों में
मौत के फूल और दिल में आपसी का तूफान'। ”

जब मैंने उनकी इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया तो
व्यंग्य ने लहजे से उन्होंने फिर कहना प्रारम्भ किया -

“ क्यों, आत्मिकारियों पर लिखने वाले की कलम रुक क्यों
गई? हमारे कदम तो कभी रुके नहीं थे, हमारी कलम क्यों रुक
गई? कलम की इशक की इल्लिवा से ही रोने लगे, फिर
आगे क्या होगा? जब हमने एक लौंगी पर ही लिखने का
बीड़ा उठाया है, तो फिर निराश होने से कैसे काम-चलेगा?
हँसला रावो। जो कीते, सहे। लिखो। ”

नेताजी की अन्तर्प्रेरणा ने मुझे भकभाह दिया। फिर
कलम उठा ली और कुछ शेरारें लिखने लगा। उन रातों
में नेताजी का ठीक-ठीक चित्र उभरने लगा। विदेश-यात्रा

का हुंकार कर डाला । गहनत-मजदूरी में जुट गया नेताजी
 ने लगभग डेढ़ हो बड़े-बड़े चित्र बनवा डाले और उनके लिये
 विकास्यों और महाविद्यालयों में नेताजी के चित्र की कहानी
 प्रस्तुत करने लगा । कार्यक्रम बहुत प्रभावशाली हो रहा था, वहाँ
 बहुत कम मिलते थे । कार्यक्रम के प्रभाव की बात बताई-
 विदेश जिले में श्री विष्णु प्रताप सिंह कॉलेज में । गंज बासों के
 के भेले के समय नेताजी-चित्रावली के प्रदर्शन के लिए मुझे
 आमंत्रित किया गया । मैंने कॉलेज साहब से निवेदन किया-
 " चित्रावली को पहला चित्र आप लींच दें । "

उत्तर आ -

" मुख्य-मंत्री महोदय आने वाले हैं । मुझे उनके
 स्वागत की तैयारियों का निरीक्षण करना है । पहला चित्र
 लींच कर चला आऊँगा । आप बुरा मत मानिए । "

उन्होंने पहला चित्र लींच दिया और दो-चार चित्र
 दोबारा लेने के शौदे पर एक स्कूल लींच कर आया स्कूल पर,
 शीघ्र ही उठ जाने के शौदे पर बैठ गए । शेष चित्रों के लाने
 में भी कभी गड़बड़ी कभी पक्का में नेताजी की कहानी प्रारम्भ-
 कर दी । चित्रावली के घण्टे में समाप्त हुई । सभी लोगों ने
 दोबारा की कॉलेज साहब ने आया स्कूल पर बैठे ही दो घण्टे
 निकाल दिए और पूरी चित्रावली देख डाली ।

मेरी चित्रावली के पश्चात् उसी सभा-भवन में आवेग-
 भारतीय मुशायरा संपन्न हुआ । चित्रावली के प्रदर्शन से कीर्ता
 और बलिदान का ऐसा वातावरण बन गया था कि इशक की
 सभ शांसी वहाँ कोई प्रभाव नहीं जाता सकी
 और एक घण्टे के अन्दा ही मुशायरा खत्म हो गया ।
 आयोजक लोगों ने मुझे बहुत कोता, पश्चात् उनका ही
 पुत्र आ जे मुशायरे के पहले उन्होंने मुझे अपना
 ... के अन्त में ...

के लगभग डेढ़ लाख बड़े-बड़े चित्र बनवा देने और उनके लिये
विद्यालयों और महाविद्यालयों में नेताजी के चित्र की कहानी
प्रस्तुत करने लगा। कार्यक्रम बहुत प्रभावशाली हो रहा था, पर
बहुत कम मिलते थे। कार्यक्रम के प्रभाव की बात बताई
विदेश जिनमें श्री विष्णु प्रताप सिंह कलकत्ता में। गंज कासी
के मेले के समय नेताजी-चित्रावली के प्रदर्शन की तस्वीर मुझे
आर्पित किया गया। मैंने कलकत्ता साहब से निवेदन किया -
“चित्रावली को पहला चित्र आप लींच दें।”

उत्तर था -

“मुख्य-मंत्री महोदय आने वाले हैं। मुझे उनके
स्वागत की ‘हवाईयों’ का निरीक्षण करना है। पहला चित्र
लींच कर चला जाऊंगा। आप बुरा मत मानिए।”

उन्होंने पहला चित्र लींच दिया और दो-चार चित्र
देख लेने के बाद ही एक स्कूल लींच कर आया स्कूल पर,
शीघ्र ही उठ जाने के बाद ही बैठ गए। शेष चित्रों के लाने
में तो कभी गवर्नर कभी परम में नेताजी की कहानी प्रारम्भ
कर दी। चित्रावली के पण्डे में समाप्त हुई। सभी लोगों ने
देखा कि कलकत्ता साहब ने आया स्कूल पर बैठे ही लींच
निकाल दिए और पूरी चित्रावली देख ली।

मेरी चित्रावली के पश्चात् उसी सप्ताह-प्रकार में आवेल-
भारतीय कुशायरा संपन्न हुआ। चित्रावली के प्रदर्शन की तस्वीर
और बाल बाल का ऐसा वातावरण बन गया था कि इश्क की
सब शादी वहाँ कोई प्रभाव नहीं जाना सकी
और एक पण्डे के आया ही कुशायरा बस हो गया।
आखिरके लोगों ने मुझे बहुत कोता, परन्तु मैंने उनका ही
पुसुर भाष्य कुशायरे के पहले उन्होंने मुझे अपना
कार्यक्रम देने का आदेश दिया था।

जैसा कि मैं लिख चुका हूँ कि इस कार्यक्रम से मैं अपने
कुशलता प्राप्त नहीं कर सका और फिर मैंने

एक उदाहरण मैं देता हूँ कि मैंने अपने लिए कुछ बच नहीं था। अशोकनगर में रहने वाले अपने बड़े भाई को मैंने पत्र लिखा -

“मैं राजाजी सुभाष पर तब्य-संकल्पन के लिए मैं विदेश-यात्रा पर जाना चाहता हूँ। मेरे हिसाब के जितने भी पैसों और जितनी भी आवश्यक वस्तुएँ हैं, उनके बचकर मेरे पास रेषा भेज दीजिए।”

उन्होंने मेरे हिसाब का हक कुछ बचकर मेरे पास रेषा भेज दिया। विदेश-यात्रा के लिए राखी फिर भी कम रही। विश्व-विद्यालय में पीएच.डी. के लिए आवेदन-पत्र देकर शुल्क जमा कर रहा था, वह भी वापिस लौटियाँ कुछ कर्ज भी लिया। विदेश-यात्रा के लिए पासपोर्ट भी बन गया। इस कार्य में मेरे मित्र श्री सुहारीलाल त्रिपाठी ने मेरी बहुत सहायता की। वे उस समय उज्जैन में व्यायाचारी के पद पर आसीन थे। विदेश-यात्रा पर जाने के केवल पन्द्रह दिन शेष रह गए थे। इसी बीच एक भयंकर दुर्घटना का शिकार हो गया। गंधी-बोटें आई। बेहोशी की हालत में मित्रों ने अस्पताल में भर्ती करा दिया। छुट्टी भी जा-सुकी थी। बहुत दिन बाद छुट्टी मोटे कर आई। दूसरों ने कहा - विदेश-यात्रा हो क्या, ये पाके बाह्य जाने के योग्य भी नहीं हैं। किसी भी एक नहीं सुनी। निश्चित तौर पर जाने पर चला पड़ा -

जन्म-पत्री में कालेपानी का योग

अपनी सुभाष-यात्रा का श्री गणेश कालेपानी की यात्रा से किया। अनुभव प्राप्त करने की दृष्टि से कलकत्ता से कोई जगह तक की यात्रा अन्धमान 'जन्मयात्रा' की। चार दिन और चार रात की यात्रा थी। कलकत्ता से के मेरे एक मित्र श्री शुभकरन दासजी ने मेरी सुविधा जल-यात्रा के लिए सुविधाएँ जुटा दीं। उन्होंने

'शिपिंग-कन्फरेंस-ऑफ-इंडिया' के आयोजकों से मिल कर
उन्हें यह बताया कि एक बहुत बड़ा साहित्यकार अपने जहाज से
अब्दमान-यात्रा कर रहे हैं, उनके साथ की० आई०पी० व्यवस्था किया
जाना चाहिए। उनका यह प्रयत्न काम आया और कैप्टन को
हरबर-मास्टर को भी तार कर दिया गया कि वहाँ पहुँचने वाले
साहित्यकार कीर्तिका के लिए अपना का आरक्षण करा दें। प्रतिदिन
जहाज का कैप्टन मिलने आता था और मेरी सुविधाओं का निरन्तर
यत्न रहता था। समुद्री बीमारी भी दवा में उभने मेरी विशेष
रिवाज थी।

मेरे जहाज में केबिन-कन्फास का डिजिट खरीदा था। इसके पर
बड़े लेकर समुद्र का गहरा देवता में बड़ा आनन्द आता था। मेरे
केबिन के पड़ोस वाले केबिन में कलकत्ता के एक आयर आमेरिकी
मि० वर्मा यात्रा कर रहे थे। वे अपना आध्यात्मिक समय लोगों से
मिलने-जुलने में ही बिताते थे। महिला-यात्रियों से मिलने
में उन्हें विशेष आनन्द आता था।

मेरे भई के महीने में समुद्र-यात्रा की थी। यह महीना
समुद्र-यात्रा के लिए बहुत लाभ होता है। हमारे जहाज को भयंकर
तूफान का सामना करना पड़ा। जहाज इतना डगमगाने लगा
कि उसके डूब जाने की स्थिति दिखाई देने लगी। अपनी कबिताओं
में मेरे जगह-जगह तूफानों को गगन्य बताया था, पाँच व
तूफान देवा तो देवता याद आ गए। कप्तान ने बतारे का समय
बचा दिया और केबिन-कन्फास के यात्रियों को आइस-बैल्ट
पहनाने दिए। जहाज में कुहराम मच गया। श्री माताएँ और
बच्चे बुरी तरह रोने लगे। लोगों ने प्रार्थनाएँ प्रारम्भ कर दीं।
अपने सभको यह तस्वीर थी कि तूफान-काय में शहीद होने
का मौक़ा मिलेगा। संकट टल गया। लोगों की जान में जान
आई।

हमारे जहाज जब जेटी पर पहुँचा तो सैकड़ों लोग
हिलते हुए दिखाई दिए। वहाँ से लोग अपने लोगों के
विगत के लिए पहुँचे थे। सीढ़ी डाक देते पाँच बिल्लों

हॉवर-मास्टर जहाज में चढ़ कर मेरे कोबिन में पहुँचे। मुझे
फिलकर उन्होंने बताया कि उन्होंने मेरे लिए आवाज़ का आरक्षण
करा दिया है। उन्होंने यह भी कहा कि उतरने वालों की मंडि बंद
जाने में मुझे लेने का रहेगा और अपनी जीप में ले जाकर
अन्ना-गुरु तक छोड़ देंगे। मैं डेक पर खड़ा होकर मंडि को
गजारे देकर रहा।

मंडी के कार्य हॉवर-मास्टर ने स्वयं न पहुँच कर आसिस्टेंट-
हॉवर-मास्टर को मुझे लेने के लिए भेजा। उन्होंने कोबिन के
पास पहुँच कर पूछा कि मैं सरल कोन हूँ। आपका नाम क्या
है। मैं ने ~~पूछा कि~~ आसिस्टेंट-हॉवर-मास्टर से पूछा -

“आप किसको तलाश रहे हैं?”

उसका उत्तर था -

“मैं सि० सरल को तलाश कर रहा हूँ, जिन्हें लीवा ले जाने के
लिए हॉवर-मास्टर ने मुझे भेजा है। नीचे जीप लड़ी है। उन्हें जीप में
ले जाकर विंघाम-गुरु पहुँचाना है, जहाँ उनके लिए ~~एक~~ एक
कमरे का आरक्षण करा दिया गया है।”

उपवाक्ता को भी जानकारी पाकर मैं वहाँ लेल गया।

उन्होंने मुझे बोला कि -

“मैं ही सि० सरल हूँ।”

आसिस्टेंट-हॉवर-मास्टर उसको अपने साथ लेकर चले गए। मैं
प्रतीक्षा करता रह गया कि कोई मुझे लेने आएगा। जब पूरा जहाज
निाली हो गया तो मैं अपना सामान लेकर नीचे उतरा।
जिसे दिन जहाज पहुँचता है, उस दिन टैक्सियों का मिलना
मुश्किल हो जाता है। बड़ी मुश्किल से एक मुक्ति वाले की
हालत से एक टैक्सी भी और विंघाम-गुरु पहुँचा। वहाँ
पहुँचकर उपवाक्ता से बोला -

“मेरा नाम ~~हूँ~~ ए००० सरल है। मेरे लिए यहाँ की
हॉवर मास्टर ने जिसे कमरे का आरक्षण कराया है, वह मुझे
दे दीजिए।”

मेरा नाम सुनकर उपवाक्ता ने मुझे नीचे से उतार
तक देकर छोड़ दिया -

“सि० सरल तो अपने आराक्षित कमरे में हॉवर-मुक्ति है,

उन्हें तो अभी-अभी कासीस्टेप - हॉवर-मास्टर अपनी जीप में धाड़
कर गए हैं। लगता है कि आप कोई प्यारी आदमी हैं जो
श्री० विरक्त का नाम चारण करने हमें चौंका देना चाहते हैं।
आपको हागत के लिए हमें दुःखित बुझानी पड़ेगी।”

व्यवस्थापक के द्वारा यह स्थिति जान कर मैं चकराया। अपनी
व्यक्ति पुनर्जात के स्वागत की इतीहास कर रहा था और गवर्नरजी की
जगह मैं आराधन कर रहा था। स्थिति को कुछ आगे की दृष्टि में
मैंने व्यवस्थापक से कहा -

“आप हार्बर-मास्टर की जॉन लगाइए, मैं उन्हें यहाँ बुला
कर आपको बतला दूँ।” मि. आसानी और गजनी दोनों हँसते हैं।

हार्बर-मास्टर को धन लगाया गया। मेरी उम्मीदें वात हुई। मैंने उन्हें बताया कि आप स्वयं जहाज पर नहीं पहुँचेंगे और आपने आसिस्टेंट महोदय को ज्ञापन कर दिया कि आपने मेरा नाम धारण करने विज्ञापन-गृह में ठहरे चुका है। मेरा वक्तव्य पुनः कर हार्बर-मास्टर और आसिस्टेंट हार्बर मास्टर दोनों ही जीप में विज्ञापन गृह पहुँचें। उन्होंने मुझे पहचान के व्यवसायिक से कहा कि आपकी पि. सरल से हैं। मेरे लिए काराकीत कमरे में आने वाली मेरे नाम से ठहरे गजा भा, ठहरे बुझाया गया। मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, वे आपका-आपकी पि. वर्क में। दोनों हार्बर-मास्टरों और विज्ञापन-गृह के व्यवसायिक महोदय ने इस व्यवसायी को लिए पि. वर्क की अच्छी तरह से सु उतारी और उनका हाथग लिङ्क पर रान कर उन्हें वहाँ से चले जाने के लिए कहा। मुझे पि. वर्क पर रहम आया और मैंने प्रभाव रखा कि यदि व्यवसायिक महोदय को आपकी ज. हा. हा. पि. वर्क मेरे कमरे में मेरे सामने की ज. हा. में ठहरे सकते हैं। व्यवसायिक महोदय ने उनकी और लानत-मलामत की और मेरे ज्ञापन ठहरने की अनुमति देनी। यह संस्मरण मैंने इसलिये लिखा कि पाठक गण जान सकें कि दुनिया में कितने ऐसे चूरी लोग होते हैं, जिन्हें उम्मीदें बचा जा सकें।

अन्धमान-याना में से इस्लाम की भी वपों के अन्धे हाथ ने ताजी
मुआव्वन्द को फेंक कर कुचल संसारण चुड़े हुए थे। जापान ने जब
उस द्वीप-समूह को 'अंग्रेजों' से धरीन लिया, तो उसका
नागरिक-प्रशासन नेताजी के हाँप दिया। नेताजी जापान के हाथ
यह अनुबन्ध पहले ही कर चुके थे कि 'अंग्रेजों' से जो भी
भारतीय भू-भाग धरीना जायगा, उस पर आजाप-हिन्द-तरका
को प्रशासन होगा। नेताजी ने स्वयं अन्धमान-निर्देशों पर
द्वीप-समूह पर हुंज का उसका प्रशासन-मा मिलना भी करी
करल लोकनायक को वहाँ को गवर्नर नियुक्त किया था।
उन्होंने इन दोनों 'द्वीपों' को लाल बदल कर शहीद-द्वीप
और स्वायत्त-द्वीप राखे थे।

मैंने भी दोनों 'द्वीपों' की यात्रा की। मुझे यह देख कर
बहुत अच्छा लगा कि नेताजी के निर्देश पर इन दोनों 'द्वीपों'
के काल-काज की भाषा हिन्दीतानी थी। यद्यपि वहाँ भाषा के
हर प्रांत के लोग रहते थे और वहाँ पर वे अपने-अपने प्रांत
की भाषाएँ बोलते थे, पर कानों बाह्य और बाजारों में वे
हिन्द-हिन्दी में ही बातचीत करते थे।

पौटि बल्लेकर में मेरे निवासित तीन दिन बहुत अच्छी तरह
गुजरी। चौतीन दिन मैंने कालेपानी की काल-कोठियों में
सुमते हुए बिताए, जिनमें छोटे आजादी के दीवाने क्रान्तिकारी
लोग आजीवन-कारावास की सजा ~~पकने से~~ देकर राखे जाते थे।
उस समय उस जेल के प्रधान जेलर सि० हर्षे थे। उन्होंने
मुझे हर कोठरी दिखाई और बताया कि किस कोठरी में कौन सा
क्रान्तिकारी रहा था। उन्होंने १२३ नं० की वह कोठरी भी मुझे
विशेष रूप से दिखाई, जिनमें वीर विनायक दामोदर सावरकर
रहे थे। मैं उस कोठरी का एक चित्र भी लिया था।

सि० हर्षे ने वे कर्मशालाएँ भी मुझे दिखाई, जिनमें
क्रान्तिकारी कैदियों से विभिन्न प्रकार के काम लिए जाते थे।
वह कोठरु भी सुरक्षित राखा गया था, जिसे चला कर
जिसमें बेल की तरह स्वयं चुत पर क्रान्तिकारी कैदी गरी

को तेज निकालते थे। उन्हें प्रतिदिन कोश पोंड तम निकाल
कर देना पड़ता था। (बिबिधता दिखाने पर हन्टर की मार
पड़ती थी)। मैंने भी उस कोल्लू को - बचा कर देना।
एक - चक्कर लगाते पर ही मैं पत्तियों - पत्तीना हो गया। जेम्स
साहब ने बताया कि आप ने तो खाली कोल्लू को बचाना
एक - चक्कर ही लगाया है, अपनी कारी लोग तो गरीब
भरे हुए कोल्लू को दिन भर लींचते रहते थे।

वह फौसी - चर भी मुझे दिखाया गया, जहाँ कपासीयों
को फौसी दी जाती थी। फौसी का फन्दा लटका हुआ
था। मैंने उस फन्दे को अपने गले में डाल कर देखने की
इच्छा प्रकट की। जेम्स जि० हर्षे मुझ पर कहने लगे -
“आप फौसी को इस फन्दे को अपने गले में डाल कर
देख सकते हैं। आप गर्व से कह सकेंगे कि मैं गले में भी
फौसी का फन्दा आकार निकाल चुका हूँ। एक छात्री ने
इसी प्रकार देखने की कहानें गले में फन्दा डाल कर आत्म-हत्या
कर ली थी। तब ही हमने इसकी गॉठ को लॉक कर दिया है
और अब यह गॉठ निसर्क नहीं सकती।”

हमारे देश की ज्ञानिनीयों ने अपनी जवाभियाँ उन
काल कोठरियों में निकाल लीं। कुछ तो वही माँगा और
कुछ लोग वहाँ की आदतों के कारण पागल हो गए।
क्या हम देश की आजादी के हितों में उनकी सेवाओं को
मूल्यवान कर सकेंगे ?

अन्डमान में एक हफ्ते की विहारात

जब अन्डमान से प्रस्थान का समय आया तो वहाँ
भयंकर वर्षा होने लगी। मौसम इतना खराब हो गया कि
वायुयान की उड़ान प्रतिदिन स्थगित की जाती थी। उधर से मुझे
वायुयान झाग ही आगे बढ़ना था। वायुयान के - चालक और
इंजीनियर लोग भी उसी निष्प्राण-मूढ़ों के भरे हुए थे। वहाँ बहरे
कई लोगों को वायुयान से ही आजादानी थी। प्रतिदिन सभी

लोग लॉरी में भरकर विमान-स्थल पहुँचते, वहाँ सभी को गन्तव्य
 कर हाज़िरी ली जाती, विमान का इंजीनियर वेध शाला में मौजूद
 कीमती दोस्तों को जोखित कर देता कि मौसम उड़ान के अनुकूल
 नहीं है और हम सब लोग अपना अनायास लिए लॉरी छोड़ कर
 श्री विमान-गृह में पहुँच जाते हैं। इस प्रकार हम सभी लोग
 वहाँ एक छप्ते तक हिरासत में रहे। वर्षा इतने जोर की होती थी
 कि बाज़ार में भी घूम-फिर नहीं सकते थे। ऐसा वह था
 कि सभी लोग हाल में बैठ कर गप-शप करते रहते थे। लोगों को
 मानूस हो गया था कि मैं कवि हूँ, अतः मुझ से कविता
 सुनाने की परमादेश की जाती थी। मैं शहीदों पर लिखी गई
 कविताएँ भी सुनाता था और उनके दुर्भाग संस्मरण भी। शहीदों
 को अपने क्रान्तिकारियों के विषय में सुनने में लोगों को
 बहुत आनन्द आता था। मैं सभी लोगों को बहल कर गया।
 विमान का मुख-चालक और इंजीनियर एक ही व्यक्ति था। वह
 मुझसे बहुत आत्मीय प्रभावित हुआ और दोस्ती मानने लगा।
 एक छप्ते तक निरन्तर विमान-गृह से विमान-स्थल तक
 जाते और लौटते रहे। एक दिन बाकी साजों तो वहाँ पहुँच, लेकिन
 मैं नहीं गया। रोज-रोज के उड़ान के सँभल में मैं धैर्यवान हो गया
 था, इस कारण उड़ान के आनन्द का रह गया। जब सभी साजों
 विमान-स्थल पहुँच गए तो उनकी हाज़िरी ली गई। मैं अन्तर्गत
 वहाँ गैर-हाज़िर पाया गया। मुख-चालक ने जब मौसम का परीक्षण
 किया तो पाया कि मौसम उड़ान मानने के योग्य था। मौसम साम
 होने पर भी अपने अठ्ठ दिन की उड़ान स्वर्गित करने की योजना कर
 दी। लोगों ने जब कारण पूछा तो अपने कह दिया कि मौसम
 यहाँ तो साम है, लेकिन आगे हवा का दबाव है और वायुमान
 अपने फँस कर दुर्घटना का शिकार हो सकता है। वे सभी लोग
 लौट कर फिर विमान-गृह पहुँच गए। अक्सर प्रकार वह
 मुख-चालक मेरे कमरे में पहुँचा और बोला -

"आप आपकी अनुपस्थिति के कारण ही मुझे वाक
 मौसम का बहाना लेकर उड़ान स्वर्गित करने की योजना कर
 चली। यदि हमारा विमान चला जाता तो आप कसौटी में पहुँच

जाते। आपका यह रिक्ति बेंका ली जाती थी आपका गया
टिकिट जारी करना पड़ता।"

सन्धान ही उन विमान-वालाक ने भी साथ बड़ा उपकार किया
और वह भी इस कारण कि मैं शरीरों पर लिखता हूँ। मैंने जानबूझ
कर यहाँ उसका नाम नहीं लिखा। अगले दिन मैं 'मनीशानियों'
ने साथ विमान-स्नान गया और विमान हम लोगों को
धर्म की ओर ले उड़ा। विमान में भी मुझे की-आई-पी-व
पहनना पिया। - वाय-गश्ती के समय के बाद भी विमान-परिचारिका
मुझे काफी पिलाने के लिए ले जाती। विमान-वालाक दो विषय
में भी मुझे जानकारी दी गई और विमान के रेडियो-कक्ष में
मेरी कबिताएँ वाचनीय को सुनवाई गई।

रंगून में तमाचा पड़ा

मेरी सुभाष-यात्रा के पड़ान पर धर्म, मलेशिया, सिंगापुर,
थाईलैंड, हांगकांग, जापान और फारमोसा। धर्म की राजधानी रंगून
पहुँचने पर मैंने नगर में जाने के लिए एक टैक्सीवाने से काह्यीते
की। अपने मुँह से पूछा -

"क्या आपके पास नगर को कवर करने के लिए रंगून के नगर-
प्रशासक का अनुमति-पत्र है?"

मैंने उत्तर दिया -

"मेरे पास नगर-प्रशासक का अनुमति-पत्र तो नहीं है, लेकिन
अन्तर्राष्ट्रीय पार-पत्र आवश्यक है। क्या उसका कार्यालय पर मैं नगर-प्रवेश
नहीं कर सकता?"

अंतर्गत -

"नहीं, अन्तर-पत्र के कार्यालय पर काय नगर-प्रवेश नहीं कर सकते।
आज विमान-स्नान के टेलिफोन से नगर-प्रशासक के कार्यालय को फोन
कीजिए। वहाँ से आपको निर्देश मिलेगा कि आपको क्या करना है।"

मैंने विमान-स्नान के टेलिफोन का उपयोग करके नगर-प्रशासक
के कार्यालय से संपर्क स्थापित किया। मेरी यात्रा का उद्देश्य पूछने
पर टेलिफोन पर ही मैंने बताया कि मैं भारतीय प्राधिकारियों
पर फुलकें लिखता हूँ और मेरी धर्म-यात्रा का उद्देश्य भी यही है।

कि मैं भारत के मूलन क्रान्तिकारी सुभाष-चन्द्र बोस के सम्बन्ध में
कुछ तथ्य बतोर लूँ। मोन पर मुझसे कहा गया -

“आप विमान-पक्ष के प्रतिष्ठापक में प्रतीका कीजिए। (मारा
एक अप्पसर आपसे मिलने वहाँ पहुँच रहा है। वह आपको
आवश्यक निदेश देगा।”

भोड़ी दे पश्चात् उसका एक अप्पसर वहाँ पहुँच कर
उत्तरे मुझसे प्रस्ताव प्रारम्भ करनी। मैंने वही बात उससे भीकरी
कि मैं भारतीय क्रान्तिकारियों पर निष्ठा रखूँ और नेताजी सुभाष-चन्द्र बोस
के सम्बन्ध में कुछ तथ्य बतोरने सहँ आया हूँ। वह निम्नान
बार-बार अपने बुरा-मोड़ की कहरी जोक में हास्य डाल कर कुछ
तलेलता था। मुझे शक हुआ कि कहीं इतने अपनी जोक में पिस्तौल
तो नहीं रखे थोड़ा और मुझे अलग निश्चाना तो नहीं बनाना
चाहता। विमान में सजाकरते समय मुझे कुछ सहयात्रियों ने
बताया था कि वर्माने अन्दर कोई क्रान्तिकारी संस्था है और अपने
परमाणु हत्ता का तस्ता पल्लव देने की चुनौती दी हुई है। मैं
विचार करने लगा कि कहीं यह जाती मुझ पर यह शक तो
नहीं कर रहा कि मैं वर्माने क्रान्तिकारियों के साथ सम्बन्ध
स्थापित करने आया हूँ। उत अप्पसर ने मुझसे यह तो पूछा ही
कि मैं भारत के दिन-दिन क्रान्तिकारियों पर तुम्हारे लिए
चुका हूँ, अतः एक विचित्र प्रश्न मुझसे किया -

“क्या आप भारत की किसी क्रान्तिकारी-पार्टी के सदस्य हैं?”
मेरा उत्तर था -

“मैं तो एक शास्त्रीय प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्रवक्ता हूँ।
मैं किसी क्रान्तिकारी-पार्टी का सदस्य नहीं हूँ। और
जहाँ तक मेरी जानकारी है कि इस समय भारत में किसी
क्रान्तिकारी पार्टी का अस्तित्व नहीं है। वहाँ सत्ता के विपक्षी-
दल अवश्य हैं, पर क्रान्तिकारी-दल नहीं।”

उत अप्पसर ने मेरा कॉलेज का और पारकापता पूछा। अपना
निर्णय सुनाते हुए उत्तर दे रहा -

“हम आपको तम्र-प्रवेश की अनुमति तो देते हैं, पर हमारे

हो जाते हैं।

मैंने अपनी शर्तें पूछीं तो उत्तर बताया -

“हमारी पहली शर्त तो यह है कि आप किसी दूसरी शरण-भूमि नहीं करेंगे। आपके लिए परिवहन की व्यवस्था हम स्वयं करेंगे, लेकिन आपका पूर्ण जप है हमारे अनुशासन में रहना पड़ेगा।”

उस आदमी की यह शर्त सुनकर मुझे कुछ अच्छा लगा। मैंने कहा कि मैं तुरन्त ही मेहनत की तरह नगर-भ्रमण करूँगा। मैंने अपने अनुशासन में रहने की बात स्वीकार कर ली। इसी शर्त के विषय में पूछा तो उत्तर बताया -

“आप रंगून नगर में केवल एक स्थान चुन लीजिए, हम वही स्थान आपका दिलाएंगे, शर्त नहीं।”

यह शर्त मुझे कुछ विचित्र लगी थी। मैंने उसे बताया कि मैं वह भवन देवना-चाहूँ जो अभी नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का मिलिट्री-हेडक्वार्टर रहा था। उस आदमी ने एक पुलिस को टेलिफोन लगाया। थोड़ी देर में ही पुलिस की एक गाड़ी वहाँ पहुँची। मुझे उस गाड़ी में बैठने के लिए कहा गया। जब मैं उसमें बैठ गया तो मेरे आसपास बन्दूक-धारी बर्फी लोकेट बिछाए गए और एक पुलिस-इन्स्पेक्टर मेरा हाथ पकड़कर मेरे सामने ही बैठा। मुझे उन लोगों को यह व्यवस्था बड़ा विचित्र लगा, पर मैं कर ही क्या सकता था। मुझे लेकर पुलिस की गाड़ी चल दी।

कुछ देर चलते ही बायें एक बड़ी इमारत के सामने गाड़ी रुकी और मुझे बताया गया कि किसी समय यही सुभाषचन्द्र बोस का मिलिट्री हेडक्वार्टर था। मैं गाड़ी से नीचे उतरा और बड़ी आश्चर्यचकित हो रहा था। उस इमारत को देखा रहा। मुझे उसके अन्दर जाने की अनुमति नहीं थी। उस इमारत को देखकर मेरे मन में ये विचार उमड़ने लगे कि नेताजी के आवा-गमन में यहाँ की भिड़ी परिवर्तन हो गई है। इस विचार है कि नेताजी के चरणों से पवित्र हुई मिट्टी मरते ही जाकर अपने मित्रों को दिलाऊँगा, मैंने वहाँ ही

एक मुड़ी भर मिड़ी उठा ली। ज्यों ही मैंने मिड़ी उठाई, मेरे
साथ साथ पुष्पि-इनायेकर मेरी ओर अपना ओर उठने
मुझसे मिड़ी फेंक देने की लिए कहा। मैंने वह मिड़ी नहीं
फेंकी। इतना वह इनायेकर तेवर बदल कर मुझसे बोला -

“मिड़ी फेंक दीजिए, आपने इसे वचन दिया है कि
आप हमारे आग्रहासन में रहेंगे।”

मैंने उठने दुबारा कहते पर वह मिड़ी फेंक दी और बोड़ी-सी
रजा जो मेरे हाथ में लगी रह गई थी, उसे अपने साथ ले
लगा कर इनायेकर की ओर मुवातेव हुका ओर कहा -

“मिड़ी जैसी मामूली चीज भी आप मुझे ले जाने की
अनुमति नहीं दे रहे, इसका क्या कारण है ?”

मेरे इस प्रश्न को सुन कर पुष्पि-इनायेकर का चेहरा कुछ
तमतमाया और उठने बड़ा हीरा उतर मुझे दिया -

“मिड़ी को मामूली-चीज आप हिन्दुस्तानी समझते होंगे,
हम लोग नहीं। जब आप लोग अपने ही देश की मिड़ी को
कट्ट नहीं करते, तो हमारे देश की मिड़ी को क्या कट्ट
करेंगे।”

यह सीधा उत्तर सुन कर मेरे कानों की कीड़े भड़ गए।
मूल मेरी ही थी जो मैंने मिड़ी को मामूली-चीज कह
दिया। यद्यपि मैं जानता था कि मिड़ी महत्वपूर्ण
बात होती है, लेकिन ‘मामूली’ शब्द का प्रयोग तो मैंने
इंगित किया था कि उसे प्राप्त करने के लिए कोई बुरा
कुत्सा नहीं पड़ता।

मुझे उस स्थान से भीटा कर विमान-स्थल पहुँचा
दिया गया। मेरी कल्पना अतीत की ओर दौड़ने लगी कि
कितना प्रकार मिड़ी की लाज रहने लगे। मैंने भारतीय क्रांतिकारियों
को फाँसी के फन्दे-दूसरे ओर लीनों पर गोलियों लाई।
अगर शहीद अशफाक-उल्लाहों को वह और मुझे साद कागजा
जो फाँसी के पूर्व उठने कहा था -

“कुछ आरजू नहीं है, है आरजू तो यह रहे -
रखदे कोई जरा ही लाक-वहन केमत में।”

नेताजी के प्रभाव ने प्रण-शस्त्र की

जब मैं दक्षिण-पूर्व-एशिया के देशों को घूमा था, तो
नेताजी के एक सचिव श्री एस. ए. अय्यर से एक खुला हुआ
परिचय-पत्र ले गया था। श्री अय्यर नेताजी के फौजी मंत्रि-मंडल
में हुजूम की प्रसारण विभाग के मंत्री और नेताजी के
बहुत निकट थे। श्री अय्यर (जब स्वर्गीय) उन दिनों क्वार्टर
में रहते थे, जब उन्होंने मुझे हुजूम पत्र दिया। वह पत्र था -

20 गाज़िन महल
चर्चगेट
अम्बई 20
26-90-66E.

हर किसी के लिए

~~उज्जैन के शासकीय शिक्षा महाविद्यालय के श्री-
एस. ए. अय्यर~~

उज्जैन, मध्य प्रदेश के शासकीय-शिक्षा महाविद्यालय के
श्री एस. ए. अय्यर ने नेताजी सुभाषचन्द्रजी की आज़ाद-हिन्द-
फौज पर पुष्क-लेखन के लिए तब्य-संकल्पन हेतु विदेश-यात्रा
पर निवास रहे हैं। श्री अय्यर ने बहुत ही प्रशंसनीय काम
अपने हाथ में लिया है, इसलिए जिस किसी के पास भी ऐसा
तब्य हो, वे उन तब्यों को श्री अय्यर को देकर उन्हें अनुग्रहीत
करें।

एस. ए.
(एस. ए. अय्यर)

भूतपूर्व हुजूम-पंजी
अध्यायी-आज़ाद-हिन्द सरकार
(१९४३-१९४५)

मैं विदेश में भी गया, श्री अय्यर के इस पत्र को
दिया देने पर मुझे बहुत महत्व दिया गया और तब्यों के
संकल्पन में मुझे हर प्रकार की सहायता प्रदान की गई।
अध्यायी वह एक आत्म-कारणिक और अध्यायी साक्षात्, फिर
भी उनके एक मंत्री द्वारा लिखे गए पत्र को बहुत आधिक

महत्व मिला, जितना किसी देश के आर्थी महान को मिलता है। इस पत्र के प्रभाव की एक पटना यहाँ उद्घृत कर रहूँ -

जब मैं आईने की यात्रा के पश्चात् लॉगवॉग पहुँचा तो अनेक निष्पत्ति दृष्टिपूर्वक लॉज के व्यवस्थापक को पत्र दिखाना।

उस पत्र को पढ़ कर वह बहुत प्रभावित हुआ और बोला -

"मैंने नेताजी ने बहुत निकट से दर्शन किए हैं और उनकी ओजस्वी वाणी सुनने को मैं भाग्य भी मुझ में मानता हूँ। निश्चय ही आपने देश में सुभाष-चन्द्र बोस को जप में एक महान नेता दिया है। यदि मैं आपकी कृप्य की सेवा कर सका तो मैं स्वयं को बहुत भाग्यशाली समझूँगा।"

मैंने लॉज के व्यवस्थापक से एक-चीनी कुभाषिणी माँग ली और अनेक कुभाषियाँ माँग लिये। बुझावा दिया। वह अपनी-चीनी भाषा के आतिथि अँग्रेजी भाषा जानता था। उस चीनी कुभाषिणी से मैंने अँग्रेजी में बातचीत की। मैंने उसके सामने यह क्रमादेश रखी कि वह चीनी भाषा के कुछ कवियों से मेरी मुलाकात कराए। वह गया और मोड़ी देर पश्चात् दो अन्य-चीनियों को लेकर लौट आया। बातचीत के क्रम में उस चीनी कवियों से मैंने कहा -

"वह जितना दुर्मिष्टपूर्ण समय था जब सन् १९६२ में भारत और चीन के बीच युद्ध व्यूह था। उस समय हमारे देश ने आपके देश को आक्रान्ता समझा था। हमारे देश के कवियों ने उस समय आपके देश के विरुद्ध बहुत-सी कविताएँ लिखी थीं और विशेष रूप से मैंने हिन्दी भाषा में चीन के विरुद्ध कई कविताएँ लिखी थीं। यह स्वाभाविक है कि आप लोगों ने भी हमारे देश के विरुद्ध चीनी भाषा में कविताएँ लिखी होंगी। मैं नहीं समझता कि आप लोगों ने हमारे देश को आक्रान्ता मान कर हमें कोसा होगा। मैं चाहता हूँ कि हम लोग एक-दूसरे से कविताएँ सुनें, बात करेंगे तो मैं आप लोगों की कविताएँ सुनकर यह जानना चाहता हूँ कि आप लोगों ने हमारे प्रति किस तरह से विरोध प्रकट किया है।"

मेरी बात सुन कर उन लोगों के चेहरे पर कुरिज मुस्मान

खेल गई। एयर स्कीयरों की करने को ज्ञान पर उन्होंने कहा कि १८४
का लोग तो अभी गोपनीय हैं, हाँ हमारे वरिष्ठ कर्मियों ने इस प्रकार
की कवितारें लिखी होंगी। उन्होंने प्रताप रखा कि वे वरिष्ठ कर्मियों
को लोकाव आते हैं, तब किसी बगीचे में बैठकर कवितारें सुनने-
सुनाने का कार्यक्रम होगा। वे लोग चले गए। मैं अपने कमरे
में जाकर कुछ पढ़ने लगा।

कुछ देर बाद वे लोग एक जीप में आए। इस बार उनकी
संख्या घट चुकी थी। आते ही उन लोगों ने होटल के मैनेजर से मेरे
कमरे में पूछा। होटल के मैनेजर ने तब आए हुए व्यक्तियों को
देखा तो वह आश्चर्य और भयभीत हो उठा। मुझे बुलाने या
उन लोगों को मेरे कमरे पर पहुँचाने की बजाय अपने खर्च ही
कह दिया कि भारतीय कार्य महासंघ तो अभी अभी बाजार में
निकल गए हैं और तीन घण्टे पश्चात् लौटने को कह गए हैं। इस
तरह अपने अपने मोटा दिया। वे लोग मुनमुनाते हुए चले गए।
उन्हीं आने के पश्चात् होटल का मैनेजर दबे पाँव मेरे कमरे में
पहुँचा और बोला -

“क्या आपने कुछ लोगों को यहाँ मिलने के लिए बुलाया था?”

“हाँ, मैंने कुछ नीमी कर्मियों को बुलाया था।” मेरा उत्तर था। इस

पर वह कहने लगा -

“जो लोग आपको तलाश करते हुए यहाँ आए थे, वे पेसेवर गुड्डे,
रूपरामचन्द्र और कार्तिक लोग थे। अगर आप उनके साथ कहीं बाहर
चले जाते तो इस होटल में मोट कर नहीं आ सकते थे। आप
भारत में वापिस आ ही नहीं सकते थे। लंका में है। कि वे
लोग आपको मार सकते थे या कुछ राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति
के लिए आपको अपनी कैद में रखते। आप नेताजी के कार्य में
आए हैं, इसीलिए मैंने आपके प्रति अपना कर्ज पूरा कर दिया।
आप तीन घण्टे के पहले मेरा होटल ही नहीं हाँगकाँग भी छोड़
दीजिए।”

मेरे लोभ की बात सुनकर मैं हताश रहा। कुछ ही मिनटों में

की कविताएँ लिखी होंगी। उन्होंने प्रस्ताव रखा कि वे वरिष्ठ कवियों को लोकार्पण करते हैं, तब किसी कवि-से में बैठकर कविताएँ सुनने-सुनाने का कार्यक्रम होगा। वे लोग चले गए। मैं अपने कमरे में जाकर कुछ पढ़ने लगा।

कुछ देर बाद वे लोग एक जीप में आए। इस बार उनकी संख्या घੱब थी। आते ही उन लोगों ने होटल के मैनेजर से मेरे बारे में पूछा। होटल के मैनेजर ने तब आए हुए व्यक्तियों को देखा तो वह आश्चर्यित और भयभीत हो उठा। मुझे बुलाते आते उन लोगों को मेरे कमरे पर पहुँचाने के बजाय अपने खर्च ही कह दिया कि भारतीय कानून सहाय्य में अभी अभी कायदाबुजारी निकाल गए हैं और तीन घण्टे पश्चात् मौतने को कह गए हैं। इस तरह अपने उन्हें भौंटा दिया। वे लोग मुनमुनाते हुए चले गए। उनकी आँखों के पश्चात् होटल का मैनेजर दबे पाँव मेरे कमरे में पहुँचा और बोला -

“क्या आपने कुछ लोगों को यहाँ मिलने के लिए बुलाया था?”

“हाँ, मैंने कुछ चोगी कवियों को बुलाया था।” मेरा उत्तर था।

पर वह कहते लगे -

“जो लोग आपको तलाश करते हुए यहाँ आए थे, वे देखेवर गुड्डे, अपहरणकर्ता और दारिद्र्य लोग थे। अगर आप उनके साथ नहीं कह चले जाते तो इस होटल में मौत कर नहीं आ सकती थी। आप भारत को वापस आ ही नहीं सकते थे। वे कहते हैं कि वे लोग आपको मार सकते आ कुछ राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आपने अपनी कैद में राखे। आप नेताजी के कार्य में आए हैं, इसीलिए मैंने आपके प्रति अपना कर्ज पूरा कर दिया। आप तीन घण्टे के पहले मेरा होटल ही नहीं हाँकेंगे भी क्यों देजिए।”

मैनेजर की बात सुनकर मैं हनस रहा था। अपने जीवन-रक्षा के लिए मैंने उसका आग्रह माना और कहा -

“ मेरी कहिनाई यह है कि आपन के कोसाका नगर के लिए
मेरा बुकिंग ताल के लगे में है । यदि आप किसी प्रकार प्रयत्न
करने मुझे आज के लगे में भिजवा दें तो बड़ा रहसान होगा। ”

मैनेजर ने फोन बराबराता प्रारम्भ किया और बोड़ी के पश्चात्
मुझे बुला कर कहा -

“ मैंने आज के लगे में आपने लिए एक स्थान का आरक्षण
करा दिया है । मैं आपने सहायका को टैक्सी में आपने साथ में
रख दूँ । आप टैक्सी में आवका पढ़ते हुए जाइए, जितने
सड़क पर चलने वाली को आपका चेहरा दिखाई न दे । मेरा
सिहायक आपको लगे में बिठा कर ही वापिस आएगा। ”

अभी दृष्टाने लिए - मैंने उम्मा बहुत आभा माना और
इस परिणाम पर पहुँचा कि नेताजी सुभाष के प्रभाव ने ही
मुझे बचा लिया । मैं इस तरीके पर भी पहुँचा कि
किसी के साथ भी बात करते समय इसे मुँह पर नहीं
होना चाहिए और बहुत सचेत-समझ कर ही इसे वास्तविक
करना चाहिए ।

फारमोसा की यात्रा की-

हैंगकोंग से कोसाका पहुँचने के पश्चात् मैं जापान की
राजधानी टोकियो पहुँचा । अपने जापान-प्रवास में मुझे
नेताजी सुभाष से सम्बन्धित कामी मिली मिली । उनके
दुर्लभ चित्र भी मुझे वहाँ मिले ।

मेरे पास फारमोसा जाने के लिए पासपोर्ट नहीं था । जापान
सरकार के वैदेशिक विभाग में मैंने सहयोग के लिए प्रार्थना
की । उन लोगों ने मेरा मूल पासपोर्ट अपने पास रख लिया
और एक असाई पासपोर्ट फारमोसा के लिए बना दिया ।
फारमोसा से लौटने पर मुझे असाई पासपोर्ट वापिस
करके अपना मूल पासपोर्ट प्राप्त करना था । इस प्रकार
मैं फारमोसा की यात्रा संपन्न कर सका । वहाँ भी मुझे
नेताजी के बहुत से चित्र मिले । नेताजी के सम्बन्ध में मेरी

२८५

उपनायिकाओं के व्योमरे 'कालजयी-सुभाष' नामक पुस्तक
में मिल सकते हैं। मेरे लिए सुभाष-यात्रा एक बहुत
बड़ी तार्क-यात्रा थी। मेरे जैसे अध्यापक की हृदयियत
वाले छात्रों के लिए अपने स्वर्ग से इतने देशों की वास्तुगत
से यात्रा करना तो सपनामुच ही बहुत लोभाले की बात
थी। अब मुझे नेताजी सुभाष का कालग उठाना था।
मेरी कलम और मेरे कदम

नेताजी सुभाष से मेरा लगाव सन् १९४१ से ही रहा है। उस
समय उन्होंने देश की आजादी की लोच में भारत छोड़ो का। जब
वे कलकत्ता स्थित अपने घर से गायब हुए, तब मेरे बाल-मन ने न जाने
कौसी-कौसी कामनाएँ की थीं। एक आशंका यह भी थी कि कहीं उनकी
'लोच करके बंगाल' ने उनको सतम कदम उठे विोजने का आभियोग
न छोड़ रखा हो। उस समय हम लोग यह सोच भी नहीं सकते थे कि
सुभाष बाबू इतने ज़ेद विज्याही निकलेंगे। उनसे लगान फिरन्तर
बढ़ता ही गया। नेताजी-पत्र पर पहले मेरे कदम उठे और बाद में
कलम। फिर कलम और कदम दोनों ने एक दूसरे का हाथ
दिया। नेताजी का मेरी पहली कृति थी 'नेताजी के सपनों का भारत'।
नेताजी के सपनों का भारत

गद्यकी इस पुस्तक में मैंने यह बताने का प्रयत्न किया कि नेताजीने
स्वाधीन-भारत का कौन सा चित्र सोचा था और उस चित्र में वे
कौन-कौन से रंग भरना चाहते थे। नेताजी सुभाष ने अविशेषता
की थी कि भारत को स्वाधीन करने के लिए शारीरिक, मानसिक और
आर्थिक रूप से हमेशा सक्रिय रहे। देश की आजादी के आभिरुह
वे और कुछ सोचते ही नहीं थे। भावी भारत के विषय में जो
कुछ उन्होंने सोचा, उसे वे हमेशा किसी न किसी प्रकार
करते रहे। इस विषय पर जो कुछ उन्होंने कहा और जो कुछ
उन्होंने संकल्पित किया, वह सब मैंने इस पुस्तक में दिया है।
इस विषय में नेताजी ने एक बहुत ही तार-गर्भित भाषण लोकित-
निश्च-विद्यालय में दिया था। मैं भाग्य से अपने जापान-पत्र में

वह भाषण मुझे मिल गया और उसने समावेश है 'नेताजी के-
सपनों' का भाव' और बहुत उपयोगी बन गई।

नेताजी-सुभाष-दर्शन

नेताजी-सुभाष पर गद्यकी मेरी यह दूसरी पुस्तक थी। वास्तव में यह नेताजी के तीन सौ चित्रों का एक सुन्दर अलबम था। इसके पहले हमारे देश में नेताजी के चित्रों का कोई अलबम प्रकाशित नहीं हुआ था। मेरे मन में यही कल्पना थी कि देश के इतने महान नेता की इतनी उपेक्षा क्यों। इसके प्रकाशन के लिए मैंने प्रकाशकों से संपर्क स्थापित किया, क्योंकि यह आर्थिक व्यवशील कार्य था। सभी ओर से निराशा मिली। एक प्रकाशक ने तो यह लिखत की भी प्रस्ताव की -

"हमें खेद है कि नेताजी सुभाष पर कोई भी पुस्तक प्रकाशित करने में हमारी कोई दिलचस्पी नहीं है।"

जी जन्म गया इस उत्तर को ^{पढ़} कर। उत्तमना सरल-पक्षी के ही पक्ष और ^{मुझ} मुझ भी पक्ष। एक उदाहरण पर्याप्त होगा -

नेताजी से वा-वा-वाते

पुस्तकें तो छपवाली और काफ़ी आर्थिक पैसा लगा कर, लेकिन पार बँह तो बिकती नहीं। इस बार निवाला अपने ही प्रदेश के सुंदर अंचल में। पुस्तकों के भारी-भारी गढ़े लाद कर मैं बिनातपुर आ पहुँचा। जब कुली पर सामान लदवाकर (स्टेशन से बाहर आते लगा तो रेलवे के एक आधिकारी ने टोक दिया -

"सामान आधिक है क्या बुकिंग करा लिया है?"

नहीं, मैं मेरा उत्तर मिलने पर अपने लगेज तुलवाने का आग्रह किया। कुली ने मुझसे चारों ओर कहा कि बाबू साहबजी-जब मैं कुछ पैसा रख दूँ तो सामान सड़ने में निकर जाएगा, अन्यथा बहुत आर्थिक नुक़्सा हो जाएगा। मेरी आत्मा ने दिक्कत देना गवाश नहीं किया। सामान तो ला गया और लगेज-फुकाया गया। जब लगेज का भुगतान हो चुका तो मेरे पास केवल

तीन
सप्ताह पंचहस में ~~पंचहस~~ शेष है। जब मैं लॉज में पहुँचा
तो मेरे पास केवल पञ्चीत पौरे की पूँजी शेष थी। लॉज के
व्यवस्थापक ने आगि-राखी माँगी, लेकिन सम्मान से वह सामान
गया। उस लॉज में केवल रुखने की व्यवस्था थी, भोजन और
पाय की नहीं। रही-रही पूँजी में चयन करने में खर्च कर
दी। वह शुक्रवा की संध्या थी। भोजन के लिए जैसे नहीं थे।
कोई चिन्ता महसूस नहीं की। मन को यह कह कर सम्मान
मिया कि शहीदों के नाम है एक समय का प्रतीक ही नहीं।
मैं आश्चर्य था कि अगले दिन विद्यालयों में विद्यार्थी-गण
पुस्तकें बरिदेंगे ही और पौरे आने पर संपूर्ण का भोजन
कर लेंगे। अगला दिन अर्धरात्रि शनिवार आगया।
बारह बजे जब पहले विद्यालय में पहुँचा तो मानस हुआ
कि उस नगर में सभी शिक्षण-संस्थाएँ शनिवार को सुबह
लगती हैं। जब विद्यालय बन्द मिले तो अपने लिए
भोजनालय भी स्वाभाविक रूप से बन्द ही थे। अपरिचित
स्थान पर जिससे कहता कि उधार लिखा है। गालियों
ही खाने को मिलती। नगर में अपने विभाग के कुछ
परिचित मित्र भी थे, पर स्वार्थान के गते उधार माँगने
उनके पास नहीं गया। शनिवार का पूरा दिन भी कोरा ही
निकल गया। संध्या समय दो-एक पुस्तक-विद्युताकाँ को
अपनी पुस्तकें दिखाई, पर वे उनके किसी काम की नहीं थी।

रविवार आगया। सरकारी कर्मचारियों को यह दिन
छोटा लगता है, पर मेरे लिए तो पहाड़ जैसा लगा। लॉज
को बाहर नहीं निकला। रात आगई, पर नींद नहीं आई।
जिसने तीन दिन से नहीं खाया है, उसे नींद कैसे
आ सकती थी। यदि भोजन करने की सुविधाएँ प्राप्त
होने पर भोजन न किया जाता तो उतनी पीड़ा नहीं
होती। एक बार केवल यह परिदृश्य कानों के लिए कि
अनशन में क्या अनुभव होता है, मैं आठारह दिन का

अनशन केवल जल पीकर कर चुका था, लेकिन हा-
वार में तीन दिन में ही बीजा पड़ गया था। पीड़ा का
मुख्य कारण तो यह था कि भोजन करने की लिए पैर
नहीं थे। भूख नहीं काट रही थी, अमावां का एहसास
रहा था।

जब नींद नहीं आई तो बच्चों में नेताजी आ गए।
मैंने उन्हें भी भरकर बाते कीं। उन्हें मेरी जो बातें हुईं,
यह मिल रहा हूँ -

नेताजी : कहां ब्रैसी गुजर रही है ?

मैं : मज्जी में हूँ नेताजी ! बलिहारी इस भूख की जो
आपके दर्शन तो करा दिए।

नेताजी : भूख का पेट दर्शन है नहीं, रोटी से भरता है और
अपनी रोटी को रास्ते तो खड़े तुम्हीं ने बन्द किए
हैं, जो मुझ से इश्क लगा बैठे। मैं अभी भी
कहता हूँ कि तुम यह चक्कर खाओ और उठ करे पर
चलो, जिन पर चल कर लोग रोजी-रोटी और
नाम कमा रहे हैं।

मैं : मैं यहाँ आपसे सहमत नहीं हूँ। एक ज्ञान पर आप
ही तो कहेंगे - आदमी केवल रोटी खाकर ही नहीं
जीता, जीने के लिए उसे आदर्श और सिद्धान्त भी
चाहिए।

नेताजी : मुझे खेद है कि एक प्राध्यापक होते हुए भी तुम मेरे
कथन का ठीक अर्थ नहीं लगा सके। मेरे कथन का
सही अर्थ यह है कि जीने के लिए आदमी को केवल
रोटी ही नहीं, रोटी के साथ-साथ आदर्श और सिद्धान्त
भी आवश्यक हैं। और कि इसको आते-रिते मैंने
अपना साथ देने वालों से यह भी तो कहा था - हा
समय में तुम्हें भूख, प्यास, विपत्ति, कष्टप्रद भूख
और मौत के सिवाय और कुछ नहीं दे सकता।
मैं तुम्हारे भी कहता हूँ कि मुझे अपना को पहचान
कर ही जीना।

कारण तो यह था कि भोजन करने के लिए पैसा
नहीं था। भूख नहीं काट रही थी, आमाश्व का एहसास काट
रहा था।

जब नींद नहीं आई तो बच्चों में नेताजी आगए।
मैंने उनसे जी भरकर बातें कीं। उनसे बेसी बातें करते हुए,
यह भिन्न रहा हूँ -

नेताजी : कहां बैसी गुजर रही है ?

मैं : मुझे मैं हूँ नेताजी ! बलिहारी यह भूख की जो -
आपके दर्शन तो करा दिए।

नेताजी : भूख का पेट दर्शन है नहीं, रोटी से भरता है और
अपनी रोटी को खाते तो स्वयं तुम्हीं ने वन्द किए
हैं, जो मुझसे इश्क लगा बैठे। मैं उम्मीद में
कहता हूँ कि तुम यह चक्कर खोड़ो और उस दर पर
चलो, जितना पर-चल कर लोग रोजी-रोटी और
गम कमा रहे हैं।

मैं : मैं यहाँ आपसे सहमत नहीं हूँ। एक प्यास पर आप
ही ने तो कहा था - आदमी केवल रोटी खाकर ही नहीं
जीता, जीने के लिए उसे आदर्श और सिद्धान्त भी
चाहिए।

नेताजी : मुझे खेद है कि एक प्राध्यापक होते हुए भी तुम मेरे
कथन का ठीक उत्तर नहीं लगा सके। मेरे कथन का
सही उत्तर यह है कि जीने के लिए आदमी को केवल
रोटी ही नहीं, रोटी के साथ-साथ आदर्श और सिद्धान्त
भी आवश्यक हैं। और फिर इन्को आहिरितो मैंने
अपना साथ देने वालों से यह भी तो कहा था - इस
समय मैं तुम्हें भूख, प्यास, विपत्ति, कष्टप्रद शून्य
और मौत के सिवाय और कुछ नहीं दे सकता।
मैं तुम्हारे भी कहता हूँ कि मुझे अपनाते के पहले
तुम्हें भी सोच लेना चाहिए कि स्वाभाविक

रुप से ये उपता उन्हें भी मिल सकते हैं

मैं : नेताजी! न मुझे आप ही शिष्यावृत्त है और न देश है, और फिर आप तो प्रतीक मात्र हैं। देश के संदर्भ में मुझे जो कुछ कहना होता है, वह मैं कभी भगताहिंदू, कभी चन्द्रशेखर आजाद, कभी सुभाषचन्द्र बोस और कभी किसी अन्य क्रान्तिकारी को साधन बन कर कहता हूँ। जब भगताहिंदू ने देश के काम में कानपुर में फेंसी लगा-लगा कर आक्का के-के को, तो क्या फेंसी लगा कर पुस्तकों बेचने से नैसी शान ~~किसी भी~~ में बड़ा लग जाएगा? जब चन्द्रशेखर आजाद ने बम्बई में अपनी पीठ पर लाने लाद-लाद कर फेंके तो क्या मैं अपनी ही पुस्तकों को बन्दल लेकर गली-चल सकता हूँ? और जब आप स्वयं देश-विदेशों और वनों-पर्वतों में कई-कई दिनों तक भूत-प्रातः भटकते रहे तो क्या आपका शस्त्र शौक-परिया हो? जब आप अपने पक्ष से विचारित गलीं हुए तो किसी और को अपना शासन चोड़ने का उपदेश क्यों दे रहे हैं?

नेताजी : मैं तुम्हें पक्ष से विचारित करने यहाँ गलीं काया हूँ, मैं तो यह कहने आया हूँ कि -

इतिहास-इश्क है, रोता है क्या?

आगे-आगे देवना, होता है क्या?

हम लोगों में ये बातें चल ही रही थीं कि तीव्र का मोका मोका आया और उठते कहा -

“मुजानात का समय समाप्त हो गया है।”

- और नेताजी से मेरा विच्छेद हो गया। उनके जाते ही मेरे सामने रोटियाँ आ गईं - ढेर सारी रोटियाँ - थालों में सजी हुई रोटियाँ और वृक्षों से लटकती हुई रोटियाँ। उनके साथ मैं जी भरकर आँखें-मिचौनी खोलता रहा - तब तक

जब तक कि नीचे की - चाय वाली दुकान के धोकरने दरवाजा नहीं खटखटाया। मैं भड़पड़ा कर उठा तो अपने पूछा -

“बाबूजी, आपकी लिए चाय आऊँ?”

“मैं चाय नहीं पीता।” मेरे मुँह से निकल गया।

“आपने तीन दिन पहले तो हमारी दुकान पर चाय पी ली।” अपने तर्क दिया। मैं उसे बौझ समझाता कि मैंने तीन दिन से चाय क्यों नहीं पी थी। कुछ कह कर उसे टाल दिया।

सोमवार ने अपने आगमन की सुबह-सूचना मुझे दे दी थी। किसी प्रकार दोपहर तक का समय निकाला गया। प्रार्थना होने से पहले ही एक विद्यालय में पहुँच गया। प्राचार्यजी से मिल कर उन्हें अपनी पुस्तकें दिखाईं। उन्होंने बहुत सज्जनता का परिचय दिया। बोले -

“हम अपने पुस्तकालय के लिए भी आपकी पुस्तकों का एक सैट खरीदेंगे और मुझे विश्वास है कि हमारे विद्यार्थी और अध्यापक गण भी आपकी पुस्तकें अवश्य खरीदेंगे। हमारे आप ही प्रार्थना है कि आप हमारे बच्चों को अपनी राष्ट्रीय कविताएँ सुना दें, जिससे राष्ट्रीयता के कुछ संस्कार उनके पैदा हो सकें।”

यह प्रस्ताव मेरी कठिन परीक्षा के रूप में उपस्थित हुआ। बड़ी कठिन परीक्षा थी। प्राचार्यजी को क्या मामूले गत तीन दिनों से मुझे अन्तर्गत दर्शन नहीं हुए। मैं अपनी स्थिति बता कर उनकी सहानुभूति का आश्वासन नहीं लेना चाहता था। उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। उन्होंने प्रार्थना-सभा के पञ्चांग खुले। पञ्चांग पर ही बच्चों को दिखा दिया। मुझे बिना माइक के सहारे खुले मैदान में बहुत ऊँचे स्वर से कविता-पाठ करना पड़ा, जिससे दूर सीधे बैठे हुए बच्चों को भी सुनाई दे सके। इस परीक्षा में मैं बहुत ही खरा उतरा। शहीदों पर लिखी गई कविताएँ सुनते से सभी को बहुत आनन्द आया। एक बार रक्त लगे जाने पर लोग पीछे नहीं खड़े। मुझे काफी आशीर्वाद कविताएँ

मुनाती पत्नी। मेरे कविता-पाठकी एक विशेषता हमेशा रही है
- कि शरारती बच्चों के विद्यालयों में भी मुझे अनुशासनहीनता
को कभी सामना नहीं करना पड़ा। यही बात कवि-सम्मेलनों
में भी हुई है। मुझे स्मरण नहीं कि कविता-पाठ का
समय कभी मुझे हट किया गया हो। बाद में तो मैंने
कवि-सम्मेलनों में जाना ही छोड़ दिया और शान्तिकारी -
आचलन पर ध्यान देना प्रारम्भ कर दिया। तीन-तीन
घण्टा-घण्टे तक ओजस्वी स्वर में धारा-प्रवाह भाषण
देते हुए न कभी मैं थका हूँ और न कभी मेरे श्रोता गण।
एक आनुभव का उल्लेख कर रहा हूँ -

मध्य प्रदेश के बैतूल नगर में मेरे भाषण का आयोजन
किया गया। मुझे पहले प्रसिद्ध मेमो आर्सेल भारतीय नेता
श्री राजनारायण ^(अबुलकसीम) को भाषण हुआ। आदर्शों के केन्द्र के भी मे
लगभग डेढ़ घण्टे तक वे बोले। उनके पश्चात् मेरा भाषण हुआ
- गया। मैं भयभीत था कि इतने बड़े नेता के पश्चात् मुझे
कौन सुनेगा। मुझे विषय दिया गया था - "भारतियों-स्वधीनता-
संग्राम में शान्तिकारियों की भूमिका" भाषण एक ~~हॉल~~ हॉल में
आयोजित था। मैंने बोलीना प्रारम्भ किया। अभी मुझे
बोल्ते हुए १५ मिनट ही बीते थे कि हॉल की बिजली
- चली गई। माइक भी बंद हो गया। मैं अँधेरे स्वर में
लोगों से पूछा -

"यदि आप लोग पसन्द करें तो बिजली आने तक मैं
अँधेरे में ही बोलता जाऊँ?"

लोगों ने अपनी सहमति प्रकट की और मैंने भाषण देना जारी
रखा। मंच पर श्री राजनारायण और कच्चाट्ट महोदय ने काँट
तामने (ब्याखचं भरा हुआ) तमा-भवन। शान्तिकारियों के कल्लिदाओं
के उदाहरण और अपनी कविताओं के उद्धरणों का समावेश करते
मैं विषय का विवेचन करता रहा। पूरे एक घण्टे तक मैं
अँधेरे में बोलता रहा। इन्कीय न तो बिजली आई, न कोई
मालटेन या मोमकण्डियाँ लाया। एक घण्टे तक लोमड़े के

को कभी सामना नहीं करना पड़ा। यही बात कवि-सम्मेलनों में भी हुई है। मुझे स्मरण नहीं कि कविता-पाठ करते समय कभी मुझे हट किया गया हो। बाद में तो मैंने कवि-सम्मेलनों में जाना ही बंद कर दिया और प्रान्तीय - आन्दोलन पर ध्यान देना प्रारम्भ कर दिया। तीन-तीन घण्टा-घण्टा पण्डे तक ओजस्वी स्वर में चारा-प्रकार का ध्वनि देते हुए न कभी मैं भका हूँ और न कभी मेरे श्रोता गण। एक अनुभव का उल्लेख कर रहा हूँ -

मध्य प्रदेश के बैतूल नगर में मेरे भाषण का आयोजन किया गया। मुझे पहले जसिद मेरा कासिल भारतीय नेता श्री राजनारायण ^(अब लगी है) का भाषण हुआ। आकर्षण के केन्द्र के होते हुए लगभग डेढ़ घण्टे तक वे बोले। उनके पश्चात् मेरा भाषण हुआ। मैं भयभीत था कि इतने बड़े नेता के पश्चात् मुझे कौन सुनेगा। मुझे विषय दिया गया था - "भारतीय स्वधीनता संग्राम में प्रान्तीयकारियों की भूमिका" भाषण एक ~~हॉल~~ हॉल में आयोजित था। मैंने बोलना प्रारम्भ किया। अभी मुझे बोलते हुए दस मिनट ही बीते थे कि हॉल की बिजली चली गई। माइक भी बंद हो गया। मैं अँधेरे स्वर में लोगों से पूछा -

"यदि आप लोग पान्थ करें तो बिजली आने तक मैं अँधेरे में ही बोलता जाऊँ?"

लोगों ने अपनी सहमति प्रकट की और मैंने भाषण देना जारी रखा। मंच पर श्री राजनारायण और कच्चाटन महोदय भी खड़े हुए। (बचावच भरा हुआ हवा-ध्वज) प्रान्तीयकारियों के दलितों के उदाहरण और अपनी कविताओं के उद्धरणों का समावेश करते मैं विषय का विवेचन करता रहा। पूरे एक घण्टे तक मैं अँधेरे में बोलता रहा। इन्दीय न तो बिजली आई, न कोई आलटन या मोमबत्तियाँ लाया। एक घण्टे तक बोलने के पश्चात् बिजली आई। बिजली आने के पश्चात् भी मुझे

एक घण्टे तक कार्रवाई करना पड़ा। कार्यक्रम की समाप्ति पर
मैंने लोगों से पूछा -

“क्या बात है कि अंदर से भी हॉल में है एक भी व्यापारी
कम नहीं हुआ और मेरे माधन देवी-य आप लोगों में है किसी
ने भी न तो बिजली बिल करने को प्रयत्न किया और न
एक मोमबत्ती भी जला कर रही?”

इस प्रश्न को जो उत्तर मिला, वह था -

“हम लोगों में है कोई भी आपके माधन को एक शब्द
को भी सुने बिना धाड़ना नहीं चाहते हैं। आपके उदाहरण
और आपके उदाहरण विशेष रूप से हमें बौद्ध धर्म।”

मैंने सोचा, यह विशेषता मेरी अपनी नहीं, उन
आनिवारियों की है, जिनके चरित्र लोग सुनना पसन्द
करते हैं। क्या ही अच्छा है यदि शरीरों की आनिवारियों
की जीवन-गान्धारों को आपके प्रसार किया जा सके, जिनमें
लोगों को अच्छा बनने की प्रेरणा मिले। लेकिन दुर्भाग्य
तो यह है कि उन लोगों को न तो पाठ्य-पुस्तकों में
स्थान मिला रहा है और न साहित्य में। लेकिन उन पर
लिखते नहीं हैं और प्रकाशक उन पर लिखा व्यापक नहीं है।

विषयान्तर हो गया है। शिक्षा-संस्थानों का नाम मैं प्रकरण को
पूरा कर दूँ, जब बिजलीघर में एक विद्यालय में तीन दिन तक
पूरा रहने से पश्चात् भी मुझे कविता-पाठ करना पड़ा।
कविता-पाठ अल्पतः प्रभाव डाली रहे और मैं जितनी पुस्तकें
उस विद्यालय में ले गया था, वे सभी बिक गईं। उस समय मेरे
पाठ जो पैसे आए, उन्हें पाकर मैं सोच रहा था कि मैं
फोर्ड, टाटा या बिड़ला से कम नहीं हूँ।

अपने पाठकों में मैं क्षमा चाहता हूँ कि मैंने अपनी बातों
में उम्मा काफ़ी समय ले लिया है। मैं उन्हें विश्वास दिलाता
हूँ कि ऐसा मैंने प्रयोजन नहीं किया। न तो आत्म-विकास
ही मेरा उद्देश्य है और न सहायता या सहानुभूति का अर्जन।

लोगों की नज़रों में दयनीय हो जाने की आपेक्षा मूल्य बंधन
होती है। इस समय तो मेरा उद्देश्य यही है कि लोग यह जान
सकें कि राष्ट्रीय-सेवा के लिए कितना मूल्य चुकाना पड़ता है।
सेवा-साधना के साथ केवल जोड़ा समय और लूंगा।

आत्मा बचा ली, कालेवर बेच दिया

लोगों का यह अनुमान होगा कि जब प्राचीनकारियों पर
मेरे महानाट्य, खण्ड-नाट्य और ~~का~~ दर्जनों पुस्तकें बाज़ार में हैं
तो मेरे पास काली पैसा होगा। उनका यह भ्रमना स्वाभाविक ही
है और उनका यह चिन्तन सत्य भी होता, यदि मेरे ह्यान
पर किसी व्यवसायी ने यह काम करने हाथ में लिया होता।
अब मैं प्रतिवर्ष कुच्छ नई कृतियाँ हिन्दी-साहित्य में दे रहा हूँ, तो
इसका मतलब यह है कि मैं अभी तक लेखक बना हुआ
हूँ। मैं तो अपने पाठकों से यही अनुपेक्षा करूँगा कि
वे मुझे बढ़-बुझा देते रहें। कि मैं जीवन भर निर्धन बना
रहूँ। यदि मैं जीवन भर निर्धन बना रहा तो मैं जीवन भर
लेखक बना रहूँगा। इसके विपरीत, यदि पुस्तकों के माध्यम से
मेरे पास पैसा एकत्र होने लगेगा, तो मैं लेखक न रह कर
पुस्तक-विक्रेता या प्रकाशक बन जाऊँगा।

मैं उन प्रकाशकों का आभारी हूँ, जिनोंने राष्ट्रीय विषयों
पर लिखी गई मेरी पुस्तकें प्रकाशित करने से स्पष्ट रूप से
निराशा हो मना कर दिया। मैं उन पुस्तक-विक्रेताओं का
भी आभारी हूँ, जिनोंने पुस्तकों के रूप में मेरी गाढ़ें पुस्तकी
कमाई के लगभग बीस हजार रुपए हजम करने मुझे गाँव
लेखक बना रहने के लिए विवश कर दिया है। सभी
पुस्तकें बेच कर एक भी पैसा न देने, दर्जनों पत्रों में से
एक का भी उत्तर न देने और भूखे-पैके भोजन देने से
उनके हृदयकण्डों को मैं प्रणाम करता हूँ।

इन लोगों की विशेष कृपा का फल मुझे एक

दीपावली-पर्व पर-चलने को मिला। बहुत १९७४ की दीपावली
भी। शहीदों को आतिथियों के पा मिलने के शौक ने
हमें इस स्थिति तक पहुँचा दिया कि दीपावली-पर्व पर हम
लोग दिए तो क्या, बूझा जानने की-स्थिति में भी
नहीं थे। बैठ कर हम लोगों ने विचार किया कि क्या
किया जाय। उधार माँगने के पक्ष में तो हम लोगों में
कोई भी नहीं था, क्योंकि आर्थिक स्वामीमान ने उधार का
अर्थ भीव ही बताया है। बिन्दू-बिन्दू पार में ऐसी कोई
वस्तु नहीं बची थी, जो काग-चला सकती। मेरी गजर
उन दर्जनों आभिनन्दन-पत्रों पर गई जो यहाँ-वहाँ लोगों
ने इत्तालिह दिए थे कि मैं उनकी हाई में मैं कुछ
अच्छ काम कर रहा हूँ। बच्चे उन्हें बेचने के पक्ष में
नहीं थे, क्योंकि वे आभिनन्दन-पत्र लोगों के स्नेह और
प्रियता के प्रतीक थे। बहुत तर्क-वितर्क करने के पश्चात्
यह निर्णय मंते ही दिया कि आभिनन्दन-पत्रों को
अन्दर के लिये या वर्षे हुए कागज निकाल लिये जायें
और फ्रेम और कांच बेच दिए जायें और जब स्थिति
हीन हो तो उन आभिनन्दन-पत्रों को दुबारा मढ़वा लिया
जाय। ऐसा ही किया गया। हम लोगों ने आभिनन्दन-पत्रों
की आत्मा क्या भी और कलेवर बेच दिए। दिवाली
पर बूझा भीजल सका और दिए भी।

मैं यह लिख रहा हूँ कि ये सब बातें लिखने के
पीछे मेरा उद्देश्य यह नहीं है कि लोग मेरी प्रति सहानुभूति
प्रदर्शित करें या मेरी आत्मिक सहायता करें। मैं समझता
हूँ कि वे लोग निश्चित रूप से दूरदर्शी हैं, जिनमें हमारे
महत्वपूर्ण विषयों पर अपनी भावना नहीं व्यक्त की

साढ़े पाँच हजार ^{रुपए} ~~रुपयों~~ की चपट

नेताजी सुभाष-चन्द्र बोस पर अभी तक कुछ मित्रावर-
में आठ पुस्तकें लिख चुका हूँ, इनमें से मुझे ख़य है कि मेरे
पाठकों को 'नेताजी-सुभाष-दर्शन' (सर्वप्रथम प्रकाशित है) शब्द
अभी तक में पढ़ाने कर चुका हूँ कि 'नेताजी-सुभाष-दर्शन'
नेताजी के कैमरा-चित्रों का एक विशाल संग्रह है। मैगज़ीन
आकार की यह संपूर्ण पुस्तक आर्ट-पेपर पर छपी है। प्रत्येक
चित्र के नीचे, उसके परिचय के साथ-साथ नेताजी का
जीवन-दर्शन भी संकेतित है। आठ पुस्तक की एक प्रति का मूल्य
एक सौ पच्चीस रुपए है। इनके प्रकाशित होने पर विचार
आया कि इनके व्यापक प्रचार के लिए विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं
में इनकी समीक्षा करवाना चाहिए। मैंने यह मातृवर्ष की
दुनी हुई बीस पत्र-पत्रिकाओं में समीक्षा के लिए नेताजी-सुभाष-दर्शन
की प्रतियाँ भेज दीं। समीक्षा के लिए पुस्तक की दो प्रतियाँ
भेजी जाती हैं। बीस पत्रिकाओं के लिए मुझे पुस्तक की
चालीस प्रतियाँ भेजनी पड़ीं। एक सौ पच्चीस रुपए के लिये
मेरे चालीस प्रतियों का मूल्य पाँच हजार २० रुपये/पाँच सौ
रुपए डाक-व्यय के भुगतान पर। आशा की कि मातृवर्ष की
दुनी हुई बीस पत्र-पत्रिकाओं में समीक्षा छपने के कारण
सारे देश में पुस्तक की चूम मच जाएगी, लेकिन सर्वप्रथम
आश्चर्य की बात आपकी बताई कि किसी एक भी पत्रिका में
पुस्तक की समीक्षा नहीं छपी। पुस्तक की न अनमोल
प्रतियाँ संपादकों के निजी पुस्तकालयों की शक्ति बन गईं।
कभी-कभी कोई संपादक उन पुस्तकों में है नेताजी को कोई
दुर्लभ चित्र अपना संप्रदान देता है अपने नाम
से छाप देता है।

नेताजी सुभाष-चन्द्र बोस पर अभी तक कुछ लिखा नहीं
—में आठ पुस्तकें लिख चुका हूँ, इनमें से मुझे ख़य है कि
पाठकों को 'नेताजी-सुभाष-दर्शन' (सर्वोपलब्ध पसन्द है) इसके
अन्तर्गत में पहल कर चुका हूँ कि 'नेताजी-सुभाष-दर्शन'
नेताजी के कैमरा-चित्रों का एक विशाल कालक्रम है। मैगज़ीन
आकार की यह संपूर्ण पुस्तक आई-सेपर पर छपी है। प्रत्येक
चित्र के नीचे, उसके परिचय से साथ-साथ नेताजी का
जीवन-दर्शन भी संकेतित है। अब पुस्तक की एक प्रति का मूल्य
एक सौ पच्चीस रुपए है। इसके प्रकाशित होने पर विचार
आया कि इसके व्यापक प्रचार के लिए विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं
में इसकी समीक्षा करवाना चाहिए। मैंने यह भावार्थ की
पुनी हुई बीस पत्र-पत्रिकाओं में समीक्षा के लिए नेताजी-सुभाष-दर्शन
की प्रतियाँ भेज दीं। समीक्षा के लिए पुस्तक की दो प्रतियाँ
भेजी जाती हैं। बीस पत्रिकाओं के लिए मुझे पुस्तक की
—पच्चीस प्रतियाँ भेजनी पड़ीं। एक सौ पच्चीस रुपए के लिए
हैं पच्चीस प्रतियों का मूल्य पाँच हजार रु० हो गया। पाँच सौ
रुपए डाक-व्यय के भग गए। आशा थी कि भावार्थ की
पुनी हुई बीस पत्र-पत्रिकाओं में समीक्षा छपने के कारण
सारे देश में पुस्तक की चूम मच जाएगी, लेकिन सर्वोपलब्ध
आश्चर्य की बात आपको बताऊँ कि किसी एक भी पत्रिका में
पुस्तक की समीक्षा नहीं छपी। पुस्तक की न अन्तर्गत
प्रतियाँ संपादकों के निजी पुस्तकालयों की शान बन गईं।
कभी-कभी कोई संपादक उन पुस्तकों में से नेताजी को कोई
कुछ लिख अथवा संस्मरण छाप देता है अपने नाम
से छाप देता है।

तीन खंडों में नेताजी की जीवनी

अपने साधनापूर्ण जीवन के द्वारा मैंने नेताजी सुभाष

मुन्हाण की शोधपूर्ण जीवनी लिखे जा रही। उसे धारण करने के लिए प्रकाशक न मिलने के कारण, मुझे स्वयं ही उसके प्रकाशन में उत्तर देना पड़ा। अर्न्त भावों के कारण उस संपूर्ण जीवनी को मैं तीन वर्षों में ~~एक~~ विभाजित रूप में प्रकाशित कर सका।

नेताजी की जीवनी के पहले भाग को नाम दिया गया 'राष्ट्रपति मुन्हाण-चन्द्र बोस'। कुछ लोग इस भाग को दोष दे रहे हैं और उन्होंने यह आपत्ति उठाई कि मुन्हाण बाबू अपने जीवन में राष्ट्रपति तो नहीं बने ही नहीं थे। इस आपत्ति का उत्तर यह है कि उन दिनों कांग्रेस के अध्यक्षों को ही राष्ट्रपति कहा जाता था। डॉ० महात्मा सीतारामैया ने अपने कांग्रेस के इतिहास में इस तथ्य का उल्लेख किया है। मुन्हाण बाबू के कारण कांग्रेस के अध्यक्ष बने थे।

'राष्ट्रपति मुन्हाण-चन्द्र बोस' पुस्तक में मुन्हाण बाबू के जन्म से लेकर उनके भारत छोड़ो तक का दृष्टान्त अंकित है। पाठकों की प्रतिक्रिया है कि पुस्तक बहुत ही रोचक है और उसमें काव्य और उपन्यास का आनन्द मिलता है।

नेताजी की जीवनी के दूसरे भाग को नाम दिया गया है - 'नेताजी मुन्हाण जर्मनी में'। इस पुस्तक में वे सभी विवरण मिलते हैं कि किस प्रकार नेताजी अफगानिस्तान से हुए जर्मनी पहुँचे और वहाँ हिटलर के सहयोग से किस प्रकार आज़ाद-हिन्द-फौज का गठन किया और किस कारण उन्होंने वे जर्मनी छोड़कर दक्षिण-पूर्व-एशिया पहुँचे। पुस्तक के सभी विवरण समीक्षात्मक, प्रामाणिक और शोधपूर्ण हैं।

मुन्हाण-जीवनी के तीसरे भाग को नामकरण 'नेताजी मुन्हाण और आज़ाद-हिन्द-संगठन' किया गया है। इस पुस्तक में सभी विवरण दुर्लभ शोध पर आधारित हैं। इसमें

में उलझना पड़ा। अर्थात् भावों के कारण उस संयुक्तजीवी
को में तीन वर्षों में ~~ए~~ विभाजित करने प्रयासित कर
लिया।

नेताजीजीजीवनी के पहले भाग को नाम दिया गया
'राष्ट्रपति सुभाषचन्द्र बोस'। कुछ लोग इस भाग को दोष कर
चक्रों को उन्होंने यह आपत्ति उठाई कि सुभाषबाबू अपने
जीवन में राष्ट्रपति तो कभी बने ही नहीं थे। इस आपत्ति
का उत्तर यह है कि उन दिनों कांग्रेस के अध्यक्ष को
ही राष्ट्रपति कहा जाता था। डॉ० पद्मसिंह तारामैया ने अपने
कांग्रेस के इतिहास में इस तथ्य का उल्लेख किया है। सुभाषबाबू
को कार कांग्रेस के अध्यक्ष बने थे।

'राष्ट्रपति सुभाषचन्द्र बोस' पुस्तक में सुभाषबाबू के
जन्म से लेकर उनके भारत छोड़ो तक का वृत्तान्त आंकित
है। पाठकों की प्रतिक्रिया है कि पुस्तक बहुत ही रोचक है
और उसमें काव्य और उपन्यास का आनन्द मिलता है।

नेताजीजीजीवनी के दूसरे भाग को नाम दिया गया है -
'नेताजी सुभाष जर्मनी में।' इस पुस्तक में वे सभी विवरण
मिलते हैं कि किस प्रकार नेताजी अजगमानिमान लेते हुए
जर्मनी पहुँचे और वहाँ ~~द्वितीय~~ द्वितीय विश्वयुद्ध के सहयोग में
किस प्रकार आजाद-हिन्द-फौज का गठन किया और
किस कारण ~~उन्होंने~~ वे जर्मनी छोड़कर दक्षिण-पूर्व-एशिया
पहुँचे। पुस्तक के सभी विवरण समीक्षात्मक, प्रासंगिक और
शोधपूर्ण हैं।

सुभाष-जीवनी के तीसरे भाग को नामकरण 'नेताजी सुभाष
और आजाद-हिन्द-संगठन' किया गया है। इस पुस्तक
में सभी विवरण दुर्लभ शोध पर आधारित हैं। इसमें
सामिलित हैं आजाद-हिन्द-फौज का पुनर्गठन, आजाद-हिन्द
संघ का गठनीकरण, आजाद-हिन्द सरकार, महिला-रेजीमेन्ट

बाल-संगीत को आज़ाद-चिन्तन-वक को स्थापना। आज-
हिन्द-मौज ने कहाँ-कहाँ छुड़क लिए, उसे सभी का
साप्ताहिक वृत्तान्त ही प्रसन्न से मिलता है। प्रसन्न के
परिशिष्ट में नेताजी द्वारा अपने जीवन में दिए गए सभी
भाषणों के शीर्षक मय महीनों के दिए गए हैं। नेताजी
के सैन्य-आदेश भी परिशिष्ट में सम्मिलित किए गए हैं।
परिशिष्ट की एक दुर्लभ शोभा है, जगमग दाँ ७५५
शहीदों की सूची।

महाकाव्य 'सुभाषचन्द्र'

थरिय भगताईतु और चन्द्रशेखर आज़ाद पर महाकाव्य-
लेखन के पश्चात् नेताजी सुभाषचन्द्र को सभी मेरी ओर की-
ने 'सुभाषचन्द्र' नाम के महाकाव्य की रचना की। कुच्छ
समीक्षकों ने तो 'सुभाषचन्द्र' रचना को महाकाव्य के रूप
में स्वीकार किया है, लेकिन कुच्छ ने इसे महाकाव्य
नहीं माना है। 'सुभाषचन्द्र' का आकार में बहुत बड़ी
है और उसमें सिलसिलेवार जीवनी के आभाव में ही कुच्छ
समीक्षकों ने उसे महाकाव्य स्वीकार नहीं किया है। ई
प्रसन्न में महाकाव्य के पुराने और नए लक्षणों का
सम्मिश्रण है। यद्यपि उसमें चरित्रनायक की संपूर्ण जीवन-
परतारें सम्मिलित हैं, लेकिन वे काव्य-प्रमाणपूर्ण नों की
आकार विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत दी गई हैं। पाठकों
को यह विचार बहुत ही अच्छा लगा है कि सुभाषचन्द्र
कोई के जीवन में भारतवर्ष के विभिन्न महापुरुषों के
जीवन-प्रसंग आरोपित किए गए हैं। यह आरोपण
स्वीचतात के रूप में न लेकर बहुत स्वाभाविक और
सजीव हुआ है। जिन महापुरुषों के जीवन-प्रसंग सुभाषचन्द्र
कोई के जीवन में आरोपित किए गए हैं, उनकी के नामों
पर महाकाव्य के सर्गों का नामकरण किया गया है।

ये सर्ग हैं - १. भीरु सर्ग, २. श्रीकृष्ण सर्ग, ३. वीर अर्जुन
सर्ग, ४. भावगत महाकीर्ति सर्ग, ५. तन्मागत भौतमबुद्ध सर्ग,
६. महाराजा प्रताप सर्ग, ७. धर्मपति शिवाजी सर्ग, ८.
शुद्ध भौतिकीति सर्ग और ९. सुभाष सर्ग।

मेरी कृति 'सुभाषचन्द्र' महाकाव्य है या नहीं, इस विषय
पर डॉ० शिवशंकर शर्मा की समीक्षा का एक अंश यहाँ उद्धृत
कर रहा हूँ -

“हिन्दी की सत्त्वन्द्य कृति न, विशेषतः कामायनी न
परंपराओं से मुक्ति पाने का मार्ग प्रशस्त किया है। 'सुभाषचन्द्र'
को साकेत, कामायनी और उर्वशी महाकाव्यों की -
पंक्ति में रख कर देखने से महाकाव्य की सत्त्वन्द्य
विकास-यात्रा और 'सुभाषचन्द्र' के महाकाव्य औचित्य
पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। साकेत की वस्तु, कामायनी
के पात्र और उर्वशी की ध्वन्य-शैली ने महाकाव्य
की सीमाओं का विस्तार किया है। यदि उक्त कृतियाँ
महाकाव्य प्रमाणित हुई हैं, तो 'सुभाषचन्द्र' पर
उदारतापूर्वक विचार करने के द्वारा बन्द नहीं होना
चाहिए। विशेषतः इस कृति को कामायनी के संदर्भ में
आपकी अच्छी तरह परखा जा सकता है। परंपराओं
से मुक्ति को प्रथम साहस कामायनी ने ही किया है।
मानवीय सूक्ष्म-कृतियों के आधार पर लोगों की
बुद्धि कर 'मन' 'हृदय' और 'बुद्धि' जैसे
सूक्ष्म प्रतीकों के माध्यम से व्यापक महाकाव्योचित
स्वरूप प्रदान कर देने का हिन्दी-काव्य-जगत ने एक
आग्निवरी कदम आ। इन सूक्ष्म तन्तुओं से
प्रताप की मानव-जीवन के विकास को तान-बाना
बहुत सफलतापूर्वक बुन सके हैं। ठीक यही

कार्य काव्य श्री सरल'ने 'सुभाषचन्द्र' में किया है।
 कामायनी में पौराणिक कला में नाम मात्र की
 कला ली गई है। 'सुभाषचन्द्र' में उनके जीवन के
 कतिपय अंशों का समावेश किया गया है। कामायनी
 में तीन प्रतीकात्मक पात्र हैं। 'सुभाषचन्द्र' में
 मुख्यतः एक ~~जीवन~~ जीवंत पात्र है। कामायनी में
 मुख्य मानवीय दृष्टियों के आधार पर लोगों का
 नामकरण है, 'सुभाषचन्द्र' में इतिहास की महान
 विपुलियों के नाम पर ~~वैसी ली बात को अपने~~
~~चिन्तन के आधार पर इतना व्यापक विवेक प्रदान~~
~~कर देने~~ लोगों का नामकरण हुआ है। वैसी-ली
 बात को अपने चिन्तन के आधार पर इतना व्यापक
 विवेक प्रदान कर देने का जो कार्य कामायनी में
 हुआ है, वैसा ही कार्य 'सुभाषचन्द्र' में केवल एक पात्र
 को लेकर महाकाव्योचित कला का निर्माण करने में
 हुआ है। अपनी इस विचित्र दृष्टि के 'सुभाषचन्द्र'
 का महाकाव्य की विचित्र शक्ति पर स्वागत होना चाहिए।

'सुभाषचन्द्र' की समीक्षा के इस अंश के उद्धरण के
 पश्चात् निम्न-प्रकाशित ध्वन्य में लिखे गए इस महाकाव्य
 को श्रीराम सर्ग, भी में इस उद्धरण से यहाँ उद्धृत
 कर रहा हूँ कि पाठक स्वयं ही देख सकें कि चरित्र नामक
 सुभाषचन्द्र को ही के जीवन में 'राज-चरित्र-मानस' के
 नामक श्रीराम की जीवन-लीलाओं का आरोपण
 विनियोजन कर में नहीं किया गया है -

उद्वेलित सागर से उठे बड़कागने ज्यों
राशमें चौर उठे वज्र जैसे तमिस्र का
जन्मे ने भारत की भूमि में सुभाष तुम
घोर आंधकार में अनन्त ज्योति-पुंज-से ।
जन्म था तुम्हारा ?

या कहें कि क्रान्ति जन्मी थी
जैसे साकार हो उठा हो शौर्य हिन्द का
जन्मे तुम रोते -
जैसे मिला नया जन्म हमें
पौरुष पराक्रम का अर्ज मिला देश को ।

मातृ-समता ने
पितृ-गर्व ने पुकारा तुम्हें
कह कर 'सुभाष'
इस सुललित प्रिय नाम से
किन्तु हमें -
देशवासियों के लिए मिले तुम
शांति
शील
और सौन्दर्य-युक्त राम-से ।
देखते ही देखते हमारे
कर दियाए तब ~~कर~~
कर्म जो कि जेता में किए श्रीराम ने
हुका विश्वास हमें
राम भी भी हुए थे कभी
राम-रूप आए तुम इस युग के सामने ।

राम तो गए थे वन
 मान पितु-आत्मा को
 तुमने चार-पास घेड़ा मौ के आख्यान पर
 वन्दनीया मातृ-भूमि बन्दान के सहे रास
 तुमको न हुआ सख्य
 निकल गए तीर-से ।
 राम जब चले तो सहृदयिणी भी साथ-वली
 और दिया साथ मातृ लक्ष्मण-से तीर न
 तुम जा-चले
 तो चले तुम ही अकेले फिर एक
 वनों
 पर्वतों को
 और सागरों को लाँचते ।

चौदह वर्षों की अनाथि लाँच
 राम आए पर
 आधीपति बन के प्रिय अयोध्या के राज्य के
 भागे इहलौकिक सुख
 भागते नरेश हैं जो
 प्राप्त हुए
 महल
 कोष

चरण और सेवकादि ।
 किन्तु तुम्हें प्राप्त हुआ केवल निर्वसन ही
 युक्त भी तो मिली नहीं तुम्हें मातृभूमि की
 बँहने के लिए मित्रा बँहों का आसन ही
 तुम पर दिखाया स्नेह
 सुख और व्यास न ।

तुम थे हमारे राम
 इस युग के राम तुम
 ताज नहीं
 तुम्हें तो अभीष्ट था स्वराज्य ही
 खोजते ही रहे देशवासियों के लिए मुक्ति
 खोजते ही रहे तुम किरीट मातृ-भूमि का ।
 वामन - है तीन डग तुमने जो चरों की
 गाप लिए पहले में भारत - अफगान देश
 चारा दूसरा जो डग
 गाप डाला यूरोप को
 तीसरे में चौदें डाला पूर्व-एशिया का वक्ष ।

तुमने समस्त आत्म-बल है फुलारा जब
 आजादी दूंगा तुम्हें
 मुझको तुम खून से
 भारत का खून लौल-लौल लहराने लगा
 खूनी दरिन्दों के साथ पून लौलने ।
 तुम थे सुभाष-चन्द्र
 राम-चन्द्र इस युग के
 निष्कलंक और पूर्ण-चन्द्र देशभक्ती के
 देव-देव तुम्हें
 उठा चार जन-सागर में
 उन्मादी चार उठा भारत के रक्त में ।

तुमने उठाई भुजा
 गारा बुलन्द किया -
 दिल्ली - चलो है कीर !
 चलो आज दिल्ली को

सुनो वायु - मंडल की चड़कनों का घोष आज
आज गर्म धून ने फूकारा गर्म धून को ।
भारत की कोटि-कोटि बाँहें समुद्रक हैं
बढ़ी !

दौड़ पड़ी !

उन बाँहों में समाओ रे !

मर्दिन कर शत्रु-सैन्य

मातृभूमि मुक्त करो

दिल्ली पर विजयी तिरंगा फहराओ रे !

धुन कर तुम्हारा आह्वान

वक्ता धून उठे

लाव-लाव वीर हुंकार उठे एक साथ -

दिल्ली-धलेंगे हम !

दिल्ली-धलेंगे हम !

धून को उजागर करेंगे हम धून से ।

आज हमें नेता की

आन देश-भारत की

आन पर खिलेंगे

शान से लड़ेंगे हम

ऐसे लड़ेंगे

इतिहास भूल पाए नहीं

शत्रुओं की व्यथितों पर गर्व से-बढ़ेंगे हम ।

लक्ष-लक्ष कणों में गर्जना के घोष उठे

लक्ष-लक्ष हानों में बन्दूकें आग लीं

कौम पर लुहाने जितनी को लक्ष कदम बढ़े

तुम जैसे नेता के एक आह्वान पर

एक आह्वान धूम

लौ-लौ हनुमान उठे

लौ-लौ सुग्रीव-जामवंत लड़े लंगर

लौ-लौ हवीन अंगदादि सक्रोध उठे

माधव और वीरों की हाँवा अपार थी ।

तुम थे हमारे राम -
 इस युग के राम तुम
 तुमने सहस्रों कहिल्याएँ तार दीं
 विधिमान और आत्मनिमान दिया उन्हें
 जो भी निरीह
 भयभीत
 आत्म-हीना-सी /
 दूर मातृभूमि से
 विदेशों के अन्वन् में
 युद्ध की विभीषिकाएँ जहाँ अपलपाती थीं
 वहीं
 निर्वसिता कहिल्याएँ भारत की
 जीवन में कटी-कटी जीवन बिताती थीं ।

रहतीं जो जड़वत्
 शिलावत्
 आनिष्टा-सी
 उन्हीं कुल-शीला कुल-वधुओं किशोरियों में
 आत्म-सम्मान -
 आत्म-गौरव की ज्योति जगा
 तुमने उद्विष्ट राष्ट्र-भावनाएँ फूँक दीं ।
 बंग के सपूत !
 शाही-साधक - आराध्यक तुम
 तुमने न-परणों में दुष्टा मातृ-रूप को
 ओजमयी वाणी के वारस-संप्रेषण में
 तुमने प्रतिष्ठीत की
 उनमें राष्ट्र-चेतना ।

तुम थे हमारे राम
 इस युग के राम तुम

शत्रु का विनाश - सर्वनाश का अभीष्ट तुम्हें
 इसीलिए सुख-पूर्व
 सिंधु-तीर बैठ कर
 शक्ति की उपासना की तुमने बहु-यत्न है ।
 सुन कर आख्यान
 आर्जुन-वीणा की तान सुन
 पाग उठीं लोई हुई माँती की रानियाँ
 लगीं सुख-भूमि में वे विकृत-ती कोंधान
 मन्थन उठीं विनायक
 पूर प्रलय-ज्वाला-सी ।

लपटें जा उठीं
 लहराने लगीं - चारों ओर
 सुख के-धुँए हैं चरा-आसमान भर गए
 गरज उठे भारत के वीर रण-काँकुरे
 लगीं हुंकार में प्रचण्ड रण-चाण्डियाँ ।
 कैला अनोखा उत्थान राष्ट्र-भावना का
 कैला पुण्यवान आख्यान मातृ-भक्ति का
 कैला भा विद्यान वह आत्म-बालिदान का
 कैसी कत पूजा
 कैला अगुष्ठान शक्ति का ।

आगे की पीढ़ियाँ लिखेंगी इतिहास कत
 आगे की पीढ़ियाँ पढ़ेंगी वे गाथाएँ
 वस्तु पर समय के
 जाते भारत के वीरों में
 बालिदानी भाषा में
 लिख डालीं सुन है ।

भारत को गाढ़ा
 गर्म
 आलू लहू गिरा जहाँ
 छोर-छोर वे सब अब तिर-चाम होंगे
 माँ की सपूत !
 मुक्ति-दूत !
 ओ सुभाषचन्द्र !
 रस युग के लिए तुम अजेय राम होंगे ।

महाकाव्य 'जय-सुभाष'

एक ही चरित्रनायक पर दो महाकाव्य लिखने की आवश्यकता
 इस कारण महसूस हुई, क्योंकि बहुत से काव्य-रासिकों के
 इस आशय के मत मुझे मिले कि उन्हें सिन्धु-तुलना
 महाकाव्य 'सुभाषचन्द्र' पढ़ कर तृप्ति नहीं हुई। तुलना-
 चर्चा में रस की खोज करने वाले पाठकों की रस-सिखा
 शान्त करने के लिए ही मुझे 'जय-सुभाष' महाकाव्य
 की रचना करनी पड़ी।

'जय-सुभाष' महाकाव्य की श्रुतिका कर्नल मुखर्जी
 दिग्गज ने लिखी है जो एक सैनिक होने के साथ-साथ
 बहुत अच्छे शायर भी हैं। उन्होंने 'जय-सुभाष' महाकाव्य
 को ~~सि~~ नेताजी सुभाष की कीर्ति का बहुत अच्छा स्मारक
 और आजाद-हिन्द-फौज का ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप
 में माना है। इसका काव्य-पद्य का सुलभांकाश तो
 रस-शाली पाठक ही कर सकेंगे।

काल-जयी सुभाष

'काल-जयी सुभाष' एक विशाल गद्य-कृति है।

साहित्यिक रूप में यह पूर्व-प्रकाशित चार गद्य-कृतियों का एकीकृत संकलन है। ये कृतियाँ हैं - १. राष्ट्रपति सुभाषचन्द्र बोस, २. नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, ३. नेताजी सुभाष और आज़ाद-हिन्द-संगठन, और ४. नेताजी के सपनों का भारत।

'नामजयी-सुभाष' पुस्तक शोधकर्तों के लिए बहुत उपयोगी है। इस पुस्तक को आधार बना कर विभिन्न विश्व-विद्यालयों के शोधकर्ता, हिन्दी, इतिहास, राजनीति-विज्ञान और-सैन्य-विज्ञान विषयों के अन्तर्गत शोध-कार्य कर रहे हैं। उनके पत्रों से ही मुझे इस तथ्य की जानकारी मिली है।

क्रान्ति-कथारें

'क्रान्ति-कथारें' मेरी सर्वाधिक प्रसन्नता के साथ शोधपूर्ण कृति है। प्रसृत पुस्तक की प्रसंगीका संकलन करने में मुझे सत्ताईस वर्षों का समय लगा है और इसके जीवन में मैंने इसे चार वर्षों में दो बार पढ़ने का प्रयत्न किया है, हमीने इस कृति को भारतीय क्रान्तिकारियों की रणनीति को पीढ़ियाँ कह कर पुकारा है। इस पुस्तक के ५ तथ्य-संकलन, जीवन, प्रकाशन, प्रकाशन के लिए अर्थसंग्रह, प्रकाशन के निम्न के लिए मुझे इतनी अधिक दौड़-धूप पड़ी इतना अधिक प्रयत्न करना पड़ा कि मेरा शरीर उस प्रयत्न को सहन नहीं कर सका और मुझे विरह-रुग्णता का दौरा पड़ गया। मुझे बहुत संतोष है कि हृदयभात मुझे उस समय हुआ, जब क्रान्तिक प्रकाशित हो चुकी थी। यदि उसके पूर्व हुआ होता तो मेरी कोई वयो की साधना सम्भव हो जाती।

मेने तब हृदयभात को सहन करने में भी कोशिश की स्थापना की है। आज लोगों की जानकारी के लिए यहाँ संक्षेप विवरण प्रस्तुत कर रहा हूँ।

मेरी स्थिति एक मजदूर जैसी रही है जो यदि दिन में मजदूरी कर लेगा तो उसे उस दिन का भोजन मिल जाएगा। मैं भी अनेक ही प्रतिदिन अपनी पुस्तकों लेकर कहों-न-कहों

निबलता रहा हूँ और फुलकों के विक्रय से जो कुछ बचोरा रहा हूँ,
आपने अपने परिवार और साहूकार को पेट भरता रहा हूँ।

२३ नवम्बर १९८६ को मैं देवास जिले के सौनवाण्य
नगर पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही मैंने अनुभव किया कि मेरे सिर में
तीव्र दर्द प्रारम्भ हो गया है। मुझे यह समझते देर नहीं लगी कि
यह दृष्ट्यापात है। वह स्नान करेता था और शलाघ की सुविधाएँ
प्राप्त न होने के कारण मैंने उज्जैन लौटने का निश्चय लिया।
मुझे उज्जैन जाने वाली एक बस भी मिल गई। लगभग
~~सब~~ किन्ती दण्ड का सामान मुझे साथ ही उठाकर बस में रखना
पड़ा। बस बसबस भरी हुई थी। कई घण्टे तक दृष्ट्यापात को
पीड़ा सहते हुए मैंने बड़े-बड़े बस की यात्रा की। उज्जैन
पहुँचने पर मुझे शीघ्र ही अस्पताल भेज दिया गया। डॉक्टरों
ने बहुत प्रशंसा की। मेरी जीवन-रक्षा होगई। लगभग एक महीने
तक मुझे अस्पताल में रहना पड़ा। जब मैं अस्पताल के बिल
पर पड़ा हुआ जीवन की मृत्यु की संभावनाओं की चिन्ता करना शुरू
था तो मैंने मृत्यु के मार्ग एक आनंदमय निमित्त को चुन लिया और
जीने की मोहलत माँगी तो मौत ने कृपावश होकर वही मोहलत मुझे
दे दी। वह आनंदमय मैंने किसी शरण की शरण की एक पंक्ति लेकर
स्व-निर्दिष्ट शरण के तप में ही निवास। वह शरण प्रसूत है:—

मौत आई तु, सुबकदोश मैं होखूँ, तो-चलूँ।

बस बसबस ये लगे हैं, उन्हें प्यो हूँ, तो-चलूँ।

मह समझ लेंता तु, जीने की हवा बाकी है
देश की-चारही में, कुछ पुण्य मैं बोधूँ, तो-चलूँ।

और भी रह गया कुछ करने, करने, निजने को
तू छहर, मन की उन गोलों को मैं लौधूँ, तो-चलूँ।

जोख पाया नहीं, मैं जश्न किसी आँखों ने
बनके हमदर्द, जरा देर मैं रोखूँ, तो-चलूँ।

जिन्दगी भर ठरे सपने ही रंगे हैं मैंने
जब जरा अपने भी सपनों को सँजोखूँ, तो-चलूँ।

जुमता ही मैं जमाने से रहा हूँ हरदम

औरियाँ गा, मैं तेरी मोद में लोखूँ, तो-चलूँ। ११

गुजान के लिए मैं प्रसन्न हो आलोचना करने पर विचार करके मैंने
मुझे मोहना प्रकाश की ओर फिर काम को लिए मैंने मोहना
साँझी की, वह काम पूरा कर डाला। अब अम्बु कुल कुल नहीं माँगा।
अपनी बीमारी भी दवा में शरमा पर पड़े हुए मैंने दो कुतियों की
रचना कर डाली। नैं हैं -

मेरी साहित्य रचना - रूपन-यज्ञ

इस कुतियों में, जो मेरे हाथ में हैं, मैंने अपने जीवन की अन्तर्गत
हुए अनुभवों को लिखि बख्त किया है। मेरे जीवन में तो कनेकों
स्मरणीय घटनाएँ घटी हैं, पर मैंने उन पर कलाम नहीं चलाई है।
शहीदी की प्रामाणिकता पर जीवन-कृत में जो लड़े-मिठे अनुभव
मुझे हुए हैं, उन्हों से इस पुस्तक-लिखा में मैंने लिखा है।
यह मैंने मेरी जीवनी नहीं है, साहित्यिक जीवा-जोता है।

पंचरंगी गुजाले

इस शीर्षक में मैंने तीन ही हैं जो उच्च गुजाले अपनी सम्मान-
रक्षणार्थ में लिख डाली हैं, जो कब प्रकाशित हो सकेंगी, मैं नहीं
कह सकता। इन गुजालों के विभाजन में मैंने निम्नलिखित
शीर्षक प्रकाश किए हैं, अर्थात् यों कहिए के गुजालों के पौन्य रंग यों हैं -

१. शहीदी गुजाले
२. रक्त लावी गुजाले
३. ~~मेरी~~ ^{मेरी} ~~गुजाले~~ ^{जागी} गुजाले
४. ~~मेरी~~ ^{मेरी} ~~गुजाले~~ ^{कोर}
५. जयहिन्द-गुजाले।

हमी गुजाले राष्ट्रीय विचारधारा की हैं।

पंचरंगी गुजालों में हर रंग का एक-एक नमूना यहाँ प्रस्तुत
किया जा रहा है - (१)

ये कैत-कैत लोग, जो आए, चले गए।
जो कुछ कहा, वो करके दिखाए-चले गए।
चलेही नहीं उन्होंने जमाने की कोई शय
अपनी खुदी की दवाज लगाने-चले गए।

जब तुम लिये उन्हें, गीत जिन्दगी नई
 बाँके कपलम, वो उलझे बुझाए-चले गए।
 वो जिन्दगी से अपनी, हमेशा खिंचे रहे
 हर नाज गीत का, वो उलझे-चले गए।
 गुलपोशी मादरे-वतन की, हर तरफ से नई
 अपने सों ने हार बनार-चले गए।
 दीवार रहे, दार न दीवार न मिए
 लोकार, वो जमाने को जगाए-चले गए।

शयः वस्तु । ~~(२)~~ गुलपोशी : हारभूल-चढ़ाना ।
 बंदर रहे : जगते रहे । दार : जाँती का लहना । दीवार : दर्शन ।

(2)

हम सरफिरे सही, अगर हम हैं मरे नहीं ।
 ललकाया हमने गीत को, उलझे डरे नहीं ।
 वागी हमारा नाम है, पेशा है बग़ावत
 आँखों में लहू उतरा है, आँसू मरे नहीं ।
 जुल्मे-सिद्ध को देख, कलाय-कशी न की
 उत राह है अपने कपलम, हमने-चले नहीं ।
 हम सरफ़रोश हैं, अभीर बने-चले नहीं
 जो इच्छावाज है, वो है हमारे परे नहीं ।
 मज्जातल में जोर-शोर से लेते हैं हमारे
 मयखानों में लेते हमारे तपकर नहीं ।
 जो बाजुर-कुवत है, वो दौलत है हमारे
 रहते हैं हम कभी किसी को आसरे नहीं ।

वागी : विद्रोही । जुल्मे-सिद्ध : अन्धकार और अलगाव ।
 कलाय-कशी : लचकर निकल जाना । सरफ़रोश : मस्तक-चने वाला ।
 अभीर : कोल्हा । मज्जातल : दवाखाना । मयखाना : शराबघर ।

(३)

गर जुलम कुरा है, तो बग़ावत कुरी नहीं ।
थिकने कुरी नहीं है, थिकावत कुरी नहीं ।
गर जुलम सहोगे, तो जुलम और बढ़ेगा
जुलम की सरेकावत मरामत कुरी नहीं ।
जानेम ने आगे मुका गर, दो सर ते बढ़ेगा
सर आका मुकाने को है, जानत कुरी नहीं ।
होने को हादा है, तो हो पेथबन्दियां
जुलमों के दरजिन्नाफ़, हिफ़ाजत कुरी नहीं ।
जुलमों से जंग कीजिए, हल्का उठाए
लामकारना रितम को, ये आदत कुरी नहीं ।
गर हिम्मत-मदर है, तो मदद-खुदा भी है
ताकत हो वाजुओं में, इबादत कुरी नहीं ।

मरामत करना : थिकावत । हादा : दुपेटना । पेथबन्दी :
पहने है पहरी । इबादत : पारना ।

(४)

हिन्दोस्तान हमार है ये अपना वतन है ।
इसमें हिमालय है, इसमें गंगा-जमन है ।
सौदा बिलेर देती है हर सुकत जमी पर
होता है कुंकुमी यहाँ हर शाम गगन है ।
-पगल है हाथ भामकर, मजबूत कई यहाँ
अजलात चले-पगले, हिन्दु उनका लहन है ।
रोटी कमाता है यहाँ हर रोज पारिया
मिल-बाँट कर जाने को यहाँ नोक-चमन है ।
जो दोस्त, आकर लीए मीठा मून बहाते
कुश्मन को लीए लो यहाँ है मार कलन है ।

दे देते जान लोग यहाँ कौनो निमाने
मांजिल जो हमारी है, तो दुनिया का काम है।

मजहब : धर्म । अखलाक : संस्कार । सहन : आंगन ।
कौल : प्रतिज्ञा । अमन : शान्ति ।

(५)

अयाहिन्द, ये नाय नहीं, हिन्दोस्तान है।
अयाहिन्द ये नाय नहीं है, अपनी शान है।
अयाहिन्द, एक शब्द यह इतिहास मुकामिल
अयाहिन्द ने इतिहास पर हमको गुमान है।
अयाहिन्द ने बलदियां बरखी हैं बहुतों
अयाहिन्द, कौम को बहुत उंचा निशान है।
अयाहिन्द लखों पर रहे, सब कुछ ही रहेगा
अयाहिन्द, ये अभी भी है, ये आसमान है।
अयाहिन्द, कामयाबी है, ये हिन्द की फ़तह
अयाहिन्द, हिन्द के लिए अमनो-अमान है।
राहे-तरखी का है राज आपना ये अयाहिन्द
अयाहिन्द, हिन्द आपना ये आपना जहान है।

मुकामिल : संपूर्ण । गुमान : गर्व । बलदियाँ : अंचाहम्य ।
अमनो-अमान : शान्ति की सुरक्षा । राज : रहस्य ।
जहान : संसार ।

मेरा जीवन : मेरी सफलता

जीवन का प्रभाव कभी-कभी उसी समय जीवन को मिल जाता है
जो कभी-कभी बहुत समय पश्चात् । जीवन तो बिना का वाहक
होता है । कविता या भाषण का प्रभाव उसी समय दिना जाता है,
जो जीवन पुनर्जागरित मिले हुए बिना उसी उस समय प्रभाव
दिनाता है, जब लोग उन्हें पढ़ते हैं । कभी-कभी तो जीवन को

इस दुनिया है-जाने अपने को बाध आगे की पीढ़ियों में किसी मोलक
के विचार में सुरित, पल्लवित और फलित होते हुए दिनांक
देते हैं।

मैंने अनेक बार लिखा है, वह ज्ञानः सुखय नहीं मिलता है। मैंने
सौंदर्य लिखा है। मेरे जीवन का उद्देश्य यह रहा है कि समाज
में परिवर्तन हो और समाज समाज अच्छा बनने। लोगों के
सामने कागज-पाठ मैंने भी किया है और उतना कागज-पाठ किया है,
जैसे किताब हिन्दुत्व के किसी कवि ने नहीं किया होगा। आप
यह तक देंगे कि कवि-सम्मेलन में जाने वाले कवि हर दिन ही कहीं
न कहीं कागज-पाठ करते हैं, कि मैं उनसे कहीं कहीं कागज-पाठ
करने का सिखाता हूँ। मेरा उत्तर है कि वे सब की ही कागज-पाठ
करते हैं और उन्हें एक रात में तीन-चार कवियों से काफ़ी नहीं
सुनानी पड़ती। मैं ही हर दिन तीन-तीन-चार-पाँच विद्वानों
में कहेगा ही पाठों तक कवितारें सुनाता रहा हूँ और वही
एक पैसा पारिश्रमिक लिए बिना। मैंने अपनी राष्ट्रीय कवितारों
का प्रभाव तत्काल भी देखा है और वहाँ से-जाने जाने के बाद भी।
मुझे बताया गया है कि मेरे-जाने के पश्चात् उन कवियों
पर शब्दों की छुट्टियाँ आगित की गई हैं, उनके नाम पर
भवन और उद्यान बनाए गए हैं, उनके नाम पर छंदों का नामकरण
किया गया है और उनके आदर्शों की स्थापना के लिए समारोह
और संस्कार आयोजित की गई हैं। यदि मेरे जीवन का एकदम काका
मुझे नहीं मिलता हो क्या, समाज को तो पिला रहा है और
यही जीवन का उद्देश्य भी होता है।

साहित्य को पढ़ने का जो प्रभाव होता है, वह और अधिक स्थायी
होता है। उसमें झुंझोली बाह नहीं होती। मेरे जीवन की प्रशंसा में
आए हुए पत्रों को यदि मैं प्रकाशित करूँ, तो समाज उन्हें कसबा
की पुस्तक बनाएगा। यह जीवन में आपाह कि जहाँ मैं काम
गया नहीं हूँ, जिन लोगों ने मेरी शक्ल नहीं देखी है वे
भी मेरे साहित्य को पढ़कर मुझे पत्र लिख देते हैं। आप
अच्छा लगा सकते हैं कि इन पत्रों को पढ़कर मुझे कितना
प्रोत्साहन और संदर्भ मिलने के लिए कितना बल मिलता होगा।

शिवरीतारापण (बिलासपुर) मध्य प्रदेश में
भा.रा.रा.

आपकी पुस्तकें पढ़ कर मेरे जीवन की दिशा ही बदल गई है। मैं बिगड़ा हुआ एक काटिवासी बालक था। मुझमें कई दुर्गुण थे। आपके साहित्य की प्रेरणा से मैं बुराइयों को झुका हूँ और पढ़ाई के साथ मेहनत-सजदूसी करने अपने परिवार वालों की सहायता भी करने लगा हूँ।

आप ही प्रार्थना है कि आपकी जो नई पुस्तकें 'धरप', वे मेरे पास अवश्य भेजें।

मीराबाबा, उत्तर प्रदेश में
श्रीमती व्योमेश

मैं एक कॉलेज में ग्रंथपाल हूँ। पुस्तकालय के लिए कड़ी की गई पुस्तकों में से आपके द्वारा लिखित पुस्तकें मुझे बहुत पसन्द आई हैं। मैं आजकल विशेष रूप से आपकी पुस्तकें इकट्ठा कर रहा हूँ, जिससे मेरी होने वाली संतान पर आधिकारियों जैसी ही-देशभक्तों की कल्पना बन सके।

वीकानेर, राजस्थान में
डॉक्टर रीता

आपका आधिकारी साहित्य पढ़ा। आपके साहित्यको पढ़ कर मैंने जीवन भर सेवा की लगन का संकल्प लिया है। आप मुझे पुत्री तुल्य समझ कर निर्देश देते रहिए कि मुझे क्या करना है। इच्छा है कि कभी आपका चरण-चन्दन भी कर सकूँ।

राँची, बिहार में
श्रीमती नरिन्दर कौर

आपकी पुस्तकें प्रभावशाली प्रारम्भिक भाग पढ़ा। मेरी आँखों से उस समय तक आँसू बहते रहे, जब तक पुस्तक समाप्त नहीं होगी। आपने प्रति मेरा मातृक जन्म ले लिया।

मेरी उम्मीद है कि आपकी पुस्तकें मेरे लिए उपयोगी होंगी। मेरे दोस्तों के साथ मैं आपकी पुस्तकें भी पढ़ाऊँगी। मैं आपकी पुस्तकें भी पढ़ाऊँगी। मैं आपकी पुस्तकें भी पढ़ाऊँगी।

आपने साहित्य को पढ़ कर मैं यह सोचने के लिए मजबूर हुई हूँ
कि देश के लिए कुछ भी कुछ करना चाहिए। मेरा खून लौ लाने
लगाता है और कुछ कर गुप्ताने को जी चाहते हैं।

मेरी उम्र तीस वर्ष की है। मेरे पास इंजीनियर हूँ। मेरा एक ही
बेटा है। मैं उसे आपके साहित्य से प्रेरणा देती रहूँगी।

आप मुझे अपनी बेटी के रूप में स्वीकार करें। तो मैं अपने
आप को चान्च समझूँगी।

बीसलपुर (पीलीभीत) उत्तरप्रदेश -

कु० रिम्मी

बाबाजी, मैंने कक्षा आठ की परीक्षा दी है। मुझे पढ़ने का बहुत
शौक है। आपका मैं आपकी पुस्तक 'कान्ति-कणार' पढ़ रही हूँ।
बाबाजी, आपने कितने कष्ट भोग कर यह पुस्तक लिखी है। बाबाजी,
यदि हमारे देश में चार-व्यं भेदक इस प्रकार के हो जाय तो देश
का कलजाण हो जाए। मैंने तो अपना जीवन देश के लिए समर्पित
करने का संकल्प कर लिया है। आप अपनी पौत्री को हमेशा पत्र
लिखते रहें।

वागवहारा (रायपुर) म० प्र० -

कु० गीता परमार

बाबाजी, जिस दिन चामरसी के कठ्या-दिव्यालय में मैंने पहली
बार आपकी कविताएँ सुनी थीं, तभी से आपके प्रति प्रस्तापन मन
भर गया है। हम छात्राओं ने अपना एक क्लब बनाया है और
अब हम ऐसी-वैसी पुस्तकें न पढ़ कर राष्ट्रीय-साहित्य ही पढ़ती हैं।

आपसे प्रार्थना है कि आप मुझे अपनी पौत्री समझ कर
निरंतर पत्र लिखते रहिए।

नई दिल्ली से

नरैन्दु दयवड़ा

—मैंने ~~आपका~~ महाकाव्य 'सरदा भगताई' पढ़ा। इसे पॉन्च कर
पढ़ कर भी मेरा मन नहीं भरा है। ऐसी पुस्तक तो विश्व-विद्यालयीन
पाठ्यक्रम में सामेलित लेना चाहिए। पता नहीं हमारे पाठ्यक्रम-
निर्माता कब अपने स्वार्थ से ऊपर उठ कर हरीपुस्तकें छात्रों को हासिल

में देंगे।

गांधीनगर आगश, उत्तरप्रदेश में
शिवप्रकाश पंचोशी

आपका महान कृतित्व और हमारे देश के क्रान्तिकारी आन्दोलन का उत्प्रेरक हमारे 'क्रान्ति-कथाएँ' देखने को मिला। इस लिए-समरणीय कार्य को लिए न केवल हम बल्कि हमारी आनेवाली पीढ़ियाँ भी आपकी शुक्रगुजार रहेंगी। आप सौभाग्यवाली हैं कि आपने हाथों से इस महान कार्य सम्पन्न हुआ। इसमें आपकी आयदाय बिक गई। कोई बात नहीं। आपको ऐसी आयदाय मिल गई है जिसकी तुलना में कोई भी बिड़ले भिकारी सचर आते हैं। आपका पास क्रान्तिकारी प्रतिभुति भी आयदाय है, जिसमें बड़िया आयदाय अभी चरती पा आयदाय भी नहीं हुई है। 'जीवन की हिं चरणत्'।

एक बार पुनः आपका इस महान कृतित्व के प्रति प्रत्यक्ष नत होत हुए, आपका - शिवप्रकाश पंचोशी

आर० ल० पुरम नई दिल्ली में
डॉ० जयन्ती प्रसाद मिश्र

'क्रान्ति-कथाएँ', कृति लिए कर आपने इतना बड़ा काम कर डाला है जो कई संस्कार मिल कर नहीं कर सकती थीं। वास्तविक बात तो यह है कि प्राण-दान तक की स्थिति में आकर आप अपना काम कर डालते हैं। पारिवारिक तथा अन्य हीमाओं की चिन्ता न करके आप इतनी उंची धरणाँ लगा जाते हैं कि आपको यह भी च्छाग नहीं रहता कि आप गिरने कहीं।

इन्ना हावाद है -
डॉ० कृष्णचन्द्र गोड्ड

क्रान्ति-कथाएँ, मेरा लेखक श्रीकृष्ण सरल की कृति देखने को मिली। मैं लेखक के चरणों में अपना महतक भुकाता हूँ।

हजारों निजायुद्दीन (नहिदिनी) हैं
महान् क्रांतिकारी सम्मन्वय गुप्त

आपने 'क्रांतिकारों' मिलकर हमारी सारी बिरादरी (विश्वव्यापी) के
साथ बड़ा उपकार किया है। आपका अद्यपय समय सरहनीय है।
यह सच्चाई नीति है। कृप्य बनाए रखें।

अलीगढ़, उत्तर प्रदेश में
नेताजी सुभाष का सम्मानित
शेख-हिन्दू सरदार-जंग कैबिनेट मन्त्रालाल

आपने आज़ाद-हिन्द फौज और नेताजी पर ~~मिलकर~~ जो कुछ
मिला है, उसने हम सबको अमर कर दिया है, वरना यह शक्ति
प्राप्ति की परती में ही समा जाता। आपकी बहुत बड़ी देन
है - हम सब के लिए और देश के लिए।

शिवपुरी, मध्य प्रदेश में
नेताजी सुभाष का सम्मानित
कर्नल जी. ए. स. डिक्लेन

सरलजी का जीवन ऐतिहासिक दस्तावेज से कम नहीं है। वह
नेताजी सुभाष और आज़ाद-हिन्द-फौज को सच्ची सारक सिद्ध होगा।

गजिआबाद, उत्तर प्रदेश में
महान् क्रांतिकारी
दुर्गा देवी चौध (दुर्गा भारती)

नेत्र-प्रेम की चामी गई है। एक आँख से एक कोने में भोजन दिखाई देता
है। उसी कोने में पुस्तक सटाकर पूरी पढ़ जाती है। सुभाषबाबू पर
आपने जो कुछ मिला है, वह नितान्त अनिवार्य का। मैं आप को
देश के स्वतंत्रता संग्राम का निर्भीक सेनानी, शरीरवाक और जाग्रत प्रहरी
मानती हूँ —

“जाग्रत-प्रहरी”

सरलजी, आप अपनी इस चुनौती कायम रखें और शरीरवाक
आनन्द लेते और देते रहें।

राठ, हमीरपुर (उत्तरप्रदेश) हैं
महान क्रांतिकारी
स्व० पंडित परमानन्द

श्री सरलजी जीवित रही हैं। उनकी साहित्य-नायकता
तपस्या-कौटि की साधना है।

भाँसी, उत्तरप्रदेश हैं
महान क्रांतिकारी
स्व० डॉ० भगवानदास झा और

सरलजी ने क्रांति-साहित्य को में उतना ही आदर करते हैं, जितना
रामायण और गीता को।

भाँसी, उत्तरप्रदेश हैं
महान क्रांतिकारी
सदाशिवराव मलकापुरकर

देश के संकट के समय सरल-साहित्य के वम बहुत काम आएंगे।

हरदोई, उत्तरप्रदेश हैं
महान क्रांतिकारी
अयदेव कापुर

सरलजी के चार महाकाव्य क्रांति के चार काम हैं। हम उनके
आभारी हैं कि उन्होंने हमें यह तीर्थ-यात्रा सुलभ कराई है।

देहरादून, उत्तरप्रदेश हैं
महान क्रांतिकारी
वीरेन्द्रनाथ पाण्डेय

सरलजी ने देश की चरती का दर्ज उतारकर हमारी पीढ़ी पर
दर्ज-बढ़ दिया है।

भुवनेश्वर, उड़ीसा हैं
परमार्थिक राजप्रमाण महादय
विश्वभरनाथ पाण्डेय

‘क्रांति-कथाएँ’ वास्तविक महाग्रन्थ हैं। सरलजी की जितनी

प्रथा की जाय, कम है।

खटकड़कालों (जालंधर) पंजाब में
शहीद भगत सिंह की माता
स्व० विद्यावती

“सरदार भगत सिंह” काव्य-ग्रन्थ मेरे बेटे के अनुमोदित
है। इसकी प्रती प्राप्त कर मुझे लग रह है जैसे मेरा बेटा
भगत सिंह मेरी गोद में आ बैठा है।”

कदम रुकें हैं, कालम नहीं

मैंने जब-जब और जहाँ-जहाँ काव्य-पाठ किया है या शहीदों
और क्रान्तिकारियों के संस्मरण सुनाए हैं तो लोगों ने यही दुकावी
है कि मैं दीर्घायु पाऊँ। ये दुकारें सुनकर मैं उन लोगों से
कहता रहा हूँ कि आप लोग मुझको यह दुका दीजिए कि मैं
किस जितने दिन जीवित रहूँ, मेरी कालम देशभक्तों की कलियोगों
पर-चलती रहे। मुझे लगता है कि लोगों ने मेरे लिए यह
दुका भी ली है और यही कारण है कि कदम रुक जाते हैं
मेरी कालम शहीदों की क्रान्तिकारियों पर-चल रही है।

मैं पिछले छह महीने में लिख चुका हूँ कि मैं तीव्र हृदयास्वातु
पीड़ित होकर शय्या-ग्रस्त हो गया। शय्या पर पड़े रहने की स्थिति
में भी इन पंक्तियों को लिखने तक मैं अपनी दो कृतियों की
पाण्डुलिपियाँ तैयार करके रात-पुलक हूँ उनमें से एक तो यही
कृति है ‘मेरी ~~समस्त~~ ^{समस्त} यात्रा’ और दूसरी है ‘पंचरंगी गजाल’।
इन दो कृतियों के आतिथि यदि मैं कुछ का रूप में कुछ अधिक
लिख सका तो वे ‘मेरी साहित्य-यात्रा’ के नाम जुड़ती जाएंगी,
और यदि किसी एक विचार पर कोई स्वतंत्र कृति तैयार कर
सका तो वह स्वतंत्र नाम पाएगी।

लेखन के इस क्रम में स्फुट लग है जो कविताएँ लिखी गई
हैं, ~~जो~~ मैं यहाँ दे रहा हूँ —

पहली कविता - ८ जुन १९८८ को आपने जीवन के पैंतरे
वर्ष पूरे कर लीं तो उपलक्ष में लिखी गई है। यह आत्म-कव्य का

कविता है मेरे जीवन का यह सच्चा दर्शन है। —

पैंसठ वर्ष कर लिए पूरे

पैंसठ वर्ष कर लिए पूरे, अपने संपूर्ण जीवन के।
पैंसठ वर्ष आत्म-दर्शन के, पैंसठ वर्ष राष्ट्र-चिन्तन के।

इन पैंसठ वर्षों में, अपने
मन में केवल देश रहा है,
देश नहीं भूगोल, देश
जन-जीवन-मुक्त अशेष रहा है।

सदा-सर्वदा रहा उपोद्दिष्ट
और आत्म-दर्शन में तन है,
हिंसारिह जो रहा सदा ही
वह मन-बुद्धि-आत्माधन है।

तन-मन-धन उपकारण रहे हैं, साँसों के निर्विघ्न हवन के।
पैंसठ वर्ष कर लिए पूरे, अपने संपूर्ण जीवन के।

कड़े प्युट मिले पीने का
तो मिठास भी बहुत मिली है,
कभी-धूप ने भुलसाया, तो
कभी-कभी-बँदनी खिली है।

पर यह सच है, अपने जन के
गुणों ने कभी न पंरा,
राह न उतनी सघन रही है
जि रना उजला रहा सर्वशः।

जन-गण-मन ही बिन्दु रहे हैं, कर्म, साधना और मनन के।
पैंसठ वर्ष कर लिए पूरे, अपने संपूर्ण जीवन के।

किया देश के प्रति, अपने
कर्तव्यों का निर्विघ्न कलमन,
हर अँधेरे नापी, हर
गहराई की भी जाह कलमन।

रुकी नहीं यह, मुक्ती नहीं यह
 पुरी की हर-बाह कलम ने,
 किसी प्रलोभन या चमकी की
 की न कभी पर्वह कलम ने।

आपने मनुको लुभा न पाए, मृग-मारीच किसी कंचन के।
 पैंसठ वर्ष कर लिए पूरे, आपने संपूर्ण जीवन के।

हैं कितना संतोष, लक्ष्य
 कर लिया प्राप्त, वह भाजो-बाह,
 इस अविचलता, इस दृढ़ता हित
 मैंने खुद को बहुत सराहा।
 ये देशानुराग के स्वर, यदि
 आज नहीं तो कल गुँजेंगे,
 ये वधो-सदियों गुँजेंगे
 ये प्रतिदिन-प्रतिपल गुँजेंगे।

इन्हीं स्वरों में लोग सुनेंगे, स्वर कवि के दिल की धड़कान के।
 पैंसठ वर्ष कर लिए पूरे, आपने संपूर्ण जीवन के।

तन, मन, धन, सब चरती का है
 चरती की धुन में रहना है,
 जीवन-मरण चरती के हित है
 इस उच्छेद-बुन में रहना है।

जन-जन का उत्थान, यही है
 सब की आँखों का है सपना,
 मानवता का मान, यही तो
 सबसे बड़ा धर्म है अपना।

चरती की मारी-चन्दन है, गुंज गाएँ हों इस चन्दन के।
 पैंसठ वर्ष कर लिए पूरे, हमने संपूर्ण जीवन के।

शहीद और ज़िन्दा मुर्दे

वह इन्कलाबियों का ही गर्म पुन होगा
जो पीछे कटा, चरती का कर्ज उतारेगा।
वह इन्कलाबियों का ही गर्म पुन होगा
जो बलिदानों का पावन-पंथ बूटारेगा।

असौप तुम्हारा, अमर-शहीदों पर लिख कर
में कोरे-कोरे पृष्ठ बिगाड़ा करता हूँ,
असौप तुम्हारा, गड़े हुए मुर्दे हूँ जो
में उन मुर्दों को दर्प अलाड़ा करता हूँ।
तो सुनो, शहीदों को मुर्द कहनेवालो
जो हैं शहीद, ज़िन्दा मुर्दों से बहतर हूँ,
जो बिना किसी उद्देश्य, ~~के~~ ~~हैं~~ रहे हैं जीवन
ज़िन्दा रह कर न सब, मुर्दों से बदतर हैं।
हैं मुझको इतने विश्वास, देशकी चपकी पर
जब कभी दासता के बादल मंडराएंगे,
तो नाम शहीदों के, उनके गुण-गौरव ही
आँधी बन कर खूनी बदलियाँ उड़ाएंगे।

मन्देह नहीं, भरीख आँखें संकलों में
- चरती के लोगों को जब दर्ज बूटारेगा -
सौगन्ध उठा, भारत के अमर शहीदों की
तब गर्म रक्त ही दुश्मन को ललकारेगा।

हो अमर शहीदों की यादों से उत्प्रेरित
अनुपम जैहर यह देश दिहाता आया है,
हो अमर शहीदों की यादों से उत्प्रेरित
भारत दुश्मन को सब क दिहाता आया है।
हैं अमर शहीदों की यादों में वह बिजली
जो जुलूम-सितम को जला राख कर देती है,
हैं अमर-शहीदों की यादों में वह बिजली
जो मुर्दों में भी नव-जीवन भर देती है।

वह याद शहीदों की, जो दोर निरुधरा में
आशा के निमामिमा-निमामिमा दीप जलाती है,
वह याद शहीदों की होती आई है, जो
अन्यायों से भड़के विद्रोह जगाती है।

यह समय बताएगा, जब कायरता-कलंक
या देशद्रोह - पारती का वृक्ष विचारेंगा -
तब अमर-शहीदों की यादों का ही प्रकाश
आँधीयारों के संकट से हमें उबारेगा।

जब देश टूटता होगा अपनी करनी से
टुकड़े-टुकड़े होने की आशंका होगी,
रावणी-दर्प से अपना मातक अटारहे
जब भ्रष्टाचारों की कोई लंका होगी -
यह निश्चित है, हनुमानी-याद शहीदों की
भ्रष्टाचारों-लंका से आग लगाएगी,
वह याद शहीदों की, इन पावन चरखों पर
सौ हार्दिक और समता के धाग लगाएगी।
जो कौम पूजती आपने अमर शहीदों को
वह कौम, विश्व में अँचा आदर पाती है,
वह कौम, हमेशा ही चिन्ता की जाती, जो
अपने शहीद-कीर्तियों की याद मुलाती है।

इसलिए न मुँह कहो शहीदों की भाई !
उनकी यादों के बल, जन-जन हुंकारेगा
मर-मिटे वतन के लिए, उन्हीं की यादों को
गुण-गान हमारी चुँचुली कीर्ति निहारेंगे।

मुझको दिल की बीमारी है

बहुत से लोग मौत से नहीं, मौत ने डर से मर जाते हैं। किसी ने मालूम हो जाय कि उसे तपेदिक की बीमारी हो गई है तो वह डर के मारे फुलने लगेगा। किसी ने मालूम हो जाय कि उसे दिल का दौरा पड़ा है, तो वह इसी सदमे से चल बसेगा। दिल का दौरा मुझे भी पड़ा है और बहुत भयंकर, लेकिन वह मेरे आत्म-बल को नहीं डिगा सका। मैंने अथाह स्थिति को भी हास्यास्पद बनाया है और अपनी बीमारी से भी मजाक किया है और वह भी एक कविता लिख कर। मैंने अनुभव किया है कि जिन्दगी रोकर गुजारने की नहीं, हँसते और हँसाने की लिखी है। मैं अपनी बीमारी पर खुद भी हँसा हूँ और यह कविता पढ़ कर शायद आपको भी हँसी आ जाय। कविता प्रस्तुत है -

मुझको दिल की बीमारी है

मुझको दिल की बीमारी है।

मैं लै क्यो, प्रत्येक नागरिक इसी मर्ज का आधिकारी है।

मुझको दिल की बीमारी है।

आने कैसा दिल पाया है जत हरदम-घड़का करता है,
आँख फड़कती, हाँह फड़कते, यह दिल भी फड़का करता है
कुछ सुन्दर-सुन्दर दिन आए, येन नहीं इस दिल को आए
इसमें रह-रहकर अरमानों का शोला भड़का करता है।
मैं दिल नहीं काम पाता हूँ,

कुदरेही ही मन्वारी है।

मुझको दिल की बीमारी है।

वैद्य डाक्टरों को दिलाया, पर वे निकाले सभी अनाड़ी,
लगे पुराने दिल की चक्कू, लगे दवाने अपनी नाड़ी,
बिना दवा रहत मिला जाती, अपनी सुन्दर भाला दिखती -
जब कोई हलवार रेशमी, सा छिंदर छिंदर करती हाड़ी।
कोई दिल में आ बैठे, तो -

यह भी नुस्खा गुणकारी है।
मुझको दिल की बीमारी है।

हैं दिल के व्यापार अनेकों, दिल आता है दिल जाता है,
दिल का लेन-देन होता है, दिल से यह दिल टकराता है,
कोई दिल में ल्यार आता, कोई दिल में दर्द बसाता -
दिल लेकर चल देता कोई, तो फिर यह दिल ध्वराता है।
दिल धिरेन जाने पर भी यह दिल

~~भी~~ नहीं छोड़ता दिलवारी है।
मुझको दिल की बीमारी है।

जब दिल से दिल मिलता है तो दिल का दुव कुछ पट जाता है,
दो दीवाने मिल बैठें तो, लम्बा रहता कट जाता है,
जब दिल होता दिल से राजी, कैसा मुल्ला कैसा काजी ?
बिना दलाल किए ही, दिल से दिल का सौदा पट जाता है।
ठगता और ठगाता रहता,

यह दिल ऐसा व्यापारी है।
मुझको दिल की बीमारी है।

यह मद्रासीन यह कश्मीरन, यह अंतर आँवों का माता,
वही पद्मिनी-सी लगती है, जिस पर यह अपना दिल आता,
कोई दिल कैसा करता है, आँवों भी सेवा करता है -
पर जब दिल की चोरी होती, रपट नहीं कोई लैवनाता।
बीमारी जब आ-इलाज है

तो बीमारी ही च्यारी है।
मुझको दिल की बीमारी है।

जब दिल का दौरा पड़ता, तो खेड़-खेड़ शरीर को मारती है,
 खेड़-खेड़ करता है दिल, पर मजा को पड़ी ही पाती है,
 बिना पिटई (मार) क्यूरा, जीवन को भुंगा क्यूरा -
 दिल हरकती दिवा रहता, जब चपल जोहर दिवाली है।
 फिर भी नहीं बाज करता दिल

हरदम ही हरकत जारी है।
 मुझको दिल की बीमारी है।

हैं दिल की बीमार तुम, पर हाल न ने कपना बतलाते,
 मैं भोला हूँ, कह देता हूँ, और हाथ है भेद छिपाते,
 लगा-लगा मालिशों के फेरे, दिन-दोपहरी साँझ-सवेरे -
 जहाँ-जहाँ जम जाता है, सब कपना-अपना रंग जमाते।
 पर बदनाम मुझे करते हैं -

गई तुमकी मारि मारी है।
 मुझको दिल की बीमारी है।

मुझको - चैन मिलेगा तब, जब सबके सब मजनुब न जाएँ,
 तड़प-तड़प करते भर-भरकर, धाम-धाम दिलको चिल्लाएँ,
 तब मैं क्रुश लेकर गाऊँगा, अपना दर्द भूल जाऊँगा -
 यही मनाऊँगा मैं दिल में, मिल न सके शरीरों में लाएँ।
 दुःख में समझागी मिल जाएँ

कट जाता संकट भारी है।
 मुझको दिल की बीमारी है।

कैसा जीवन दिया राम ने

कैसा जीवन दिया राम ने । हर दिन हांकट लड़ा लामने ।

कैसा जीवन दिया राम ने ।

पैर ठकें तो सिर उछड़ा है
सिर ठकते तो पैर उछड़ते,
कपड़े तो कपड़े हैं, रोंके
जीवन के भी भाज उछड़ते ।

भूख, गरीबी, दुर्गिन, हमको देव कामने लम्बी लामने ।

कैसा जीवन दिया राम ने ।

यहाँ या वहाँ क्यू में लगते
दिन तो दिन, जीवन चलता है,
मर-मर-धूँ-धूँ कर-कर कर
जीवन का धक्का-चलता है ।

आज का काम लम्बाम कर दिया, बिना काम के आज काम ने ।

कैसा जीवन दिया राम ने ।

उनकी तो पाँचों घी में है
यहाँ तेल के भी लामने हैं,
तेल मिले कैसा, वे उसकी
आपने कानों में डाले हैं ।

आ दोलक वे बजा रहे हैं, वहही अपने हाड़-चाम ने ।

कैसा जीवन दिया राम ने

कड़वा घूँट हमें जो जीवन
वही बना उनके मिठास है,
जिसके लिए तरसते हम, वह
जीवन उनके आसपास है।

उनको हम ही घरीन मिरा है, सागर, मीना और आम ने।
कैसा जीवन दिया राम ने।

महल बड़े हो गए, भोंपड़े
अब आँखों में लटकर रहे हैं,
हम भी, वे भी दिशाहीन हो
आँखों जैसे भटक रहे हैं।
हम आँखें हैं दीर्घ लोकर, उन्हें मिरा है दीमटाम ने।
कैसा जीवन दिया राम ने।

— + —

जैसा कि मैं कई बार लिख चुका हूँ कि
मेष मूल त्रि क्रान्तिकारी और विद्रोही
स्वप्नाओं का है। व्यंग्य-स्वप्नाओं में भी
आक्रोश ही भाँकता है। यह बात अलग
है कि कुछ व्यंग्य-स्वप्नाओं में हास्य
अपने काम ही का जाता है, लेकिन व्यंग्य-
स्वप्ना का मूल उद्देश्य बुराई पर नज़र
लगाना और उसे ठीक करना होता है। यहाँ
प्रस्तुत है इसी प्रकार की एक व्यंग्य-स्वप्ना:-

चार वेद और एक उच्छा

जिसकी लाठी उसकी भैंस^१
यह कहावत बिलकुल सही है
सादियों के अनुभवों के बाद ही
मिली न यह बात कही है ।

चाहे लाठी कहें चाहे उच्छा
सही तो है हर प्रकारके शास्त्रों का एक मात्र हथकण्डा ।
लोग उच्छे के वन पर ही राजनीति की भैंस लाँकते हैं^५
और जिन पर उच्छा नहीं
वे लोग झूठ फाँकते हैं ।

और उच्छे का सबसे बड़ा गुणगान तुलसी जीजी ने किया है
उनका अभिप्रेत उच्छा ही रहा है
वैसे नाम उनने निर्गुण ब्रह्म का लिया है ।
उनकी वे पंक्तियाँ -

- बिनु पद चले, सुने बिनु जाना
कर बिन कर्म करे निर्धनाना
ज्ञान रहित सकल रात भोगी
बिनु बाणी वक्ता, बड़ भोगी -

उच्छे का ही तो गुण गाती हैं^५
निर्गुण ब्रह्म का नाम लेकर
वे उच्छे का ही महत्व बतलाती हैं ।

आप पूछेंगे कि यह कैसे ?
तो मैं कहूँगा कि यह ऐसे -
बिना पैरों का होतुं गुए भी उच्छा-चलता है
वह कभी झुकता है कभी कभी उधर जाता है ।

वह हमारी खोपड़ियों को टैज बनाकर
कल्पक और भरतनाट्यम की मुद्राएँ दिखाता है
और जीवन के कई रहस्य
बिना पीस लिए ही हमें सिखाता है।

कान न होते हुए भी डंडा सब कुछ सुनता है
हमारी खोपड़ियों पर उसके हाँसमीटर होते हैं
तभी तो अपने रास रचाने के लिए
वह हमारी खोपड़ियों ही सुनता है।
हमारी खोपड़ियों पर पड़कर
डंडा सुनता है हमारा रोदन और हमारा चीत्कार
हमारी प्रार्थनाएँ और हमारी गूहार
और हम जितने जोर-जोर से रोते हैं
डंडे के कान उतने ही ठूठ लेते हैं।

और हाँ,
गोस्वामी जीने कर बिना कर्मकरे विधीमाना,
की उत्ती भी तो कही है—
तो जनाव डंडे के परिपेक्ष्य में भी
यह बात हज़र्ड पर सेन्ट सही है।
बिना हाथों का लेते हुए भी डंडा शासन करता है—
वह समाज में प्रतिष्ठित अनुशासन करता है
कानून की चर्राओं के भरोसे तो
डंडा ही तो भाँकता है
हम कितने वीर साकायर हैं, यह डंडा ही तो भाँकता है।
चन्द्रशेखर आज़ाद ने आज़ाद के हर डंडे पर
भारत-माता की अय को की की—
उसकी वीरता दोबारा जनता उसने पीची हो ली की
तो डंडे के करिश्मों में और भी कई उदाहरण हैं।

हम डंडे बाने वालों की नहीं।
डंडा - बाने वालों की - कारण है।

तमबारे, बन्दूकें और तोपें
ये सब डंडे की ही शक्तियाँ हैं।
डंडा संयोजक है -
ये सब उसकी विभाक्तियाँ हैं।

जब डंडा आगता है
उपद्रव दूर भागता है
और जब डंडा सोता है
कोई न कोई अजब होता है।

आनन राहित लेकर भी डंडा लम्बी जिंदा रहता है -
वह हमारे कौशु और हमारे धुन का स्वर-चरता है।

डंडे में बड़ा वक्ता कोई है ही नहीं।
उसी की आवाज धुन पड़ती है हर कहीं।
वह हमारी नीपड़ियों पर पड़कर रहता है -

“और हड़तालें और प्रदर्शनक्रोम ?
अभी तो सर ही फूटें हैं अब कुत्तों की आँत मरोगें।
क्यों वे ! गारेवाजी का शौक चरिया था
क्या कुए-बाकड़ियाँ धुन गए थे
जो मरने यहाँ काया था ?”

तो भीमान यह है डंडे की भाषा
और डंडे की भाषा सभी देशों में एक होती है -
डंडे का चरित्र ऊँचा और उसकी हरकत नेक होती है -
डंडे का महत्व डंडे के महकमेवाले भी बताएँगे
डंडे की उपयोगिता के आपकी अच्छी तरह समझाएँगे।

अब तो आप मान गए होंगे कि
बिना वाणी के डंडा भी अच्छा वक्ता है
और जो बकता है
उसका जैन सा काम नहीं हो सकता है ?

अकस्मात् प्रश्न योगी होने का
 अर्थात् अपने जीवन में स्थिति प्रदाता सँज्जने का
 तो अभाव
 उंड से बड़ा स्थिति प्रदा आपकली नहीं पाइएगा,
 उंड पर कुछ असर नहीं होगा
 आप सँइएगा या गाइएगा ।

अब तो आप मान गए होंगे कि
 निर्गुण-वृत्त की सभी गुण उंड में विद्यमान हैं
 कार-जारी और बाल-वृद्ध उंड के लिए समान हैं ।
 सभी उंड बाले हमारे लिए प्रणम्य हैं
 'समस्त को नहीं' दोष गुंजाई' के अनुसार
 उंड बाले ही सभी अपराध क्षम्य हैं
 'अथ बिना होइ न प्रीति' का सिद्धान्त हम भी मानें
 और स्वर्गीय देवानाथ हरगल की उक्ति इतने बलवाने
 चार वेद-चारों पर उतरे
 बिना उतरा इका उंडा,
 चारों वेद नहीं कुछ करते
 जो करता तो उंडा ।

— x —

अपने - अपने शब्दकोश

उनके शब्द-कोश में
देश का अर्थ था वह आकाश और वह चरा
जिसके परिनेश में रहा
मातृ-भूमि होने की परंपरा ।
उनके शब्द-कोश में
जीन का अर्थ था कि वे देश के लिए मरें
और उनके शब्द-कोश में
मरने का अर्थ था कि वे देश नव-जीवन प्रदान करें ।

इनके शब्द-कोश में
देश का अर्थ है वह क्षेत्र
जिसमें वे चरें
और अन्ध उपभोग में नहीं चले करें ।
इनके शब्द-कोश में देश का अर्थ है वह क्षेत्र
जिसमें वे निचोड़ें
और जिसमें जीवना करके
अपनी सप्त पीढ़ियों के लिए जोड़ें ।

उनके शब्द-कोश में
देशवासियों का अर्थ था वे लोग
जो हम-वतन होने के नाते
उनके बहन-भाई थे
इसलिए वे अपने देशवासियों के शीर्षक थे ।

इनके शब्द-कोश में
देशवासियों का अर्थ है वे लोग
जिनके कंधों पर बैठ कर वे राज-दरबार में जाएं
और अपनी गरज पूरी होने पर
उन्हें अपने आँगुठे दिखाएँ

उनके शब्द-कोश में
 जीवन का अर्थ था देश की चरोंह
 समर्पण और बलिदान के लिए हर क्षण तत्पर ।
 उनके शब्द-कोश में
 जीवन का अर्थ था जीवन का दान
 और अपनी हर साँस में देश का सश्रमान ।

इनके शब्द-कोश में
 जीवन का अर्थ है हर ऐश और हर आराम
 और करने के लिए केवल एक ही काम
 और वह यह कि वे
 सिद्धान्तों को पगोड़ी पर लट्कारें
 और फुट्टर पाने के लिए
 शीतान से भी हाथ मिलाएँ ।

क्या कभी वह समय आएगा ?
 जब उनके और इनके शब्द-कोशों के अर्थ
 एक ही होंगे
 अपनी कपानी और करनी से नैक हो सकें
 जो कंधों पर बैठने के बजाय
 कंधों में कंधे मिला कर चले
 देश के लिए घूले और देश के लिए पाले ।

जब कभी ऐसा होगा
 तो जन-जन का उत्कर्ष होगा
 सभी यह देश
 सच्चे अर्थों में भारतवर्ष होगा ।

लेवनी अविराम-चल तू !

लेवनी अविराम-चल तू ! आज ज्वाला ही उगल तू !

लेवनी अविराम-चल तू !

भ्रष्ट हो हर आचरण जब ,

बढ़ रहे दानव-चरण जब ,

लालसा को ई जग क्यों ?

वन गया जीवन मरण जब ?

हैं बदलना आज युग को, इसलिए तेवर बदल तू !

लेवनी अविराम-चल तू !

वेश है है ग्रीह जिनको ,

चार्ज है है मोह जिनको ,

चलना चरण दिए , पर

हैं आसित की दोह जिनको

नाग वन पुंकारते जा, उन सभी को फल कुचल तू !

लेवनी अविराम-चल तू !

हैं न रुकना काम तेरा ,

हैं न भुक्ता काम तेरा ,

जब तुझे देना बहुत कुछ

हैं न चुकना काम तेरा ।

शान्ति जब ही निष्प्रभावी, क्रान्ति बन कर ही मचल तू !

लेवनी अविराम-चल तू !

चर्म तेरा है न बिकना ,

चर्म तेरा है न टिकना ,

पाल कुशाँ हृदय में

हैं नहीं तुझको सिक्का ।

पाल रहे जितने अशुभ हैं, उन इरादों को मसल तू !

लेवनी अविराम-चल तू !



To

पण्डित श्री कृष्ण 'सरस्वती'

१८, दशहरा मैदान, (काशीगंज भादेपुरी,
दुर्गपुरी, काशी)

उज्जैन अ.स. ४४६०१०





महाकवि माध की भूमिका में
 श्रीकृष्ण सरल
 और
 माता सुमेधा की भूमिका में
 प्रिमिती जयवर्ती केतकर



25/1/50

कवि श्री कृष्ण सरन
 शहीद भगतसिंह की माताजी
 विद्यावती जी के साथ पंजाब
 के खरकर कोलां ग्राम में उन्हीं
 के घर पर

श्री सखलजी

शहीद मंगलसिंह की माताजी

पियावतीजी के साथ

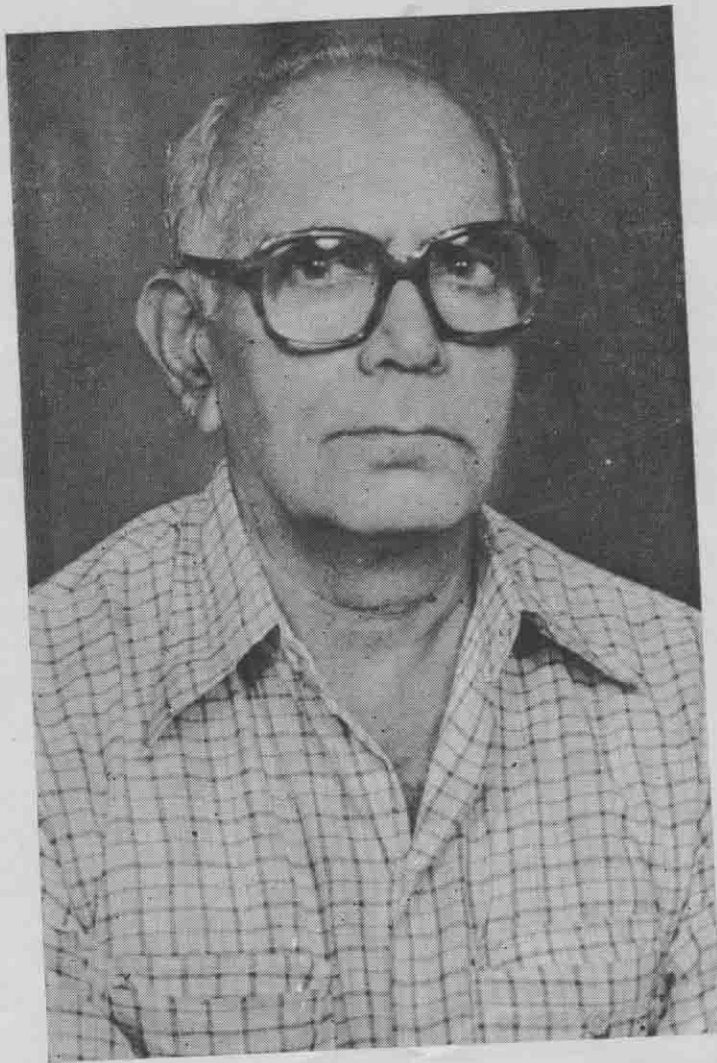
श्री सखलजी

शहीद मंगलसिंह की माताजी

पियावतीजी के साथ

शहीद मंगलसिंह की माताजी

पियावतीजी के साथ



शहीदों के गायक : श्रीकृष्ण सरल
शहीदों और क्रान्तिकारियों पर जिनकी
पैस 6 पञ्चास कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं ।



वीर राव के विद्रोही महाकवि श्री कृष्ण
 सरल बूंदी (राजस्थान) के वीर राव के
 विद्रोही महाकवि सूर्यमाल की प्रतिमा
 को भाल्यार्पण करते हुए।
 बूंदी की जनताने श्री सरल का अभिनन्दन
 कर के महाकविये का फिलन कराया।